‘मुरदाघर’ और ‘सलाम आख़िरी’ में अभिव्यक्त यौनकर्मियों के जीवन का तुलनात्मक अध्ययन

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय द्वारा

पीएचडी (हिन्दी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

शोधार्थी

मुकेश कुमार

शोध निर्देशक

डा. राजेश पासवान

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय

नई दिल्ली- 110067

जून, 2022

Dated: 23 /06 /2022

Declaration

I hereby declare that the Ph.D. thesis entitled **'MURDAGHAR' AUR SALAM AAKHIRI MEIN ABHIWYKAT YAUNKARMIYONE KE JIVAN KA TULNATMAK ADHYAYAN [A COMPARATIVE STUDY OF SEX WORKERS LIFE AS EXPRESSED IN MURDAGHAR AND SALAM ANKHIRI]** submitted by me is the original research work. It has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/ Institution to the best of my knowledge.

I further declare that no plagiarism has been committed in my work. If anything is found plagiarised in my Thesis, I will be solely responsible for the act.

Mukesh Kumar

Mukesh Kumar
(Name of Students)

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 23 /06 /2022

Certificate

This is to certify that the Mr. MUKESH KUMAR, a bona-fide Research Scholar of Centre of Indian Languages, SLL&CS has fulfilled all the requirements as per the University Ordinance for the submission of Ph.D. thesis entitled '**Murdaghar' Aur Salam Aakhiri Mein Abhiwykat Yaunkarmiyone Ke Jivan Ka Tulnatmak Adhyayan [A Comparative Study Of Sex Workers Life As Expressed In Murdaghar And Salam Ankhiri]**

This may be placed before the examiners for evaluation for the award of the degree of Ph.D.

Dr. Rajesh Kumar Paswan
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

Dr. Rajesh Kumar Paswan
Associate Professor
Centre of Indian Languages, SLL & CS
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067

Prof. Omprakash Singh
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

अध्यक्ष / Chairperson
भारतीय भाषा केन्द्र / CIL
भा. सा. एवं सं. अ. सं. / SLL & CS
ज. ने. वि. / J.N.U
नई दिल्ली / New Delhi-110067

GRAM: JAYENU, Tel.: (91-011) 26741557, 26742676 Extn.: 4217, (D) 26704217; Telefax: (91-011) 26704217;
Email: chair_cl@mail.jnu.ac.in, jnucl@gmail.com

Scanned with CamScanner

अनुक्रमणिका

भूमिका	**i - xiii**
अध्याय- एक **हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त यौनकर्मियों की समस्याएँ**	**1 - 36**
अध्याय- दो **मुरदाघर में अभिव्यक्त यौनकर्मियों की समस्याएँ**	**37- 90**
अध्याय- तीन **सलाम आख़िरी में अभिव्यक्त यौनकर्मियों की समस्याएँ**	**91- 143**
अध्याय- चार **यौनकर्म के विशेष परिप्रेक्ष्य में मुरदाघर एवं सलाम आख़िरी का तुलनात्मक अध्ययन**	**144- 187**
अध्याय- पाँच **मुरदाघर और सलाम आख़िरी की भाषा और शिल्प**	**188- 225**
उपसंहार	**226-233**
संदर्भ ग्रंथ सूची	**234-239**

भूमिका

मानव समाज का मतलब है स्त्री और पुरुष का परस्पर संयोजन । परन्तु व्यवहारिक रूप से देखा जाए तो जब मानव की बात आती है तब हम पुरुष पर केन्द्रित हो जाते हैं और स्त्री के योगदान के योगदान को दरकिनार कर देते हैं । परंतु आर्थिक व सामाजिक तौर पर मानव समाज के विकास में पुरुष की तुलना में स्त्री का योगदान कहीं अधिक है । स्त्री की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को समझने के लिए हमें समाज के उस विधान को जानना होगा जिसके माध्यम से स्त्री को समाज की मुख्यधारा से बाहर रहने को बाध्य किया गया । पुरुष द्वारा निर्मित विधानों में स्त्री के लिए स्वतंत्रता एक सपना ही रहा जिसकों पाने के लिए आज भी स्त्री जदोजहद कर रही है । पुरुष जिस सदी को विकास की सदी बता रहा है । इस इक्कीसवी सदीं में भी स्त्री पितृसत्ता के बंधनो से मुक्ति होने के लिए संघर्ष कर रही है । यह सत्य है कि पितृसत्ता ने स्त्री पुरुष की तुलना में अधिकार और सम्मान से वंचित ही रही । यह इसी बात का प्रमाण है कि सामंती समाज ने स्त्री को परिवार की परिधि में क़ैद किया और जिसको परिवार की चारदीवारी में क़ैद नहीं कर पाया उसे स्वतंत्रता देने के नाम पर वारांगना बना दिया । या फिर धर्म के नाम पर मंदिरों में देवताओं की देवदासी बनाकर क़ैद कर दिया ।

यह केवल भारतीय समाज की ही कहानी नहीं है बल्कि पूरे विश्व में अलग-अलग नामों और परम्पराओं के द्वारा स्त्रियों का शोषण होता रहा है । भारतीय समाज देवदासी प्रथा स्त्री के शोषण का प्रतीक है जिसके चलते असंख्य स्त्रियों को मंदिरों में देवताओं के नाम पर मंदिर के पुजारियों ने दैहिक शोषण किया । इस शोषण में मंदिर का पुजारी, दान देने वाले सामंत या फिर मठाधीश सबका अधिकार होता था । बस शर्त यह थी कि जिसका जितना उच्चा मान होगा, देवदासी को भोगने के लिए उसके अधिकार भी उतने ही सुरक्षित होंगे । यह अमानवीय परंपरा वर्तमान में भी अनवरत जारी है । केवल हमारे समाज में ही नहीं बल्कि वेश्यावृत्ति पूरी दुनिया में सदियों से चली आ रही है । वेश्यावृत्ति ने आज वैश्विक स्तर पर एक ऐसे व्यवसाय का रूप ले लिया है । ऐसा व्यवसाय जिसमें स्त्री बिना किसी भेदभाव के या बिना किसी भावनात्मक, संवेदनात्मक लगाव के, कई मर्दों के साथ विवशतावश शारीरिक संबंध बनाती है । यह हैरान करने वाली बात है की आज के समय में 'वेश्यावृत्ति' आर्थिक मामलों में दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा व्यवसाय बन गया है जब हम दुनिया के इतिहास पर नज़र डालते हैं तो पता चलता हैं कि बेबीलोन के मंदिरों से लेकर भारत में देवदासी प्रथा एक प्रकार से वेश्यावृत्ति का ही पुरातन रूप है । समाज के इतिहास के प्रत्येक कालखंड में वेश्यावृत्ति किसी-न-किसी रूप में प्रचलित रही है, हाँ, मगर हम यह ज़रूर कह सकते हैं कि समय के साथ वेश्यावृत्ति के स्वरूप में परिवर्तन जरुर हुआ है । एक समय था जब वेश्याएँ संगीत और नृत्य आदि सभी

विद्याओं की जानकार होती थी तथा आज की तरह जिस्मफ़रोशी नहीं थी । लेकिन ये सब बीते समय की बातें हैं, समाज के आधुनिक होने के साथ नृत्य, संगीत आदि कलाएँ विलुप्त हो गई और कलाओं की संरक्षिकाएं पुरुष के सम्मुख भोग की वस्तु बनकर रह गई । जो स्थान कभी नृत्यकला और संगीतकला के केंद्र हुआ करते थे, वे स्थान विशुद्ध रूप से भोग-विलास के अड्डे बन गये । यह सत्य है कि वेश्यावृत्ति को बनाए रखने के लिए सामंती व्यवस्था काफी हद तक जिम्मेवार है और इसी सोच ने वेश्यावृत्ति को बनाएँ रखने के लिए क़ानूनी दर्जा दिया है । समय-समय पर वेश्यावृत्ति को बनाए रखने के लिए पितृसत्ता ने कहीं उसे धार्मिक आधार दिया तो कहीं समाज को व्यभिचार मुक्त रखने का तर्क गढ़ कर फलने-फ़ूलने दिया । लेकिन पुरुष ने कभी भी वेश्यावृत्ति को बनाये रखने के लिए अपनी अभिलाषाओं और इच्छाओं को ज़ाहिर नहीं होने दिया । सभ्यता के इतिहास पर नज़र डालें तो एक ही तथ्य दिखाई देता है कि स्त्री घर के बाहर हो या फिर घर के अंदर पुरुष ने स्त्री के शरीर और श्रम का शोषण ही किया है । दुनिया की सभी भाषाओं का साहित्य और इतिहास स्त्री शोषण के प्रकरणों से भरा पड़ा है । इस परंपरा में हिंदी साहित्य भी उपन्यास, नाटक, कहानियाँ के माध्यम से स्त्री के शोषण का गवाह बनता है । इसलिए शोध के विषय और शोध प्रबंध के आधार को ध्यान में रखते हुए मैंने इसे उपन्यासों पर ही केंद्रित रखा है । इस शोध विषय के आधार ग्रंथ के रूप में वेश्यावृत्ति पर आधारित 'मुरदाघर' और 'सलाम आख़िरी' दो महत्वपूर्ण उपन्यास हैं । वेश्याजीवन पर लिखे गये

उपन्यासों की परंपरा में मुरदाघर एक सारगर्भित रचना है, जो स्वाधीन भारत में औधोगिक विकास के फलस्वरूप उपजी महानगरों की चकाचौंध और रोज़गार की तलाश में शहरों की ओर उन्मुख हुए विस्थापितों की दर्द भरी कहानी कहती है । आर्थिक विषमताओं से उपज्जे विस्थापन के साथ रोज़गार के अभाव में समाज में बढ़ रही वेश्यावृत्ति और अपराध की विकराल समस्या को उठाती है । मुरदाघर दो वर्गों में विभाजित समाज को अभिव्यक्त करते हुए महानगरीय ऐशों आराम से भरा जीवन जी रहे विलासी वर्ग की समाज के प्रति उदासीनता को उजागर करते हुए गंदी मलिन बस्तियों में अंधकार के साथ भूख और अभाव में जीवन की अभिलाषा लिए परिस्थितियों लड़ते लोगों की कहानी कहता है । औधोगिक विकास के कारण बड़े महानगरों के स्वरूप में जो बदलाव हुआ, उस बदलाव का निम्न वर्ग के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है ? समाज में फैली विसंगतियों व विषमताओं की जड़े असंतुलित आर्थिक विकास के चलते जिस प्रकार गहरी हुई, उसका पूरा ब्यौरा मुरदाघर में दृष्टिगत होता है । अगर दूसरे उपन्यास की बात करें तो सलाम आख़िरी उपन्यास समकालीन उपन्यासों की परम्परा में स्त्री उत्पीड़न का प्रमुख दस्तावेज है । साहित्य प्रवृति में सामान्य धारा से हटकर लिखा गया यह उपन्यास स्त्री शोषण की भयावहता को ब्याँ करता है । एक ओर जहां हिंदी में बहुत कम साहित्यकारों ने वेश्याजीवन पर लेखनी चलाई है । उस परंपरा में एक स्त्री द्वारा लेखिका के रूप में स्त्री के शोषण को उजागर करना और अधिक प्रासंगिक बना देता है । यह उपन्यास कलक़त्ता महानगर में चलने

वाले देहव्यापार सोनागाछी से लेकर बहुबाज़ार, कालीघाट से लेकर बरकपुर व खिरिदपुर के रेडलाइट इलाक़ों का चित्रण पेश करते हुए वेश्याओं की अमानवीय स्थिति के लिए उतरदायी ग़रीबी और सामाजिक स्थितियों के साथ क़ानून के सौतेले व्यवहार को उजागर करता है । उपन्यास कलकत्ता की पृष्टभूमि पर लिखा जाने के बावजूद भी पूरे वेश्या समाज की दारुण कथा को पेश करता है । मुझे यह कहने में कोई हर्ज नहीं है कि मानव इतिहास में स्त्री को भोग की वस्तु समझकर जितना अत्याचार और शोषण हुआ है । उस शोषण व अत्याचार की दर्द भरी कहानी को ईमानदारी से लिखने के लिए अभी तक का लिखा हुआ सम्पूर्ण साहित्य कम पड़ जाएगा ।

समाज में ऐसे भी लोग हैं जो वेश्यावृत्ति को स्त्री के शोषण का कारक ना मानकर वेश्यावृत्ति की उपयोगिता के समर्थन तर्क देते हैं कि जैसे गंदगी के निष्कासन के लिए नालियों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार समाज को व्यभिचार से बचाने के लिए वेश्याओं की आवश्यकता होती है । उनका तर्क है कि वेश्याओं के बिना समाज में स्त्रियों के प्रति यौन हिंसा बढ़ जायेगी । वेश्यावृत्ति आधुनिक समय में या यांत्रिक होते समाज की भोगलिप्सा के साथ आधुनिक जीवन की भागदौड़ में बढ़ती हुई आंतरिक कुंठा के क्षणिक उपचार का द्योतक है । वस्तुत वेश्यावृत्ति समाज के सहज अंग के रूप में सदैव रही है । समाज की स्थिति में आरोह-अवरोह ज़रूर आता रहा है, लेकिन वेश्यावृत्ति का अस्तित्व अक्षुण्ण और अप्रभावित रहा है । इतिहास व साहित्य में

वेश्यावृत्ति की शुरुआत की खोज करते हुए हम मानव सभ्यता के क्षितिज पर जा पहुँचते हैं लेकिन वेश्यावृत्ति के आरम्भ की ठीक-ठीक खोज नहीं कर पाते हैं । हम इस शोध प्रबंध में वेश्यावृत्ति के रूप को साहित्य और इतिहास के आलोक में समझने का प्रयास करेंगे । इतिहास से होती हुई वेश्यावृत्ति की समस्या साहित्य में जो आकार ग्रहण करती है, वह समाज में कौनसे सामाजिक आयामों का सहारा लेकर बनी हुई है । इतिहासकारों ने वेश्यावृत्ति को जिस रूप में देखा है ? क्या साहित्यकारों भी वेश्यावृत्ति की समस्या को उसी प्रकार देखा और समझा है । हालाँकि शोध साहित्यिक रचनाओं पर केंद्रित है । लेकिन हम इस तथ्य से मुकर नहीं सकते कि शोध का विषय समाजशास्त्र व इतिहास से भी सम्बंधित है। इसलिए शोध के दौरान यौनकर्म की समस्या पर इतिहासकार और साहित्यकार के दृष्टिकोण को भी समझने का प्रयास किया गया है । यह शोध साहित्य और इतिहास को परस्पर साथ लेकर वेश्यावृत्ति की समस्या का अध्ययन करते हुए निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास करता है ।

• यौनकर्म की समस्या को मुरदाघर में किस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है ?

यौनकर्म की समस्या को सलाम आख़िरी उपन्यास में किस प्रकार परिभाषित किया गया ?

साहित्य में अभिव्यक्त यौनकर्म की समस्या किस प्रकार इतिहास से अलग है ?

• यौनकर्म की समस्या को हिंदी साहित्य में किस प्रकार उठाया गया है, एवं उसके लिए कौन से कारकों को उतरदायी माना गया है ?

यौनकर्म की समस्या के लिए कौन-कौन से क़ानूनी प्रावधान किये गये हैं ?

भारत समाज में देहव्यापार कानून के दायरे में अपराध की श्रेणी में आता है लेकिन फिर भी बिना किसी भय के वेश्यावृत्ति पूरे देश में कारोबार के रूप में धड़ल्ले से चल रही है । देश में लगभग हर छोटे-बड़े शहरों में रेड लाइट एरिया हैं । हिंदी साहित्य में रचनाकारों ने अलग-अलग दृष्टिकोण से यौनकर्म की समस्या को देखने समझने का कार्य ज़रूर किया है लेकिन समस्या का इतिहास बहुत लम्बा है । यौनकर्म की समस्या को लेकर हिंदी साहित्य में समस्या के मूलभूत कारकों की पहचान करते हुए उतनी गहराई के साथ नहीं लिखा गया है जितनी जटिल वेश्यावृत्ति की समस्या है । यह शोध उपलब्ध साहित्य के आधार पर वेश्यावृत्ति की समस्या के मूल कारणों की खोज करते हुए समाज में स्त्री की स्थिति को समझने का प्रयास करता है । स्त्री जीवन के सम्बंध में हिंदी साहित्य में वेश्यावृत्ति की समस्या को किस कसौटी पर परखा गया है ? साहित्य में जो मिथक हैं और इतिहास में जो तथ्य हैं, वे दोनों यौनकर्म की समस्या को कहाँ तक परिभाषित कर रहे हैं ? आदि सवालों को शोध के उदेश्य की कसौटी पर जाँचा-परखा जायेगा । जहां तक प्रस्तुत शोध विषय से सम्बंधित शोध कार्य की उपलब्धता का सवाल है । अब तक मेरे शोध विषय “मुरदाघर' और 'सलाम आख़िरी' में अभिव्यक्त

यौनकर्मियों के जीवन का तुलनात्मक अध्ययन" के रूप में कोई कार्य नहीं हुआ है । मेरा यह शोधकार्य पुरुष और स्त्री की दृष्टी से वेश्यावृत्ति की समस्या को देखने का प्रयास करता है जो पूर्व के शोधकार्यों से मेल नहीं खाता है । इस लिहाज से मेरा यह शोध कार्य तमाम विषयों की दृष्टि से नवीन तथा मौलिक है ।

जैसा मैंने पहले कहा है कि शोध का सम्बन्ध साहित्य से है लेकिन शोध की समस्या का सम्बन्ध समाज से है । इसलिए समस्या की गहराई और व्यापकता को समझने के लिए समाज के भूतकाल के अध्ययन के लिए ऐतिहासिक पद्धति के साथ-साथ समाजशास्त्रीय पद्धति का सहारा लिया गया है । हमारे शोध का प्रारूप तुलनात्मक है । इसलिए शोध के प्रारूप को ध्यान में रखते हुए तुलनात्मक शोध प्रविधि का उपयोग कर यौनकर्म की समस्या पर साहित्यकारों के मतों के सहयोग से समस्या की गहराई को समझने के लिए आलोचनात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है । विषय की व्यापकता और गंभीरता के सवाल को परिभाषित करने के लिए शोध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है । जो क्रमवार इस प्रकार हैं-

'हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त यौनकर्मियों की समस्याएं' अध्याय में हिंदी के प्रमुख उपन्यासों को आधार बनाकर वेश्याओं की जीवनगत समस्याओं का अध्ययन किया गया है । इसमें प्रेमचंद का "सेवासदन", यशपाल का "दिव्या", जैनेंद्र का "त्यागपत्र", अमृतलाल नागर का "सुहाग के नूपुर" तथा मोहनदास नैमिसराय का "आज बाज़ार बंद है" उपन्यास शामिल हैं । इस अध्याय में

सेवासदन की सुमन, सुमन से वेश्या बन जाने व दिव्या के माध्यम से जातिव्यवस्था आधारित धर्म और समाज की बेड़ियों में जकड़ी हुई नारी की नारी की दशा का चित्रण है । त्यागपत्र में पितृसत्ता के विधानों में बंधी हुई नारी (बुआ) की व्यथा है । सुहाग के नूपुर व 'आज बाजार बंद' में सीधे तौर पर वेश्यावृत्ति को दिखाया गया है तथा दोनों रचनाएँ वेश्याजीवन की समस्या की गहराई से पड़ताल करती है । यह अध्याय यौनकर्म के सवाल के साथ वेश्यावृत्ति के प्रति लेखकों के नज़रिए तथा उनके द्वारा सुझाये गये समाधानों का मूल्याकंन भी करता है ।

मुरदाघर में अभिव्यक्त यौनकर्मियों की समस्याएं :- यौनकर्म के सवाल को केंद्र में रखकर मुरदाघर का अध्ययन किया गया है । समाज में हुए बदलावों के साथ वर्तमान में यौनकर्म की समस्या से जूझते समाज में स्त्री की स्थिति और सामन्ती समाज से लेकर पूंजीवादी व्यवस्था तक की लम्बी यात्रा में स्त्री की स्थिति में हुए बदलावों का विश्लेषण करता है । मुरदाघर पर आधारित यह अध्याय सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों का अध्ययन करता हुआ औद्योगिक विकास से उपजी आर्थिक विसंगतियों का परीक्षण कर मजदूरों के शोषण के साथ-साथ स्त्रियों के शारीरिक शोषण को उजागर करता है । यह अध्याय वेश्याओं की दयनीयता के प्रति समाज की उदासीनता के साथ पुलिस और दलालों के गठजोड़ से उत्पीड़ित झोपड़पट्टियों के लोगों के शोषण पर बात करते हुए समाज में गुम हो रहे मानवता के मूल्यों के बीच वेश्याजीवन की कारुणिक कहानियों का मूल्याकंन करता है ।

सलाम आख़िरी में अभिव्यक्त यौनकर्मियों की समस्याएं:- यह अध्याय यौनकर्मियों की सामाजिक स्थिति का अध्ययन पेश करते हुए यौनकर्मियों की जीवनगत समस्याओं पर बात करता है । यौनकर्म की समस्या को लेकर हुए प्रमुख आंदोलनों के साथ उपन्यास में अभिव्यक्त वेश्यावृत्ति की समस्या के समाधान को वास्तविकता की कसौटी पर परखते हुए एक स्त्री के वेश्या बनने की प्रक्रिया और गृहणी के रूप में परिवार की ज़िम्मेवारियों के बोझ तले दबी हुई स्त्री के प्रति समाज की सोच का भी जायज़ा लिया गया है । वेश्याओं के प्रति होने वाले अपराध और अपराध के ख़िलाफ़ न्यायव्यवस्था की भूमिका का अवलोकन करते हुए वेश्यावृत्ति की समस्या का स्त्री के जीवन और समाज पर होने वाले प्रभाव को समझने का प्रयास किया गया है ।

यौनकर्म के विशेष परिप्रेक्ष्य में मुरदाघर एवं सलाम आख़िरी का तुलनात्मक अध्ययन:- मुरदाघर एवं सलाम आख़िरी शोध के आधार ग्रन्थ हैं । दोनों रचनाओं का आधार एक ही विषय होने पर भी दोनों रचनाओं में एक ही समस्या के अलग-अलग रूप हैं तथा दोनों रचनाओं का समयकाल भी अलग-अलग है । विषय एक होने के बाद भी दोनों में समस्या को प्रस्तुत करने और देखने का नज़रिया अलग-अलग है । अतः यह अध्याय उपरलिखित संदर्भों में दोनों लेखकों की दृष्टि के साथ वेश्याओं के जीवन की चुनौतियाँ, स्वास्थ्य से जुड़ी हुई समस्याएँ, स्त्री के वेश्या बनने के कारण, संतान के भविष्य का भय व वेश्याओं की बेबसी समय के साथ हुए बदलावों में वेश्याओं की सामाजिक, आर्थिक बेबसी और राजनीतिक हाशिये का अध्ययन पेश

करता है । वेश्याओं का उत्पीड़न के विरुद्ध आक्रोश व शोषण से मुक्ति की चाह भी अध्याय का आधार है ।

मुरदाघर और सलाम आख़िरी की भाषा और शिल्प:- यह अध्याय भाषा और शिल्प की कसौटी पर विषय की प्रामाणिकता का अध्ययन पेश करता है । एक आधार पर मुरदाघर और सलाम आख़िरी की तुलना करता हुआ दोनों उपन्यासों के सामाजिक परिवेश को अभिव्यक्त करने में भाषा के योगदान को समझने की कोशिश करता है तथा विषय की गम्भीरता के समक्ष रचनाओं में अभिव्यक्त परिवेश की प्रामाणिकता की चर्चा करता है । मुरदाघर के झोपड़पट्टी की वारांगनाओं के जीवन की पीड़ा और त्रासद जीवन की नग्नता तथा 'सलाम आख़िरी' में कलकत्ता के बहुबाज़ार, खिरिदपुर आदि रेडलाइट इलाक़ों की वेश्याओं की बेबसी का विवरण पेश करते हुए सामन्ती सोच से संचालित पूंजीवादी समाज की असमानता की देन बेकारी और भूखमरी को पात्रों, संवादों और घटनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है ।

यौनकर्म को शोध के रूप में चुनने के पीछे स्त्री जीवन से जुड़ी संस्था का रूप धारण कर चुकी सामाजिक बुराई के कारणों को समझते हुए वेश्याओं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति का मूल्याकंन करना और उनकी जीवनगत सच्चाई से रु-ब-रु होना है । शोध के रूप में वेश्याजीवन को चुनने व उनकी पीड़ा को समझने में व्यक्तिगत अनुभवों ने मेरे अंदर

विस्तृत समझ पैदा कर विषय के प्रति अतिरिक्त लगाव को जन्म दिया । यौनकर्मियों के जीवन के तुलनात्मक अध्ययन' से निकलकर आई बातों को उपसंहार के रूप में रखा गया है ताकि विषय की गम्भीरता के साथ वेश्याओं की स्थिति, वेश्याजीवन की चुनौतियों और समस्याओं को स्पष्ट ढंग से समझा जा सके ।

मैं बस इतना ही कहना चाहूँगा कि यह शोध वेश्या के रूप में स्त्री की सामाजिक स्थिति को जानने की दिशा में की गई पहल भर है तथा यह समझने और समझाने का प्रयास है कि समाज वेश्याओं को हेय दृष्टि से ना देखे बल्कि उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति से अवगत होकर समस्या के निवारण की दिशा में एक सकारात्मक पहल करे । हाँ, शोध में दिए गए निष्कर्ष न तो अंतिम हैं और न ही निश्चित हैं । जैसे-जैसे वेश्यावृत्ति से संबंधित नये तथ्य और नये निष्कर्ष सामने आएँगे, वैसे-वैसे वेश्याओं के जीवन से जुड़ी समस्याओं और चुनौतियों के प्रति हमारी समझ व्यापक होती जायेगी ।

वेश्याजीवन जैसे समाज में वर्जित और चुनौतीपूर्ण विषय को चुनने की आज़ादी के साथ जटिल विषय पर मेरा मार्गदर्शन करने के लिए अपने शोध निर्देशक डॉ राजेश कुमार पासवान जी के प्रति विशेष रूप से निष्ठा और सम्मान के साथ कृतज्ञता व आभार प्रकट करता हूँ । शोध हेतु अमूल्य सुझावों के लिए भारतीय भाषा केंद्र के सभी गुरुजनों का कोटि-कोटि धन्यवाद।

दिल्ली विश्वविधालय के हिंदू कॉलेज में प्राध्यापक अभय रंजन सर के प्रति सदैव आभारी रहूँगा, जिन्होंने मुश्किल परिस्थितियों में हमेशा मेरा हौसला बढ़ाया ।

माता-पिता और बहन उर्मिला के प्रेम और सहयोग बिना शायद शोध कभी पूरा कर पाता । यह शोध ग्रंथ उनके सहयोग और प्रेम की संचित निधि है। वेश्याजीवन जैसे जटिल विषय पर काम करने के लिए मेरा उत्साहवर्धन और सहयोग करने वाले सभी साथियों का धन्यवाद । शोध के दौरान आयी परेशानियों और चुनौतियों में मनोबल बढ़ाने के लिए शालिनी शिखा का बहुत-बहुत धन्यवाद ।

शोध हेतु पत्रिकाओं, पुस्तकों को समय पर उपलब्ध करवाने के लिए जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के पुस्तकालय और स्टाफ़ का जितना धन्यवाद करूँ उतना कम है ।

- मुकेश कुमार

अध्याय- एक

हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त यौनकर्मियों की समस्याएं

कथा साहित्य में उपन्यास ने अपने आरंभिक काल से ही समाज के हाशिये के लोगों की आवाज बनकर अपनी उपस्थिति दर्ज की है तथा समाज की आंतरिक संरचनाओं, जटिलताओं के साथ समकालीन विषयों की बात हो या फिर आदिकालीन संदर्भों को समकालीन संदर्भों के साथ जोड़कर नये रूप में परिभाषित करने का सवाल हो, उपन्यास विधा ने इस दायित्व का बखूबी निर्वहन किया । यह अध्याय सेवासदन, त्यागपत्र, दिव्या, सुहाग नूपुर, आज बाज़ार बंद है आदि कुछ प्रमुख उपन्यासों को आधार बनाकर स्त्री जीवन से जुड़ी हुई समाज में सदियों से व्याप्त वेश्यावृत्ति की समस्या का विश्लेषण करता है । पुरुष प्रधान समाज में सदियों प्रचलित देवदासी प्रथा, सतीप्रथा, बालविवाह आदि कुप्रथाएँ स्त्री के शोषण के ही रूप हैं । पुरुष प्रधान समाज स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व और अभिलाषाओं को मान्यता नहीं देता । ऐसे समाज में एक स्त्री पिता के घर में बेटी और पति के घर में पारिवारिक दायित्वों और पुरुष के आदेशों की अनुपालनकर्ता भर होती है । सृष्टि की जननी को पिता और पति के घर में मूलभूत अधिकारों से वंचित किया गया । यह भी जग ज़ाहिर है कि पुरुष प्रधान समाज ने स्त्री को मनुष्य के रूप में सम्मान और पहचान नहीं दी, हाँ उसे देवी का रूप

देकर सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया वेश्या बनाकर समाज की मुख्यधारा से बाहर कर दिया । अभी तक इसका कोई प्रमाणिक साक्ष्य नहीं मिला है कि भारत में वेश्यावृत्ति की शुरुआत कब हुई ? परंतु भारतीय समाज में देवदासी प्रथा कहीं-न-कहीं वेश्यावृत्ति की एक इकाई ज़रूर है । हिंदी साहित्य में देखें तो सर्वप्रथम 1899 में "किशोरीलाल गोस्वामी" ने "वेश्यावृत्ति और देवदासी" प्रथा को आधार बनाकर 'कुसुमकुमारी' के नाम से हिंदी का पहला उपन्यास लिखा । उपन्यास में परिस्थितियों द्वारा हाशिये पर डाल दी गई मुक्ति की चेतना से लैस उपन्यास की नायिका कुसुमकुमारी ने वेश्यावृत्ति जैसे "घिनौने कुकृत्य" के साथ देवदासी प्रथा के विरुद्ध आवाज को बुलंद किया है, ''जिस प्रथा में व्यभिचार और वेश्यावृत्ति की दिन-दुनी रात चौगनी बढ़वार हुई जा रही है, उस प्रथा को धर्म का अंग मानना यह कैसा विचार है ? |''[1] उपन्यास की नायिका का वक्तव्य समाज में व्याप्त वेश्यावृत्ति की समस्या और हिन्दू धर्म की संरचना पर चोट करते हुए "वेश्यावृत्ति और देवदासी प्रथा" को बनाये रखने में धर्म की भूमिका पर सवाल खड़ा करता है । इसी परंपरा में आगे चलकर 1918 में प्रेमचंद ने सेवासदन में वेश्यावृत्ति की समस्या को उठाते हुए दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, पति द्वारा प्रताड़ित, पति का स्त्री के प्रति अविश्वास तथा समाज का उपेक्षित नजरिये को वेश्यावृत्ति मुख्य कारण माना है | सेवासदन अपनी प्रकृति में भारतीय समाज की संरचना का मूल्याकंन करते हुए एक ऐसी भारतीय नारी का चरित्र पेश करता है जो अपनी उपेक्षा, अपमान और पति

के शंकालु स्वभाव से विद्रोह कर आत्मसमान का बदला लेने के लिए भोली बाई के पास जाकर वेश्यावृत्ति अपना लेती है । परंतु सलाम आख़िरी की पिंकी और मुरदाघर की काली लड़की की तरह सेवासदन की सुमन को वेश्यावृत्ति के दल-दल में कोई जबरदस्ती नहीं धकेलता है बल्कि सुमन द्वारा वेश्यावृत्ति अपनाने के पीछे पति का अविश्वास और समाज की उपेक्षा एक हद तक ज़िम्मेवार है । भोली बाई के पास जाकर सुमन समाज की असलियत से वाक़िफ़ होती है, ''आज तक मैं समझती थी कि कुचरित्र लोग ही रमणियों पर जान देते हैं किन्तु आज मालुम हुआ कि उनकी पहुंच सुचरित्र और सदाचारशील लोगों पुरुषों में भी कम नहीं हैं | वकील साहब कितने सज्जन आदमी हैं लेकिन आज वह भोली बाई पर कैसे लट्टू हो रहे थे |''[2]

सेवासदन उपन्यास समाज के दोहरे चरित्र को उद्घाटित करता हुआ समाज की कथनी और करनी के फर्क को प्रदर्शित करता है । जो लोग सिद्धांत की बातें करते हैं वही तथाकथित सभ्य लोग तवायफों के पास जाते हैं । सुमन को वेश्या बनाने के लिए गजाधर का अविश्वास जितना जिम्मेवार है, उतना ही शर्मा जी भी जिम्मेवार हैं । शर्मा जी चाहते तो सुमन को वेश्या बनने से रोक सकते थे, परन्तु शर्मा जी को स्त्री के जीवन की बर्बादी से ज़्यादा अपनी इज्जत, प्रतिष्ठा का मोह था । इसी इज्जत और प्रतिष्ठा के कम हो जाने के डर से पदमसिंह अपनी पत्नी को समझाते हुए कहता है, ''सुमन से कहो कि तुम्हारें रहने से उनकी बदनामी हो रही

है |"[3] ऐसी स्थिति में सामाजिक व्यवस्था के ठेकेदारों के दोहरे चरित्र को पढ़ पाना मुश्किल होता है । समाज में प्रचलित रूढ़ियों से लड़ने की बजाए शिक्षित और सभ्य समाज को अपनी इज्जत और प्रतिष्ठा का मोह अधिक होता है । सुमन की दृष्टी में पदमसिंह की छवि एक सभ्य और भले आदमी की थी । ''मैं इन पंडित जी को कितना भला आदमी समझती थी पर अब मालूम हुआ कि यह भी रंगे हुए सियार है |"[4] पुरुष ने सामाजिक परंपराओं और मर्यादा के नाम पर ऐसे मानदंड बनाए हुए है जिनका अनुपालन करना स्त्री के लिए है । ऐसे रुढ़िवादी समाज द्वारा निर्मित लोक-लाज की रेखा को लांघ नहीं सकती है । सामंती समाज द्वारा निर्मित रूढ़ियों और परंपराओं के ऐसे मानदंड हैं जो केवल स्त्री के लिए अनिवार्य हैं लेकिन पुरुष उनसे स्वतंत्र है । सेवासदन की सुमन ऐसे ही मानदंडों से बंधी हुई है ।, ''तुम सच कहती हो, बेशक हिन्दू जाति अधोगति को पहुंच गयी और अब तक वह कभी की नष्ट हो गयी होती, पर हिन्दू स्त्रियों ही ने अभी तक उसकी मर्यादा की रक्षा की है | उन्ही के सत्य और सुकीर्ति ने उसे बचाया है | केवल हिन्दुओं की लाज रखने के लिए लाखों स्त्रियाँ आग में भस्म हो गयी हैं | यही वह विलक्षण भूमि है, जहां स्त्रियाँ नाना प्रकार के कष्ट भोगकर, अपमान और निरादर सहकर पुरषों की अमानुषीय क्रूरताओं को चित में न लाकर हिन्दू जाति का मुख उज्ज्वल करती थीं | यह साधारण स्त्रियों का गुण था और ब्राह्मणियों का तो पूछना ही क्या ? पर शोक है कि वही देवियाँ अब इस भांति मर्यादा का त्याग करने लगी हैं |"[5]

भारतीय समाज और उसकी अनोखी वर्णाश्रम व्यवस्था धर्म द्वारा निर्मित व संचालित है । देवदासी प्रथा इसी अनोखी वर्णाश्रम व्यवस्था और धार्मिक अंधविश्वासों का परिणाम है जिसने स्त्री को काल्पनिक देव की पत्नी का नाम देकर पुजारी की रखेल बना दिया है | यह सत्य है कि धर्म और सामाजिक रूढ़ियों से संचालित समाज में स्त्री को कभी पुरुष के बराबर अधिकार नहीं मिले । बल्कि कुल और धर्म के नाम पर उसकी अस्मिता के साथ खिलवाड़ होता रहा । सेवासदन समाज में उसी कुल, धर्म की रक्षा के नाम पर स्त्री के शोषण को दिखलाता है । ''माना कि तुम्हारा पति दरिद्र था, क्रोधी था, चरित्रहीन था, माना कि उसने तुम्हें घर से बाहर निकाल दिया था, लेकिन ब्राह्मणी अपनी जाति में कुल के नाम पर यह सब दुःख झेलती है । आपत्तियों को झेलना और दुरावस्था में स्थिर रहना यही सच्ची ब्राह्मणियों का धर्म है, पर तुमने तो वह किया जो नीच जाति की कुलटाएँ किया करती हैं, पति से रूठकर मैकें भागती हैं और मैके में निबाह न हुआ तो चकले की राह लेती हैं ।''[6]

सेवासदन में स्त्री के प्रति समाज का दौहरा चरित्र उजागर होता है जब पत्नी को पति द्वारा प्रताड़ित किया जाता है तो सभ्य समाज को कोई तकलीफ नहीं होती है न ही समाज स्त्री के बचाव में आगे आता है । लेकिन जब प्रताड़ित स्त्री अपने स्वतंत्र मार्ग चुनाव करती है तो समाज को लोक-लाज की चिंता सताने लग जाती है । ''तुमने लोक-लाज, कुल-मर्यादा को लात मार कर कुपथ ग्रहण किया क्या तुमने ऐसी स्त्रियाँ नहीं देखी जो

तुमसे कहीं दीन-हीन, दरिद्र दु:खी हैं ?''[7] रुढ़िवादी समाज में लोक-लाज व कुल-मर्यादा स्त्री के चरित्र के लिए अनिवार्य गहने हैं जिनकी रक्षा के नाम पर असंख्य स्त्रियों के स्वप्नों और अभिलाषाओं को कुचला गया है । सुमन की स्थिति लोक-लाज और कुल-मर्यादा के चक्रव्यूह का परिणाम है, ''यदि उस निर्दयी मनुष्य ने अपनी बदनामी के भय से मेरी अवहेलना न की होती, तो मुझे इस पाप कुंड में कुदने का साहस न होता |''[8]

सेवासदन में प्रेमचंद सुमन के वेश्यावृति अपना लेने के पीछे जीवन में धन के अभाव को मूल वजह मानते हुए लिखते हैं, ''स्त्रियों को अगर भगवान सुन्दरता दे तो धन से वंचित न रखे, धन-हीन सुंदर, चतुर स्त्री पर दुर्व्यसन का मन्त्र शीघ्र चल जाता है |''[9] सुमन द्वारा वेश्यावृत्ति अपनाने के पीछे केवल धन का अभाव नहीं बल्कि वह पूरी सामाजिक व्यवस्था ज़िम्मेवार है, जो उसे भोली बाई तक पहुचाने के लिए बाध्य करती है । उपन्यास की सीमा है कि वह "वेश्यावृत्ति की समस्या" के मूल की खोज नहीं कर पाता है | समाज में चिरकाल से बनी हुई "वेश्यावृत्ति की समस्या" ने लाखों स्त्रियों के जीवन को असमय काल का ग्रास बना लिया । हमारे समाज और उसके साहित्यकार समस्या की जड़ व उसका समाधान खोजने की ज़हमत ना करके समस्या को ही कोसते आ रहें हैं । सेवासदन में प्रेमचंद भी समस्या का व्यवहारिक समाधान प्रस्तुत करने की जगह आश्रम के रूप में एक आदर्शवादी समाधान पेश करते हैं । परंतु सेवासदन पर बात करते हुए हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि जब यह उपन्यास लिखा

गया था उस समय हमारा समाज ब्रिटिश उपनिवेशवाद के साये में था । समाज एक तरफ बाहरी ताकतों से लड़ रहा था, तथा दूसरी ओर आंतरिक समस्याएँ समाज को खोखला कर रही थी । समय के साथ हमने विदेशी हुकूमतों से तो पार पा लिया, परन्तु हमारी अंदरूनी सामाजिक समस्याएं ज्यों-की-त्यों बनी हुई हैं ।

त्यागपत्र उपन्यास में सीधे तौर पर वेश्यावृत्ति की समस्या का ज़िक्र नहीं है लेकिन विवाह संस्था की खामियों को उजागर करते हुए समाज में स्त्री की स्थिति, स्वतंत्रता और अधिकारों का विश्लेषण करता हुआ सामाजिक संरचना के सांचे को दिखलाता है । जिसमें सामाजिक विधानों के द्वारा मध्यम वर्गीय स्त्री की जीवनगत महत्वाकांक्षाओं को दबाया जाता है । त्यागपत्र की मृणाल सामंती समाज के बन्धनों को समझती है और केवल समझती ही नहीं बल्कि उनको नकार कर स्वतंत्र रूप से अपनी शर्त पर अपना जीवन जीना चाहती है, ''मैं नहीं बुआ होना चाहती ! बुआ छी: ! देख चिड़िया कितनी ऊची उड़ जाती है | मैं चिड़िया होना चाहती हूँ |...उसके छोटे छोटे पंख होते हैं | पंख खोल वह आसमान में जिधर चाहे उड़ जाती है |''[10] मृणाल और सेवासदन की सुमन दोनों को सामंती समाज की रूढ़िवादी परिपाटी स्वीकार्य नहीं है । दोनों ही उन रूढ़ियों के ख़िलाफ़ विद्रोह करती हैं, ''यह बेहूदा रिवाज यही के लोगों में हैं कि औरत को इतना जलील समझते हैं । नहीं तो और सब मुल्कों में औरतें आजाद हैं, अपनी

मर्जी से शादी करती हैं और जब उससे रास नहीं आता तो तलाक दे देती हैं । लेकिन हम वही पुराणी लकीर पिटे चले जा रहे हैं ।"[11]

रूढ़िवादी समाज की सामाजिक संरचना में स्त्री कहने को परिवार का अहम हिस्सा ज़रूर है लेकिन वह स्वतंत्रता और अधिकारों के लिए पूरी तरह पुरुष पर निर्भर होती है । उच्चवर्ग की बात हो अथवा निम्नवर्ग की, स्त्री की दशा में दोनों ही जगह कोई ख़ास अंतर नहीं है । स्त्री को सदियों से सामाजिक व्यवस्था के निचले पायेदान पर रखा गया है । परंतु जब भी स्त्री ने अपनी यथा स्थिति के विरुद्ध आवाज़ उठाई तो उसे सामंती व्यवस्था अपमान व तिरस्कार ही मिला है । साहित्य और इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जिसमें स्त्री ने जब भी सामंती समाज की रूढ़िवादी परंपराओं को चुनौती दी तो उसे समाज की मुख्य धारा से अलग-थलग कर दिया गया । उपन्यास की नायिका मृणाल ने सामंती रूढ़ियों को तोड़ने की कोशिश की । जिसके बदले में सामंती समाज ने मृणाल की शादी एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति से कर स्वछंद प्रेम की अभिलाषा को कुचल डाला । यह सामंती समाज मृणाल को स्वछंद प्रेम की चाह का इनाम घर से निष्काषन और समाज की हेय दृष्टि के रूप में देता है । जो मृणाल को कुरूप और वीभत्स जगहों पर जीवन व्यतीत करने को बाध्य करता है । "विचित्र मुहल्ला था । वहाँ दिन शायद ही कभी होता हो । दिन में रात होती थी और रात में क्या होगा, पता नहीं सटी-सटी कोठरियाँ थीं । वे

कोठरी ही दुकाने थी और रात में ख्बाबगाह । किसी पर सस्ती बिसाईत की चीजें हैं, तो किसी पर बासी साग भाजी और चुचके फल रखे हैं ।''[12]

मृणाल की दयनीय स्थिति के लिए उसकी स्वछंद प्रेम की चाह नहीं बल्कि सामंती समाज के मापदंड जिम्मेवार हैं । वह सामंती समाज मानदंडों को चुनौती देने व तोड़ने का दंड भोगती है । वह सड़ांध भरे परिवेश में रहने के लिए बाध्य की जाती है । ये वो स्थान हैं जहाँ तथाकथित सभ्य समाज की नज़र में दुर्जन लोग रहते हैं । लेकिन समाज यह भूल जाता है कि वह सड़ांध उन्ही के मनोविकारों की उपज है । समाज की नीतियों और परंपराओं ने ही उन्हें दुर्जन बनाया है । ''अभी तो इसी जगह हूँ । इस कोठरी में न रहूंगी, कोई और रहेगा । ये कोठरियाँ तो आबाद ही रहेंगी । इनमें रहने लायक आदमी बहुत हैं ।''[13] मृणाल के माध्यम से हम समाज से बहिष्कृत लोगों के लिए बनी हुई कोठरियों को देख पाते हैं । ये वे कोठरियां हैं जिनकों सदियों से पुरुष समाज ने अपनी कामवासनाओं को शांत करने का अड्डा बना रखा है । उपन्यास की नायिका मृणाल को अपने जीवन पर पुरुष की थोपी हुई शर्तें क़तई मंज़ूर नहीं हैं । मृणाल को पुरुष द्वारा निर्मित पवित्रता के मानक भी स्वीवार्य हैं, ''प्रमोद, मैं तुम्हे कैसे बताऊँ | मैं घर नहीं आ सकती थी | एक बार घर आकर मैं समझ गयी थी कि वैसे मैके जाना ठीक नहीं है | स्त्री जब तक ससुराल की है, तभी तक मैके की है | ससुराल से टूटी तब मैके से आप ही टूट गयी थी |''[14] हमारी सामाजिक संरचनाएं ही उन परम्पराओं और रूढ़ियों की जननी हैं जो

स्त्री के जीवन को नियंत्रित करती हैं । जब कोई स्त्री अपनी अभिमान व अस्मिता के लिए सामंती समाज की रूढ़ियों को चुनौती देती है तो उसे मृणाल की भाँति घर, परिवार और समाज से निष्कासन का दंश झेलना पड़ता है । सामंती व्यवस्था में स्त्री घर की तभी तक होती है, जब तक पति की होती है । एक पति द्वारा घर से निष्काषित कर देने पर एक साथ घर व समाज दोनों स्त्री के चरित्र पर संदेह करने लग जाते हैं । त्यागपत्र की मृणाल सामंती समाज की जंजीरों में जकड़ी हुई है । ये ऐसे मानदंड हैं जो मृणाल के स्वतंत्र जीवन को बाधित करते हुए स्वछंद प्रेम की अभिलाषा को भी अभिव्यक्त करने की अनुमति नहीं देते हैं । मृणाल ना केवल उन पितृसत्तात्मक समाज के विधानों का उलंघन करती है अपितु उनको तोडते हुए स्वतंत्र जीवन का चुनाव करती है । सामंती समाज मृणाल के विद्रोह की आवाज़ को दबाकर समाज मृणाल को दण्डित करता हुआ पितृसत्ता द्वारा पोषित स्त्री विरोधी विधानों को पुनः स्थापित करता है । मृणाल का स्वभाव सामान्य स्त्री से भिन्न है । मृणाल में हमें यह भिन्नता पितृसत्ता के सामाजिक विधानों को चुनौती देने में दिखाई देती है । मृणाल शोषण व उत्पीड़न के सामने समर्पण नहीं करती है । मृणाल द्वारा व्यवस्था के मानदंडों को ठुकराने चलते सामंती समाज उसे दर-दर भटकने को मजबूर करता है । मृणाल समाज से निष्कासित अभिशप्त जीवन जीने के लिए मजबूर घिनौनी और कलुषित वेश्याओं की घिनौनी बस्तियों की भागिनी बनती है । जब सामंती समाज एक संस्कारशील स्त्री पर लांछन लगाकर

उसका तिरस्कार करता है तो अपने आत्मसम्मान को बचाने के स्त्री प्रतिशोध पूर्वक ऐसा ही मार्ग चुन लेती है जिससे व्यवस्था के मानदंड और मनुवादी सहिंता तार-तार हो जाती है ।

मृणाल के लिए देह की पवित्रता से ज्यादा मन की पवित्रता अधिक वरणीय है । वह मन की पवित्रता की बदौलत पूर्ण रूप से समर्पित होना चाहती है लेकिन मृणाल यह समझ नहीं पाती है पुरुष के लिए स्त्री के मन से काहिं ज़्यादा तन पवित्र होता है । रुढ़िवादी समाज को स्त्री को एक स्त्री के देवदासी, वेश्या, भोग्या आदि सभी रूप स्वीकार्य हैं लेकिन उसे स्त्री का समर्पण वाला रूप क़तई स्वीकार्य नहीं है । ''जब तक पास है, तब तक वह पुरुष अन्य नहीं है । मेरा सब कुछ उसका है । उसकी सेवा में मैं त्रुटी नहीं कर सकती । पतिव्रत धर्म यही तो कहता है |''[15] मृणाल समर्पण के साथ पुरुष की मनोवृत्ति और पुरुष के चरित्र को समझती है । वह जानती है कि स्त्री के समर्पण से अधिक पुरुष स्त्री की देह को चाहता है । ''यह गर्भ इसी आदमी का है । लेकिन मैं जानती हूँ कि इस आदमी को अब मुझसे विरक्ति हो रही है और अपने परिवार की याद आ रही है | जब सबको छोड़कर मुझे साथ ले चलने को उतावला था, तब भी मैं जानती थी कि थोड़े दिन बाद इसे लौटकर अपने परिवार के बीच जाना होगा | जानती थी कि इसी अनुरक्ति में एक दिन प्रबल विरक्ति का भाव फूटेगा | जानती थी, इसलिए मैं उसे साथ ले आयी | वह बेरुखी का भाव अब शुरु हो गया है | अब उसे चले जाना चाहिए | परिवार उसका वहां अकेला है | मुझे वह नहीं झेल

सकता | मेरी कोशिश है कि वह मुझसे उकता जाए | अपनी अवस्था मैं जानती हूँ | पेट में बालक है, लेकिन ऐसी अवस्था में भी स्वार्थ की बात सोचना ठीक नहीं है | मैं उसे उसके परिवार में लौटाकर ही मानूँगी | अब समय आया है कि उसे इस बात की अक्ल आ जाए | अब उसका मोह टूट गया है | वह जान गया है कि मैं उसकी सवरस नहीं हूँ | मैं बस एक बदजात, बदकार बाजारू औरत हूँ |''[16]

मृणाल की अवस्था के लिए सामंती समाज के रचना विधान ज़िम्मेवार हैं । मृणाल जिस बस्ती में रहती है, वह बस्ती और बस्ती में रहने वाले लोगों का समाज की मुख्यधारा में कोई स्थान नहीं है । हाँ, उपेक्षित और अपमानित जीवन के बावजूद उनके भीतर स्पंदन और मानवीयता व्याप्त है । ''जिन लोगों के बीच बसी हूँ, वे समाज की जूठन हैं और कौन जानता है कि वे जूठन होने योग्य भी नहीं हैं | लेकिन आखिर तो इन्सान हैं, और यह बात जब कि उनके बीच आ पड़ी हूँ, मैं साफ़ देखती हूँ | मैं किसी भी और बात पर अब जिन्दा नहीं रहना चाहती हूँ | उनकी बुझती और जगती इंसानियत के भरोसे ही रहना चाहती हूँ | दर-दर भटकी हूँ और मैंने सिखा है कि दुर्जन लोगों की सदभावना के सिवा मेरी कुछ पूंजी नहीं हो सकती''[17]

तथाकथित सभ्य समाज के मानदंडों से परे मानवता की एक भरी-पूरी दुनिया है जो लोभ लालच, चरित्र सच्चरित्र से दूर है । ''यहाँ का लाभ ? तुम पूछोगें | लाभ बहुत है | यहाँ किसी को यह कहने का लोभ नहीं है कि वह सच्चरित्र है | यहाँ सच्चरित्रता के अर्थ में मानव का मूल्य नहीं माना

जाता हैं | यहाँ उसी हिसाब से मानव की घट-बढ़ कीमत है | मैं मानती हूँ कि यह रोग का मूल है | भयानक जड़ता है | किन्तु लाभदायक भी है | इस जगह आकर यह असंभव है कि कोई अपने को सच्चरित्र दिखाए, दिखना चाहे या दिखा सके | यहाँ सदाचार का कुछ मूल्य नहीं है, अपेक्षा ही नहीं है बल्कि ऋण मूल्य है | अगर कही भीतर, बहुत भीतर मज्जा तक में छिपा विकास का कीटाणु है तो यहाँ वह ऊपर रहेगा | यहाँ छल असंभव है, जो छल कि शिष्ट समाज में जरूरी ही है | यहाँ तहजीब की मांग नहीं है, सभ्यता की आशा नहीं है | बेहयाई जितनी उधड़ी सामने आए, उतनी ही रसीली बनती है | बर्बरता को लाज का आवरण नहीं चाहिए |''[18] जहाँ तक वेश्या जीवन की बात है त्यागपत्र भले ही विशुद्ध रूप में वेश्यावृत्ति पर लिखा गया उपन्यास ना हो, लेकिन वेश्यावृत्ति का चित्रण उपन्यास में पूरी भयावहता के साथ हुआ है । उपन्यास में चित्रित मलिन बस्तियाँ, छोटी-छोटी कोठरियाँ, समाज में व्याप्त वेश्यावृत्ति के घिनौने रूप को ही तो उजागर कर रहे हैं, ''जहाँ नगर सड़ांध रहती है, वहां वह रहती थी । अधेड़ अवस्था की वेश्याएं, बेकार मजदुर पेशेवर भिखमंगे, कानून की आँख और चंगुल से बचकर छिपे-उधड़े काम करने वाले उचक्के लोगों के रहने की जगह थी ।''[19]

त्यागपत्र उपन्यास में आधी सामन्ती और आधे पूंजीवादी, आधे नये एवं आधे पुराने समाज में मध्यवर्ग की तमाम मनोगत जटिलताओं और जिन्दगी के दोहरेपन के चलते नैतिकता के नाम पर रचनात्मक मूल्यों के

ग्रसत होने को दिखाता है | त्यागपत्र में अभिव्यक्त सामाजिक संरचना कोई एक दिन की देन नहीं है बल्कि सदियों के प्रयासों से निर्मित हुई व्यवस्था है । इस व्यवस्था को बनाए रखने और संचालित करने में मनुष्य की आंतरिक मनोवृत्तियों की महती भूमिका है । त्यागपत्र में शोषण और उत्पीड़न के ख़िलाफ़ समाज में कहीं बदलाव की छटपटाहट दिखाई नहीं देती है । प्रमोद का जजी से इस्तीफा देना केवल जजी से इस्तीफ़ा नहीं बल्कि मनुवादी व्यवस्था के सामने न्याय व्यवस्था का समर्पण है । यशपाल ने दिव्या में निर्मित कथा संसार के माध्यम से सामंती समाज की परम्पराओं में क़ैद स्त्री की स्थिति का अवलोकन किया है । उपन्यास की कथा का आधार ई० पू० दूसरी शताब्दी यवन शासक मिलिंद के बाद का शासनकाल है । जिसमें सुदूर इतिहास के कल्पित कथा संसार के माध्यम से समाज में नारी के उत्पीड़न को अभिव्यक्त किया गया है | ऐसा नहीं है कि नारी का शोषण अभी से शुरू हुआ है बल्कि नारी का उत्पीड़न सहस्त्र शताब्दियों से होता आ रहा है । इस शोषण में पितृसत्ता द्वारा निर्मित नारी विरोधी मापदंडों की प्रमुख भूमिका है । समाज में प्रचलित और स्वीकृत पितृसत्तात्मक समाज व जातीय व्यवस्था मानदंडो के उलघंन के अपराध में अभिजात ब्राह्मणकुल की कन्या दिव्या को समाज की मुख्यधारा से पद्दलित कर दिया जाता है । वह सामंती समाज नृत्यकला में पारंगत सरस्वती पुत्री के सम्मान से सुशोभित होने के बावजूद भी दिव्या को स्वछंद प्रेम की अनुमति नहीं देता है । अपनी ज़िद व प्रेम को पाने की चाह में

दिव्या स्त्री विरोधी मानदंडों को तोड़ते हुए श्रेष्ठ खडंगधारी दासपुत्र पृथुसेन को तन और मन समर्पित कर देती है । ऐसा कर दिव्या व्यवस्था स्थापित नियमों और ब्राह्मणवादी व्यवस्था दोनों को चुनौती दे डाली । सामंती समाज के विधान में स्त्री को प्रेम की आज़ादी नहीं होती है जिसकी सज़ा दिव्या को समाज से बहिष्कृत कर दी जाती है । आज के समय में स्त्री का बिना विवाह के गर्भ धारण करना समाज की नज़र में अपराध है । स्त्री के लिए उस दौर के नियम क़ानून और भी अधिक कठोर थे । दिव्या को उस प्रेम से भी निराशा ही मिलती है जिस प्रेम को पाने के लिए वह समाज की परम्पराओं को तोड़ती है । बल्कि धर्म और समाज द्वारा निर्मित विधानों को चुनौती देने की बजाए पृथुसेन दिव्या को छोड़कर अन्य (दूसरी) स्त्री से शादी कर लेता है । दिव्या उपन्यास में अभिव्यक्त मनुवादी व्यवस्था में प्रेम के लिए कोई जगह नहीं है ऐसी व्यवस्था में सभी साधनों से सम्पन, उच्चगुणशील व्यक्ति मृत्यु तक अपनी जातिगत पहचान से देखा जाता है । उपन्यास में पृथुसेन ऐसा ही पात्र है जो मनुवादी वर्णव्यवस्था में विधा, शस्त्र-विधा में निपुण और धन से सम्पन होने के बावजूद अपनी जातिगत पहचान से मुक्त नहीं हो पाता है । सामंती समाज शुरू से लेकर अंत तक उसे दासपुत्र के ही ओहदे से ही नवाजता है । यह ऐसी व्यवस्था है जिसके विधान में अर्जित मूल्यों की कोई कीमत नहीं है । ऐसी व्यवस्था के विधान में मनुष्य का जीवन और उसके जीवन के निर्णय जन्म के आधार पर तय होते हैं । सामंती समाज के विधान में कर्म द्वारा अर्जित बल, बुद्धि,

विधा, धन का कोई माल नहीं हैं ।, ''मनुष्य अपने कर्म से ही दु:ख पाता है परन्तु मेरे बच्चे का क्या कर्म है ? अभी तो वह उत्पन ही हुआ है | उत्पन होने से पूर्व ही उसका कर्म फल जुट गया ? वह भी नहीं जानता कि वह किस कर्म का दंड भोग रहा है | वह यह भी नहीं जानता की दंड भोग रहा है | हे देवता अपना अपराध या दुष्कर्म जाने बिना यह अबोध बालक दुष्कर्म से बचने का निश्चय कैसे करें ? यदि दुष्कर्म मैंने किया है तो दंड और भोग के लिये मैं प्रस्तुत हूँ | मेरा पुत्र क्यों क्षुधा पीड़ित हो ?...मैंने कौन दुष्कर्म किया है ? क्या पृथुसेन से अनुराग पाप था ? क्या गर्भ धारण करना ही पाप था । सम्पूर्ण सृष्टि गर्भ धारण करती है मैंने ही क्या किया है ? केवल द्विज समाज की आज्ञा के बिना गर्भ धारण किया, इसी कर्म का यह फल है ? क्या कर्मफल देने वाला द्विज समाज ही है ?"[20]

उपन्यास में धर्म और कर्म आधारित सामंती व्यवस्था के चक्र में फँसी हुई दिव्या की स्थिति को पेश करता है । दिव्या धर्म-कर्म आधारित व्यवस्था की तिकड़म से वाक़िफ़ है । इसीलिए दिव्या धर्म-कर्म की महिमामंडित परम्परा को अस्वीकार कर उसकी उपयोगिता पर सवाल खड़ा कर है । दिव्या जानती है कि धर्म-कर्म आधारित सामाजिक व्यवस्था में स्वतंत्र जीवन की अनुमति और धर्म द्वारा जीवन को आधार दोनों सिर्फ़ दिखावा है । ''भन्ते शरण चाहती हूँ । बुद्ध की शरण धर्म की शरण, संघ की शरण चाहती हूँ |''[21] जो धर्म सभी जीवों को समान मानता है वह भी

दिव्या को शरण देने में असमर्थ है । ''नहीं पिता, दासी कुछ इच्छा नहीं करती केवल अत्याचार से शरण माँगती है''[22] । धर्म भी स्त्री को तभी स्वतंत्र मानता है जब तक वह पिता-पति के कहने की है । ''देवी धर्म के नियम अनुसार स्त्री के अभिभावक की अनुमति के बिना संघ स्त्री को शरण नहीं दे सकता |''[23] दिव्या जिस धर्म में शोषण से मुक्ति के लिए शरण चाह रही है वह धर्म भी पुरुष समाज द्वारा निर्मित और संचालित है -'' परन्तु देव भगवान तथागत ने तो वेश्या अम्ब्रपाली को भी संघ में शरण दी थी । वेश्या स्वतंत्र नारी है, स्थविर ने आसन से उठते हुए उतर दिया |''[24] स्त्री के प्रति समाज व धर्म के दोहरे प्रतिमान कोई नई बात नहीं है । ''कुल नारी के लिये स्वतंत्रता कहाँ ? केवल वेश्या स्वतंत्र है ।''[25] धर्म स्त्री के एक रूप (वेश्या) को स्वतंत्र मानता तो दूसरे रूप को नहीं । धर्म और समाज की मिश्रित व्यवस्था में शोषित स्त्री के लिए कोई सुरक्षित स्थान नहीं होता है । लेखक ने स्त्री की स्वतंत्रता के परिप्रेक्ष्य में दिव्या की अभिलाषाओं की कसौटी पर धर्म और समाज की भूमिका का विश्लेषण किया है । हम पाते हैं कि समाज और धर्म सर्वथा स्त्री के शोषण में एक-दुसरे के पूरक रूप में आते हैं और दोनों जगह स्त्री अपने को पराधीन ही पाती है । चाहे वे सामाजिक विधान हो या धार्मिक सभी विधानों का निर्माता मनुष्य स्वयं है । यही वजह है कि ये नियम व विधान स्त्री को स्वतंत्रता दे ही नहीं सकते । धर्म के विधान में सदियों से स्त्री का शोषण हो रहा है जिसका निर्माता भी पुरुष है | ''मनुष्य केवल परिस्थितियों को सुलझता ही

नहीं, वह परिस्थितियों का निर्माण भी करता है । यह प्राकृतिक और भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन भी करता है । सामाजिक परिस्थितियों का वह सृष्टा है । मनुष्य भोगता नहीं, कर्ता है । सम्पूर्ण माया मनुष्य की ही क्रीड़ा हैं । मनुष्य से बड़ा है- केवल उसका अपना विश्वास और स्वयं उसका ही रचा हुआ विधान । अपने विश्वास और विधान के सम्मुख ही मनुष्य विवशता अनुभव करता है और स्वयं ही उसे बदल भी देता है ।''[26] धर्म और पुरुष द्वारा निर्मित संरचना सदैव स्त्री की स्वतंत्रता और उसके अस्तित्व को नकारती रही है । जब तक स्त्री पुरुष के ऊपर निर्भर है, जब तक स्त्री पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं हो जाती है उसका सम्पूर्ण विकास असंभव है । जब तक स्त्री सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक रूप से आत्मनिर्भर होकर अपने जीवन के फ़ैसलों की खुद जज बनेगी तब तक स्त्री सामाजिक व राजनीतिक अधिकारों को हासिल नहीं कर सकती । पुरुष को मालूम है कि यदि स्त्री आत्मनिर्भर हो जाएगी तो वह उसका शोषण नहीं कर पायेगा । यही कारण है कि पितृसत्ता ने हमेशा नारी को पुरुष पर निर्भर रखा और आज भी पुरुष पर आश्रित रखने का प्रयास जारी है । इसी तथ्य का उदाहरण है कि पितृसत्ता द्वारा संरक्षित और संचालित व्यवस्था में उच्च गुणशील नारी को दासी का दर्जा दिया जाता है | "मद्र में दिव्ज कन्या वेश्या के आसन पर बैठकर, जन के लिए भोग्या बनकर वर्णाश्रम को अपमानित नहीं कर सकती !''[27] आज भी स्त्री के सामंती समाज निर्मित चक्रव्यूह को समझ पाना और तोड़ पाना आसान नहीं है । सामंती समाज

चक्रव्यूह में स्त्री देवी के रूप में मानवीय अधिकारों से वंचित है तो वेश्या के रूप में समाज की मुख्यधारा से बेदख़ल है । कुलमिलकर दोनों ही रूपों में स्त्री के पास कोई अधिकार नहीं हैं । ''आचार्य, कुलवधू का आसन, कुलमाता का आसन कुल महादेवी का आसन दुर्लभ सम्मान है, यह अकिंचन नारी उस आसन के समुख आदर से मस्तक झुकाती है, परन्तु आचार्य, कुल माता और कुलमहादेवी निराद्रत वेश्या की भांति स्वतंत्र और आत्मनिर्भर नहीं हैं |''[28] स्त्री के शोषण में धर्म, समाज, सत्ता सभी का शाश्वत गठजोड़ है । इसलिए धर्म, समाज और सत्ता तीनों मिलकर स्त्री को शोषण के लिए भेडियों के संसार में धकेलते दिखाई देते है । उपन्यास का कथा संसार बौद्धकालिन समय पर आधारित होते हुए वर्तमान समाज के संदर्भ में स्त्री के सामाजिक विकास और मानवीय अस्तित्व में धर्म की भूमिका का विश्लेषण करता है । धर्म और समाज के विधान की शर्तें छुपी हुई व गहराई तक एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं । इसलिए जो स्त्री समाज में उपेक्षित है, वह धर्म में भी त्याज्य है, तथा जो दोनों जगह बहिष्कृत है वह वेश्या है । यानी कि वह चरित्रहीन है । उपन्यास की दिव्या समाज की ऐसी ही स्त्रियों का प्रतिनिधित्व कर रही है । ''देवी, भिक्षु का धर्म निर्वाण है । नारी प्रवृत्ति का मार्ग है । भिक्षु के धर्म में नारी त्याज्य है ।''29 सामंती समाज की बेड़ियों में जकड़ी हुई स्त्री की व्यथा कथा को "अमृत लाल नागर" ने 'सुहाग के नूपुर' उपन्यास में अभिव्यक्त किया है । उपन्यास की नायिका माधवी समाज द्वारा आरोपित नर्तकी के आवरण को उतारकर सभ्य कही

जाने वाली सामाजिक व्यवस्था के अनुशासन में जगह बनाकर नये जीवन की शुरुआत करना चाहती है । लेकिन सामंती व्यवस्था द्वारा निर्मित सारे प्रतिमानों को पूरा करने के बावजूद उच्च गुणशील और एकनिष्ट माधवी समाज में वह स्थान नहीं पा सकी, जो स्थान एक कुलीन स्त्री का स्थान है । उपन्यास की पूरी कहानी माधवी पर केंद्रित है जिसका पालन पोषण कुलीन स्त्री की भांति हुआ है और वह कोई जन्मजात वेश्या नहीं है । माधवी जन्म व कर्म से कुलीन स्त्री की भांति उच्च गुण सम्पन्न नारी है । यही कुलीनता व उच्च गुण सम्पन्नता माधवी को नया जीवन शुरू करने का विश्वास तथा सामंती समाज को चुनौती देने की हिम्मत देता है । ''मैं वेश्या नहीं हूँ-न जन्म से, न कर्म से | सात भाँवरों का खेल न खेलकर भी मैंने तुम्हारा वरण किया है | मैं सती हूँ |''[30] माधवी के विश्वास की वजह है कि उसने ने कुलीन स्त्री की भांति एक ही पुरुष का वरण किया है । जब सामंती समाज द्वारा माधवी के विश्वास को तोड़ा जाता है तो माधवी अपने जन्म को कोसती है । काश वह किसी कुलीन घर में पैदा होती तो कोवलन की परिणीता होती । सामंती समाज में गुणों का कोई महत्व नहीं होता बल्कि वहाँ मनुष्य का स्थान गुणों से तय ना होकर अपितु जन्म से निर्धारित होता है । माधवी चेलम्मा, पेरियनायकी, नागरत्ना आदि स्त्रियों की भाँति सामंती विधान के अधीन होकर वेश्या नहीं बनना चाहती है बल्कि वह सामंती बेड़ियों को तोड़कर स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है । माधवी सामंती समाज की चाल-बाज़ियों को समझती व जानती है । वह यह भी

जानती है कि सामंती समाज में सती के लिए भी वही स्थान है जो एक वेश्या के लिए है, ''स्त्री का जीवन भी क्या है ! उसे सती होकर भी चैन नहीं और वेश्या होकर भी नहीं |''[31] सामंती समाज का विधान कुलीन स्त्री और एक उच्चगुणशील नर्तकी दोनों को ही मर्द की वासनाओं की पूर्ति की वस्तु भर मानता है ।

सामन्ती समाज के विधान में स्त्री की रचनात्मक प्रतिभा का कोई मूल्य नहीं होता । ऐसे समाज के विधान में स्त्री केवल वस्तु होती है । स्त्री के प्रति ऐसी सोच वाला समाज वेश्यावृत्ति के लिए ज़िम्मेवार है, केवल वह ज़िम्मेवार ही नहीं है अपितु वेश्यावृत्ति के संरक्षक और पोषक भी है । इस सोच में आज भी कोई बदलाव नहीं आया है जो सोच सामंती समाज में स्त्रियों को मनोविनोद का साधन मानती थी वही सोच पूँजीवादी दौर स्त्रियों को उपभोग की वस्तु ही समझती है । सामंती समाज में वेश्याओं को समाज के उच्चकुलों का संरक्षण प्राप्त होता था और उच्चकुलों का प्रत्येक उत्सव नृतकियों के नाच-गायन के बिना अधुरा ही होता था । यही नहीं अपितु जब व्यापारी लोग व्यापार के लिए बाहर जाते थे, तब अपने मनोरंजन व भोग-विलास के लिए वेश्याओं और नृतकियों को साथ लेकर जाते थे । व्यापारी या सामंती लोगों के लिए वेश्या या रखेल को रखना कुलीनता का प्रतीक होता था । अपने विनोद के लिए कुलीनता की प्रतीक सुंदर स्त्रियों के चुनाव हेतु सामंती समाज प्रत्येक वर्ष नृत्य प्रतियोगताओं का आयोजन भी करवाता था | सामन्ती समाज ने स्त्री के लिए केवल दो ही जगह मुकर्रर

कर रखी थी, एक, वह पत्नी बनकर दासी के रूप में घर की चारदीवारी में रहें तथा दूसरा, घर से बाहर वेश्या के रूप में भोग्या । 'सुहाग के नुपूर' उपन्यास में हमें स्त्री के दोनों शोषित रूपों की तस्वीर देखने को मिलती है । वह सोच भी दिखती है जो स्त्री को केवल दासी समझती है । यह इसी सोच से परिपूर्ण उदाहरण है उपन्यास नायिका कन्नगी जिस कोवलन में अपना जीवनसाथी देखती है वह कोवलन कन्नगी को दासी से अधिक कुछ नहीं मानता है । ''वधु की श्रृंगार-सज्जा नवयुवतियों के गीत-विनोद और हास-विलास के साथ पूरी हुई | झटके से प्रकोष्ठ का द्वार खुला | सहसा कोवलन उसके पास आया | कोवलन ने कन्नगी का हाथ पकड़कर झिटकते हुए कहा-''कौन हो तुम ?

कानों में दूसरी बार पति का कठोर प्रश्न प्रहार की तरह पड़ा, ''कौन हो ?''

तीसरी बार पति का प्रश्न धीमे स्वर में सिंह की दहाड़ की तरह गरजा, बोलती क्यों नहीं ? कौन हो ?

कन्नगी को लगा की अब उत्तर दिए बिना काम नहीं चलेगा | सहमे हाथों पति के चरण स्पर्शकर उसने कहा, 'आप की दासी |'

यही सुनना चाहता था | पत्नी के रूप में पुरुष एक स्त्री को दासी बनाकर अपने घर लाता है, समझी ! साधारण स्त्रियाँ साधारण मोल पर हाट में बिकती हैं, ऊँचे कुलों की स्त्रियों को दासी बनाने के लिए सोने-रुपे की थैलियों का मुँह खुल जाता है, अंतर केवल इतना ही है |''[32] जब

मध्ययुगीन सामंती मूल्यों से ओतप्रोत समाज में नारी उच्च कुल में पैदा होकर भी एक दासी का जीवन गुजारती है । तो ऐसे समाज में दासी का क्या जीवन हो सकता है ? इसकी कल्पना करना कोई मुश्किल काम नहीं है । सामंती व्यवस्था की विलासी प्रवृति के चलते ''कामदेव का नवधनुष'' राजनर्तकी के पद से सम्मानित भिखारी बना दी गई चेलम्मा व्यवस्था के भोग-विलास वाले मुखौटे के बारें में माधवी को आगाह भी करती है | ''परन्तु याद रख, कोवलन तेरे पैरों में सुहाग के नूपुर नहीं डालेगा, वे तो मानाइहन की बेटी कन्नगी को ही जाएंगें | हो सकता है कि तू, मैं, तेरी अम्मा और वे सब अभागिनें जो अपने अबोध बचपन में लुटी, चुराई और बेची जाकर परिस्थितिवश वेश्या बनती हैं, किसी-न-किसी बड़े कुलीन और बड़े धनाधीश की ही पुत्री हों, परन्तु अब हमारा उस अनजाने की कुलीनता से क्या लेना-देना | हम उनके आचरण क्यों अपनाएँ | हम वेश्या हैं हमें वेश्या ही रहना चाहियें |...इस पर भी तू यदि जीव की तरह जीव से प्रेम करने के सिद्धांत में विश्वास रखेगी तो तेरा वैसा सत्यानाश भी हो सकता है जैसा कि लोग मेरा मानते हैं, यघपि मैं नहीं मानती, कभी नहीं मानूंगी |''[33]

उपन्यास की कथा ''सुहाग के नूपुर'' के आस पास ही घुमती है । माधवी सामंती मूल्यों के चक्रव्यूह को प्रेम के बल पर भेदकर स्वाभिमानी जिद को पूरा करने के लिए सुहाग के नूपुरों को धारण करना चाहती है । ऐसा करके माधवी उस सामंती विधान को तोड़ना चाहती है जिसे चेलम्मा

और पेरियनायकी नहीं तोड़ पाई थी । ''कुलीन पुरुष चाहे कितना भी विलासी हो, अपने घर की स्त्री को कितनी ही घृणा की दृष्टी से क्यों न देंखे, परन्तु एक जगह वह उसे हम लोगों से बड़ा मानता है |''[34] स्त्री पुरुष के लिखे गए इतिहास में स्त्री के बलिदान और पुरुष के स्वार्थ का मूल्यांकन ठीक ढंग से नहीं हुआ है । ''सारा इतिहास सच-सच लिखा है, देव ! केवल एक बात अपने महाकाव्य में और जोड़ दीजिए-पुरुष जाति के स्वार्थ और दंभ-भरी मुर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है | उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्धांग-नारी जाति-पीड़ित है | एकांकी दृष्टीकोण से सोचने के कारण ही पुरुष न तो स्त्री को सती बनाकर सुखी कर सका और न वेश्या बनाकर | इसी कारण वह स्वयं भी झकोले खाता है और खाता रहेगा | नारी कर रूप में न्याय रो रहा है, महाकवि ! उसके आंसुओं में अग्निप्रलय भी समाई है और जलप्रलय भी ! |''[35] पुरुष सामंती सोच के कारण स्त्री को ना ही पत्नी के रूप में और ना ही वेश्या के रूप में पूर्णत स्वीकार कर पाता है । वह पूर्णता के भ्रम में स्त्री का तिरस्कार करता रहता है ।

सामंती समाज में स्त्री अपने अधिकार और सम्मान की ख़ातिर पितृसत्ता को चुनौती देती है तो सामंती समाज उसे परंपरा और संस्कृति के ख़िलाफ़ विद्रोह बताकर अधिकार की आवाज़ को दबा देता है । अपनी सत्ता को बनाएँ रखने के लिए परंपरा और संस्कृति के नाम पर स्त्री को मर्यादा का पाठ पढ़ाता है । माधवी जिस एकनिष्ट पतिव्रता के विश्वास के साथ सामंती दीवारों से टकराती है । सामंती समाज उसके एकनिष्ट पतिव्रता के

विश्वास को विद्रोह बताकर दबा देता । ''इस नगर महाराज के आदेशानुसार हर कार्य अब सिद्ध हुआ । ताराओं से होड़ लेने वाले पटबीजने को उसकी स्थिति का ज्ञान भी करा दिया ।...ह..ह.! यही तुम्हारा दंड था प्रिये ! चलते समय महाराज ने मुझसे कहा था कि कुलवधुओं की प्रतिष्ठा के लिए समाज को नगरवधुओं की आवश्यकता रहेगी, केवल उन्हें उनकी मर्यादा में बांध दो । महाराज परम न्यायी हैं ! ।''[36] सदियों से कुल वधुओं की प्रतिष्ठा बचाने के नाम पर सामंती समाज वेश्यावृत्ति का पोशाक बना हुआ है ।

मोहनदास नैमिशराय ने ''आज बाज़ार बंद है'' उपन्यास के माध्यम धर्म, शासनतंत्र, सामाजिक अंधविश्वास के उत्पीड़न का शिकार स्त्रियों की दशा को अभिव्यक्त कर उन्हें (वेश्याओं) 'सामान्य स्त्रियाँ' और 'राष्ट्र की बेटियों' का सम्बोधन देकर प्रगतिशील सोच का परिचय दिया है । उपन्यास "वेश्यावृत्ति के अंधेरे" में जूझती राष्ट्र की बेटियों के जीवन की चुनौतियों के साथ शोषण, उत्पीड़न, अभावों की कहानियों से भरा पड़ा है । समाज में स्त्रियों का शारीरिक शोषण अन्याय व अत्याचार का सबसे वीभत्स और क्रूर रूप है । लेखक ने शोषण की भयावहता के साथ दासता से मुक्ति का रास्ता भी दिखलाया है | मोहनदास नैमिशराय उपन्यास की भूमिका में बाबा साहब अम्बेडकर की सभा के बारें में लिखते हैं, ''डॉ अम्बेडकर के धर्म परिवर्तन आन्दोलन के समर्थन में 16 जून 1936 को देवदास ठाकुर हाल में बम्बई की वेश्याओं ने एक सभा की थी | इस सभा में देवदासी पत्राजे,

भूते, आराधी और जोगती पंथ से सम्बधित स्त्री-पुरुषों ने बड़ी संख्या में भाग लिया था | इस सभा में डॉ अम्बेडकर ने कहा था कि, आप हमारे साथ धर्म परिवर्तन करें अथवा न करें, यह मेरे लिए अधिक महत्व का विषय नहीं है | परन्तु मैं आग्रह करता हूँ कि आप हमारे साथ आन्दोलन में रहना चाहती हैं तो आपको अपना यह अपमानित जीवन त्यागना चाहिए |"[37] बाबा साहेब अम्बेडकर सच्चे अर्थों में वेश्याओं की मुक्ति का सपना देख रहे थे । वे महिलाओं के शोषण व उत्पीड़न के लिए मनुस्मृति से संचालित हिंदू धर्म की परम्पराओं और रूढ़ियों को ज़िम्मेवार मानते थे । बाबा साहेब का मानना था कि भारतीय स्त्री पराधीनता के लिए ज़िम्मेवार धार्मिक नियमों को तोड़े बिना स्वाभिमान भरा जीवन नहीं जी सकती है । केवल यह कहना कि वेश्यावृत्ति का सम्बन्ध गरीबी से जुड़ा हुआ है यह आधा भी सच नहीं है । गरीबी के साथ अन्धविश्वास भी वेश्यावृत्ति के लिए उतना ही ज़िम्मेवार है । भारतीय समाज में वेश्यावृत्ति की जड़े बहुत गहरे स्तर पर जातिवाद से लेकर धार्मिक अनुष्ठानों तक जाती हैं | इसका एक बड़ा उदाहरण दक्षिण भारत में लगने वाले देवदासियों के मेलों से समझा जा सकता है जिसमें दलित समाज की औरतों को खरीदा और बेचा जाता है । आज बाज़ार बंद है उपन्यास में धर्म के नाम पर चल रही ख़रीद ख़रीद-फ़रोख़्त को उजागर करते हुए मोहनदास लिखते हैं, ''जब-जब भी देवदासी अनुष्ठान होता | तब-तब वह धार्मिक उत्सव के रूप में मनाया जाता | आस पास के गाँवों से लोग जुटते, वहीं उत्सव मेले का रूप ले लेता

| रंग बिरंगे कपड़े पहनकर स्त्री-पुरुष मनौती माँगने आते | उसी मेले में देवदासियों की तलाश होती थी | उन्हें खूब सजने-सवरने के लिए प्रेरित किया जाता था | ऐसे मेले को दलित समाज की औरतों के खरीदने तथा बेचने के उदेश्य हेतु हाट भी कह सकते हैं | उस मंडी में अनेक उत्सव होते थे और प्रत्येक उत्सव के बहाने किसी न किसी महिला का शोषण होना ही होता था | जिस उत्सव में महिला नहीं, वह उत्सव ही नहीं माना जाता था |''[38]

लेखक ने वेश्यावृत्ति के फलने-फूलने में धर्म और अन्धविश्वास की केंद्रीय भूमिका की पहचान को रेखांकित करते हुए उपन्यास की पात्र पार्वती के माध्यम से देवदासी के शोषण का जायज़ा लिया है । वे बताते हैं कि धर्म और अन्धविश्वास के जाल में फँसाकर मंदिर के पुजारी, साहूकार, सामंतों की हवश को पूरा करने के लिए देवदासी बनाया जाता है । ''शिव ने पहले इसे मंदिर में बैठा कर देवदासी बनाया | फिर मंदिर से चकले भेज दिया | पहले मंदिर के पुजारी ने इसके शरीर को भोगा | फिर गाँव के पटेल ने बाजी मारी | दोनों का मन भर गया तों गाँव के सामंत साहूकार की बारी यानि हमारे समाज में जिसका जितना मान-सम्मान, उतना ही देवदासी को भोगने के अधिकार सुरक्षित होते हैं | अब रात में काले चोर के रूप में देवता आते हैं और इस देवी को भोगते हैं |''[39] केवल ग़रीबी या आर्थिक अभाव ही एक स्त्री को वेश्यावृत्ति के लिए मजबूर नहीं करते बल्कि धार्मिक पाखंडों से संचालित देवदासी जैसी प्रथाएँ भी स्त्रियों को वेश्यावृत्ति में धकेलने

के लिए ज़िम्मेवार हैं । पार्वती का देवदासी से लेकर वेश्या बनने तक सफ़र धर्म और पाखंड के मिश्रण का साक्षात् प्रमाण है । उपन्यास सामाजिक व्यवस्था के साथ सामंत, मठाधीश, समाज सेवी संस्थाएं आदि जो स्त्री को शोषण के अंधेरे गर्त में धकेल रहे को बेनक़ाब करता हैं । सामंती सोच से परिपूर्ण भ्रष्ट व्यवस्था ने अनगिनत हसीना और मुमताज बना दी है, ''यह है हसीना और ये मुमताज । हसीना अनाथालय में पली बढ़ी वह अनाथ थी । भाग कर यहाँ आ गई क्योंकि वहाँ भी यही काम होता था और यहाँ भी । अनाथालय और चकले में हम औरतों की स्थिति एक जैसी रही । फर्क केवल इतना है कि वहां सरकारी ग्राहक होते हैं और यहां प्राइवेट |''[40] हमारी सामाजिक व्यवस्था में मानवीय मूल्य ख़त्म हो चुके हैं । स्वार्थ की अंधी भाग-दौड़ के चलते अनाथालय जैसा स्थान भी स्त्री के लिए सुरक्षित नहीं है । हसीना और पार्वती की स्थिति में बस केवल इतना फ़र्क़ है कि हसीना अनाथालय के रास्ते होकर चकलाघर पहुंची है तो पार्वती मंदिर के रास्ते से । दोनों का रास्ता व सफ़र अलग-अलग ज़रूर है परंतु दोनों की मंज़िल एक (चकलाघर) है । लेखक का मानना है कि चकलाघरों में वेश्याओं का केवल दैहिक या मानसिक शोषण ही नहीं होता है अपितु वेश्याओं की कमाई से पुलिस, दलाल, समाजसेवियों, राजनेताओं आदि का भरण-पोषण भी होता है | पुलिस वालों से लेकर दलालों तक का वेश्याओं की गाढ़ी कमाई से विलासिता भरा जीवन आबाद है । मोहनदास नैमिशराय लिखते है कि वेश्याओं द्वारा वेश्यावृत्ति छोड़ देने पर बुर्जुआ लोगों के जीवन में भूचाल

आ जाएगा । वेश्याओं की गाढ़ी कमाई खाने वालों में भुखमरी आ जाएगी ।, ''बच्चे, जो महंगे पब्लिक स्कुल में पढ़ते हैं, वे अपने घर बैठ जाएगें । हजारों आधुनिक बनी बीवियां लिपिस्टिक लगाना भूल जाएंगी | मर्द महंगी शराब के लिए तरस जाएंगे | उनके घरों के एयरकंडीनशन बंद हो जाएंगे |''[41] 'आज बाज़ार बंद है' उपन्यास समाज की धार्मिक व राजनीतिक व्यवस्था की स्त्री विरोधी सीमाओं का अवलोकन करते हुए वेश्याओं की गरीबी, लाचारी के लिए ज़िम्मेवार पुलिसवालों, समाज के ठेकेदारों की अमानवीयता और क्रूरता का पर्दाफ़ाश करता है । जहां मंदिर में भगवान का रुप लिए कामुक पुजारी, कोठे पर मनुष्यरुपी भेड़िये स्त्री को भोग्य वस्तु समझकर उसकी मर्यादा का भक्षण करते हैं तो हफ्ता ना मिलने पर पुलिसवालें वेश्याओं को गिरफ्तार कर हवालात में उनका शारीरिक शोषण करते हैं । वेश्याएँ सदा दुष्प्रचार की शिकार रही हैं उन्हें बेहद चकाचौंध भरा जीवन जीने वाली, अपनी कुटिल चालबाजियों द्वारा शरीफ जमींदारो को लूटकर उनकी पत्नियों की गृहस्थी को चौपट करने वाली दुष्टाओं के रूप में दिखाया जाता हैं । उपन्यास समाज, राजनीति, धर्म और धर्म से संचालित सामाजिक अंधविश्वासों के सन्दर्भ में वेश्यावृति के कारणों की पड़ताल करता है । ''तू देवदासी है और देवदासी को शिकायत करने का कोई अधिकार नहीं होता | वरना देवता कुपित हो जायेंगे | स्वयं यलम्मादेवी तुझसे नाराज हो जाएगी | तेरा सत्यानाश हो जाएगा | तू कहीं की नहीं रहेगी |''[42] धर्म और भगवान का डर दिखाकर एक स्त्री को दासी, रखैल,

देवदासी बनाया जाता है । धर्म का डर उसके शोषण को नियति बताया जाता है । पार्वती धर्म के कुचक्र को अच्छे से समझती है और अपनी स्थिति के लिए तर्क-वितर्क करते हुए समाज व धर्म द्वारा स्थापित मान्यताओं को चुनौंती देती है, ''देवताओं की दासी को कोई और भोगे कोई और...देवता यह सब कैसे बर्दाश्त करते हैं | कमजोर से कमजोर पुरुष भी बर्दाश्त नहीं कर सकता |''[43] नारी शुरू से ही अपने शोषण को लेकर समाज और सामाजिक व्यवस्था के ठेकेदारों से सवाल करती रही है और आज भी अपने उत्पीड़न के विरुद्ध प्रतिरोध के स्वर को आवाज़ दे रही है । उसकी प्रतिरोध की आवाज को समाज और धर्म के गठजोड़ ने पहले भी दबाया है और आज भी दबा जा रहा है ।

मोहनदास नैमिसराय उपन्यास में धार्मिक उन्माद के पहलू को रेखांकित करते हुए धार्मिक उन्माद के कारण आम आदमी को होने वाली मुसीबत, धार्मिक उन्माद के कारण होने वाली जन-धन की हानि का जायज़ा लिया है । धार्मिक उन्माद के चलते और निर्दोष लोग मारे जाते हैं । इस धार्मिक उन्माद का असर कम या ज़्यादा समाज के सभी वर्गों पर पड़ता है लेकिन सबसे अधिक इसका असर गरीब व मज़दूर तबके पर होता है । ऐसे उन्मादी परिस्थितियों में वेशाएँ भी कहाँ तक बच पाती हैं । उपन्यास में हिन्दू मुस्लिम दंगे भड़क जाने के बाद लगे कर्फ्यू की वजह से दो दिन तक बाजार बंद रहता है जिसके चलते वेश्याओं के कोठों पर फाकाकशी तक की नौबत आ जाती है | धार्मिक उन्माद के बीच अपनी जान बचाता हुआ

सुमित संयोगवश एक कोठे पर चढ़ जाता है । जहां उसे वेश्याओं में सामान्य गृहस्थ औरतों का व्यवहार महसूस होता है । ये वेश्याएं सामान्य मनुष्य से अलग नहीं उनके भीतर भी जीवन जीने की लालसा है- ''परिस्थितिवश आज वह स्वयं वेश्याओं के बीच था, पर लगता नहीं था कि राष्ट्र की उन बेटियों में वेश्यावृत्ति भाव थे | भारतीय समाज में जैसा आम परिवारों में होता है वैसा ही पुरुषहीन इस परिवार में भी उसने महसूस किया था | महिलाओं में भीतर अभी भी शर्म और ह्या शेष थी | महिला होने का अहसास उनके भीतर मौजूद था | उनकी भाषा, हाव-भाव सभी कुछ वैसा ही था, जैसा आम ग्रहणियों में होता है |''[44] आमतौर पर वेश्याओं को कुटनी समझा जाता है लेकिन लेखक ने परंपरा से हटकर सुमित के माध्यम से वेश्याओं के प्रचलित रूपों से इतर मानवीय रूप को पाठक से समक्ष रखा है ।

पुलिस प्रशासन की बर्बरता के या पुलिस के उत्पीड़न और बर्ताव से तंग आकर वेश्याओं का थाने का घेराव कर पथराव करना वेश्याओं का उत्पीड़न के प्रति जागरूक व संगठित होना दर्शाता है । वेश्याएँ जानती हैं कि उत्पीड़न, अत्याचार से निपटने का, उसका प्रतिकार करने का रास्ता साँझा सघंर्ष ही हो सकता है | यह साँझे सघंर्ष के आत्मविश्वास की पुकार व मुक्ति की किरण मृत्यु शया पर लेटी शबनम बाई में देख सकते हैं - ''याद रखो तुम सभी को इस पेशे से मुक्त होना है | मैं उस मरघट में जाकर मुक्त होऊँगी तुम इस मरघट से मुक्त होना | याद रखना उस

मरघट से लौटकर इस मरघट में मत आना |"[45] वेश्याओं के भीतर मुक्ति की चाह साँझे सघंर्ष की ज़मीन और व्यवस्था से लड़ने की हिम्मत देती है । इस चाह और हिम्मत की बदौलत सदियों से अन्धेरी काल-कोठरियों में बंद निर्दोष स्त्रियाँ आबाद हो सकेंगी ।

समाज में व्याप्त वेश्यावृत्ति की समस्या को गम्भीरता से लेकर हिंदी साहित्य में बहुत कम लोगों ने उसे चिंतन का विषय बनाया है । साहित्यकारों के बाद समाज सुधारकों में अगर कुछ नामों को छोड़ दिया जाये तो समस्या पर बात करने वालों की लिस्ट छोटी ही है । वर्षों से वेश्यावृत्ति की गम्भीरता और व्यापक्ता को नज़रअन्दाज़ करने का ही परिणाम है कि आज वेश्याओं और वेश्यालयों की तादात कम होने की बजाए बढ़ती ही जा रही है । यह कहना और भी दुखद है कि भारतीय समाज में अभी तक वेश्यावृत्ति को सामाजिक समस्यां ही नहीं माना गया है । हाँ कुछ गिने-चुने साहित्यकारों ने अपने "रचना-कर्म के माध्यम" से वेश्यावृत्ति की समस्या की पड़ताल करने की कोशिश ज़रूर की है | उन कुछ प्रमुख साहित्यकारों में प्रेमचन्द 1918 में 'सेवासदन' में वेश्यावृत्ति की समस्या पर बात करते नज़र आते हैं । वे 1918 में बात ज़रूरू करते हैं परंतु प्रेमचंद समस्या की जड़ तक नहीं पहुँच पाते हैं । प्रेमचंद के बाद जैनेंद्र 'त्यागपत्र' में वेश्यावृत्ति पर बात करते हैं । वहीं यशपाल 'दिव्या' में तो "अमृतलाल नागर" 'सुहाग के नूपुर' उपन्यास में वेश्यावृत्ति की समस्या की ओर समाज का ध्यान खींचते हैं । अस्सी के दशक में आकर "जगदम्बा प्रसाद दीक्षित" ने 'मुरदाघर' में

वेश्यावृत्ति की समस्या को और अधिक गहराई के साथ समझते हुए उसके कारणों की पहचान की करने का प्रयास किया | वैसे तो दुनिया का साहित्य और इतिहास स्त्री शोषण, उत्पीड़न के संदर्भों की कहानियों से भरा पड़ा है । पूरी दुनिया के साहित्य व इतिहास में स्त्री के साथ हुए अमानवीय कुकृत्यों का मंजर एक जैसा ही दिखाई देता है । साहित्यकारों व समाज चिंतकों ने समय-समय पर चिंतन और बुद्धि कौशल के माध्यम "वेश्यावृत्ति" के नाम पर हो रहे कुकृत्यों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाकर साहित्य और इतिहास में जगह दी है | वैश्विक स्तर पर वेश्याजीवन को लेकर अलेक्जेंडर कुप्रिन के 'यामा दी पिट' की प्रसिद्ध और यथार्थवादी रचना से लेकर 1898 में वेश्याजीवन की सच्चाई को बखूबी उजागर करती हादी रुसवा की उर्दू में रचित 'उमराव जान अदा' को देख सकते हैं । लेकिन साहित्यकारों और समाज चेताओं द्वारा आगाह करने के बाद भी समाज सचेत नहीं हुआ और परिणाम यह हुआ कि वेश्यावृत्ति की समस्या दिन-प्रति-दिन और अधिक विकराल होती गई है । जिसने असंख्य स्त्रियों के सपनों और अभिलाषाओं पूरा होने से पहले ही दफ़न कर दिया ।

सन्दर्भ सूची:

1. लेख- उपन्यास और लोकतंत्र, मैनेजर पाण्डेय, पहल अप्रैल-जून 2004, पृष्ठ-79
2. सेवासदन, प्रेमचंद, संस्करण-1996, राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हॉउस प्रा.लि. जयपुर-302001, पृ.सं-29
3. वही पृ. सं-34
4. वही पृ. सं-35
5. वही पृ. सं-57-58
6. वही पृ. सं-58
7. वही पृ. सं-58
8. वही पृ. सं-71
9. वही पृ. सं-8
10. जैनेन्द्र कुमार, त्यागपत्र, संस्करण-2012, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-32, पृ. सं-12
11. सेवासदन, प्रेमचंद, संस्करण-1996, राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हॉउस प्रा.लि. जयपुर-302001, पृ.सं-36
12. जैनेन्द्र कुमार, त्यागपत्र, संस्करण-2012, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-32, पृ.सं-51
13. वही पृ. सं-55
14. वही पृ. सं-57

15. वही पृ. सं-61

16. वही पृ. सं-60

17. वही पृ. सं-80

18. वही पृ. सं-81

19. वही पृ. सं-83

20. यशपाल, दिव्या, संस्करण-2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद-01, पृ. सं-89

21. वही पृ. सं-91

22. वही पृ. वही

23. वही पृ. सं-92

24. वही पृ. सं-92

25. वही पृ. सं-93

26. वही पृ. सं-प्राकथन से उद्धरित

27. वही पृ. सं-154

28. वही पृ. सं-157

29. यशपाल, दिव्या, संस्करण-2012, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद-01, पृ. सं-158

30. वही पृ. सं-118

31. वही पृ. सं-37

32. वही पृ. सं-65

33. वही पृ. सं-37

34. वही पृ. सं-67

35. वही पृ. सं-192

36. वही पृ. सं-182

37. मोहनदास नैमिशराय, आज बाज़ार बंद है, संस्करण-2006, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-02, पृ. सं-6

38. वही पृ. सं-92

39. वही पृ. सं-33

40. वही पृ. सं-34

41. वही पृ. सं-35-36

42. वही पृ. सं-91

43. वही पृ. सं-92

44. वही पृ. सं-77

45. वही पृ. सं-150

अध्याय- दो

मुरदाघर में अभिव्यक्त यौनकर्मियों की समस्याएं

साहित्यकारों ने चिंतनदर्शन के साथ समय सापेक्ष सामाजिक समस्याओं व उसकी जड़ की पहचान के लिए सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थितियों का विश्लेषण किया है । मुरदाघर उपन्यास इसी समय सापेक्ष चिंतन का परिणाम है जिसमें जगदम्बाप्रसाद दीक्षित ने वेश्यावृत्ति के समानांतर सामाजिक समस्याओं को जन्म देने वाली आर्थिक विसंगतियों का वर्णन किया है । समाज की आर्थिक, सामाजिक ग़ैर-बराबरी और झोपड़पट्टियों में पनप रही वेश्यावृत्ति का यथार्थवादी चित्रण मुरदाघर के बाद के साहित्य में और उनकी पूर्वपरम्परा के साहित्य में दूर-दूर तक कम ही दिखाई देता है ।

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित जी पूर्व प्रेमचंद, जैनेन्द्र, यशपाल आदि अनेक रचनाकारों ने अपनी-अपनी रचनादृष्टि से सामाजिक संरचना में बंधी हुई नारी की स्थिति का व उनके जीवन से जुड़ी समस्याओं को समझने का प्रयास किया है । सभी रचनाकारों ने अपने परिवेश और रचना धर्म से बंध कर एक सीमित दायरे के भीतर रहकर समस्या का विश्लेषण किया ।

हिंदी उपन्यासों की परम्परा में वेश्यावृत्ति को आधार बनाकर लिखे गये उपन्यासों में मुरदाघर एक सार गर्भित रचना है | यह उपन्यास, स्वाधीन

भारत में औद्योगिक विकास के फलस्वरूप उपजी महानगरों की चकाचौंध के बीच बर्बाद हो गये गांवों के लोगों की बेबसी व रोजगार के अवसर की तलाश में गांवों से विमुख होकर शहरों की ओर उन्मुख हुए लोगों के विस्थापन के साथ महानगरों की चकाचौंध में वेश्यावृत्ति व अपराध कर्म के विस्तार के सवालों को केंद्र में रखता है है । मुरदाघर महानगरीय जीवन के अंधकार, सड़ांध में भूख और अभाव के बावजूद जीवन की अभिलाषा का स्वप्न लिए पल-पल परिस्थितियों से लड़ते लोगों के जीवन की त्रासदी की कहानी पेश करता है । मुरदाघर में वर्णित जीवन की अभिलाषाओं की त्रासदी के बारे में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना कुछ यूँ ब्याँ किया है । महानगरीय जीवन के जिस अंधकार और सड़ांध से भरे नरक को देखना और कुछ देर के लिए सहना जहाँ हम जैसे मध्यमवर्गीय लेखकों के लिए कठिन होता है वहां जगदम्बाप्रसाद दीक्षित तो उस असहनीय नरक में पैठते हैं और उसे बहुत शिदत के साथ अपनी रचनाओं के केंद्र में लेकर आते हैं ।

जब रचनाकार कोई अपने सामाजिक परिवेश से प्रभावित होकर रचना के ताने-बाने में अनुभव का पुट देता है तब जाकर कोई रचना यथार्थ व कालजयी बन पाती है । मुरदाघर में हमें लेखक के अनुभव का पुट उपन्यास के शुरु से लेकर अंत तक दिखाई पड़ता है । लेखक के अनुभव के साथ मुरदाघर अपने भीतर स्वाधीन भारत के 27 वर्षों का लेखा-जोखा समाहित किए हुए है । मुरदाघर के माध्यम से लगभग आज़ादी के ढाई दशक बाद समाज में हुए राजनीतिक और आर्थिक बदलावों का समाज पर पड़े प्रभावों

को लेखक ने पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है । सत्तर के दशक में औधोगिक विकास के कारण बड़े महानगरों के स्वरूप में जो बदलाव हो रहा था, उस औधोगिक विकास का परिणाम यह हुआ कि ग्रामीण जीवन और गाँवों में खेती-किसानी के साथ खेती-किसानी के साथ जुड़े परम्परागत काम धंधे ख़त्म हो गये । इस बदलाव ने निम्न वर्ग के जीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया । परम्परागत काम धंधों के ख़त्म हो जाने से काम की तलाश में लोग गांवों से विमुख होकर शहरों की ओर उन्मुख हुए जिसके परिणाम स्वरूप महानगरों में झोपड़पट्टीयों और गन्दी बस्तियों का तेज़ी से विस्तार हुआ । लेखक की राय में बेरोज़गारी व आर्थिक अभाव के कारण गन्दी बस्तियों में अपराधकर्म और वेश्यावृत्ति को विशेष तौर पर बढ़ावा मिला । जिस औद्योगिक विकास का मक़सद समाज में विकास के समान अवसर व समान संसाधन उपलब्ध करवाना था उसने समाज में ग़ैर-बराबरी पैदा कर एक वर्ग विशेष का संसाधनों पर ऐकाधिकार स्थापित कर दिया । जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर ग़ैर-बराबरी फैल गई ।

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित जी ने समाज में फैली सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ग़ैर-बराबरी के आलोक को केंद्र में रखकर वेश्याजीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त किया है । जगदम्बाप्रसाद दीक्षित जी से पहले सेवासदन में प्रेमचंद भी सेवासदन में वेश्यावृत्ति की समस्या को उठा चुके हैं लेकिन सेवासदन में मुरदाघर के मुक़ाबले वेश्याजीवन का चित्रण यथार्थवादी न

होकर आदर्शात्मक है | सेवासदन की नायिका सुमन वेश्यावृत्ति का चयन कर भूख और बेबसी की विवशतावश शरीर का सौदा नहीं करती है । सुमन केवल नृत्य और गायन द्वारा ही ग्राहकों को रिझाती है । सेवासदन की बाक़ी वेशाओं के यहाँ मुरदाघर की वेश्याओं की तरह एक वक्त की रोटी के लिए तन बेचने की मज़बूरी नहीं हैं और न ही बाल नोच-नोच कर एक-दुसरे को पटक देने जैसा 'काम्पटीशन' है, यह सब हमें मुरदाघर में कदम-कदम पर दिखाई देता है । सेवासदन के अलावा दिव्या में भी कहीं भूख और गरीबी का वैसा संकट दिखाई नहीं देता है, जैसा मुरदाघर में अभिव्यक्त हुआ है । मुरदाघर में वेश्याओं के यहाँ संगीत और नृत्य की दुनिया की जगह सीधे तौर पर जिस्मानी संबंधों की भयावह दुनिया है जिसमें जीवन का प्रति-दिन, प्रति-पल बेबसी से भरा हुआ है । ऐसी भूख और अभाव की भयावह स्थिति में गंदी बस्तियों सिवा वेश्याओं के पास दूसरा कोई आश्रय भी नहीं है । वेश्यावृत्ति को लेकर "जगदम्बा प्रसाद दीक्षित" जी ने दो कहानियां भी लिखी हैं मुरदाघर को उन्ही में से एक कहानी 'गंदगी और जिन्दगी' का विस्तार कहा जा सकता है ।

तवायफ, नगरवधू, नृतकी, दासी, देवदासी, वेश्या आदि स्त्री के शोषण के आवरण कहने में कोई ताज़ुब की नहीं होना चाहिए । शोषण के ये आवरण काम होने की बजाए मानव समाज के विकास अधिक जटिल रूप धारण करते जा रहे हैं । यह सब देख कर तो यही लगता है कि स्त्री के जीवन से जुड़ी समस्याओं के निराकरण की किरण अभी कोसों दूर है ।

हमारी सामाजिक संरचना में स्त्री का शोषण करने वाले कारक प्रत्येक स्तर पर अलग-अलग हैं | समाज से लेकर परिवार तक, जाति से लेकर धर्म तक स्त्री को प्रताड़ित करने में कोई कोताही नहीं बरतते हैं । स्त्री के लिए समाज, परिवार, धर्म द्वारा बनाये गये नियमों का पालन करना हर स्थिति में अनिवार्य है । धर्म व समाज के नियमों की अवहेलना करने वाली स्त्री सामंती समाज के क़ायदे में चरित्रहीन समझी जाती है । सामंती समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री के चरित्र को ही सम्मान का पर्याय माना जाता है और स्त्री तभी तक चरित्रवान मानी जाती है, जब तक वह प्रचलित मानदंडों का पालन करती रहती है । वह समाज में किसी की माँ, बहन, पत्नी या बेटी भी तभी हो सकती है जब वह पुरुष के बनाए क़ायदे का पालन करती है । इस क़ायदे में स्त्री की अस्मिता के साथ जबरन खिलवाड़ होने पर भी स्त्री ही दंड की हक़दार होती है । 'उमराव जान अदा' हो या अमृता प्रीतम का उपन्यास 'पिंजर' दोनों ही उपन्यासों मे स्त्री को जबरन घर से उठाकर पहली को वेश्या बना दिया जाता है और, दूसरी को विधर्मी की पत्नी । दोनों स्थितियों में स्त्री निर्दोष है लेकिन समाज की नज़र में उसका चरित्र भ्रष्ट हो चूका है । इसलिए उन्हें (स्त्रियों) खुद के रिश्तेदार भी स्वीकार नहीं करते हैं । यह ऐसी सामाजिक संरचना है जिसमें अन्यायी (पुरुष) को आश्रय मिलता है और अन्याय सहने वाली (स्त्री) को समाज, परिवार, धर्म सब ओर से अपमान, घृणा और तिरस्कार मिलता है ।

मुरदाघर की कहानी का आधार मुंबई महानगर की झोपड़पट्टी में रहने वाली वारांगनाओं का सड़ांध, धुल और कीच से सन्ना हुआ लाचार और बेबस जीवन है । साथ ही उपन्यास की कहानी में झोपड़ी और गगनचुम्बी आलीशान महलों का contrast भी है, जो हमारे समाज की सच्चाई को नग्नता के साथ उज्जागर करता है । इस contrast में एक ओर झोपड़पट्टी की वारांगनाओं, कीच-सड़ांध, रोगी-कोढ़ी, अपराधी-बदमाश आदि की दशों-दिशा के साथ दिशाहीन व उद्देश्यहीन झोपड़पट्टी के लोगों का जीवन है तो दूसरी ओर गगनचुंबी इमारतों की सफ़ेद रोशनी में नहाई सपनों से भरी सफ़ेदपोश दुनिया है । जिसमें एक वर्ग के लिए अंधेरें के साथ दिन की किरण भी है तो दूसरे वर्ग के अंतहीन सपनों की छलावे से भरी दुनिया है ।

मुरदाघर की वेशाएँ आलिशान महलों में रहने वाली या किसी सामंत राजा के आश्रय में रहने वाली दासियाँ नहीं हैं, बल्कि झोपड़पट्टी में रहने वाली सामान्य औरतें हैं । जिनको जीवन में व्याप्त गरीबी और अभाव के कारण शारीरिक और मानसिक शोषण के लिए बाध्य होने पड़ता हैं । ये वो वेश्याएँ है जिनकी दुनिया में भूख की विवशता से बड़ी कोई विवशता नहीं है । भूख की विवशता ऐसी है कि उसके सामने जिन्दगी के सारे सवाल धुंधले पड़ हुए हैं । मुरदाघर की वेश्याओं की हाड़-तोड़ मेहनत भी भूख के सवाल को मिटा नहीं पाती है । स्थिति ऐसी है कि वेश्याओं की हर आने वाली सुबह और शाम बस एक ही चिंता में बीतती है । शाम भूखी-प्यासी

बीत गई लेकिन सुबह का चूल्हा कैसे जलेगा ? जब हम भोजन की गारंटी या पीडीएस जैसी स्कीम चला रहें है । उस समय में देश के महानगरों का एक बड़ा वर्ग भोजन से वंचित है । किसी पाठक या आलोचक के लिए मुरदाघर में अभिव्यक्त झोपड़पट्टियों की गृहणी वेश्याओं की रोटी की चिंता प्रतीकात्मक हो सकती है लेकिन धरातल की असलियत यही है । आज भी समाज और सरकार की ओर से गंदी बस्तियों में रहने वाले लोगों की भूख और लाचारी से मुक्ति के लिए कोई सकारात्मक पहल नहीं हो रही है । लेखक ने उपन्यास के माध्यम से समाज के वर्गीय विभाजन को भी चित्रित किया है । इस वर्गीय संरचना में एक वर्ग तमाम तरह से साधन सम्पन्न है तथा दूसरा वर्ग व्यवस्था की नीतियों की वजह से बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने में भी असमर्थ है । यह विभाजन केवल आर्थिक स्तर पर ही नहीं है बल्कि सामाजिक और भौगोलिक स्तर पर भी व्याप्त है । उपन्यास में विकास की पूरक सड़क से दो वर्गों के बीच के सामाजिक और आर्थिक विभाजन को साफ़-साफ़ देखा जा सकता है । विकास की पूरक सड़क की एक ओर झोपड़पट्टियाँ हैं, जिनमें भूख, विवशता और लाचारी भरा दुर्गम जीवन है वहीं, सड़क की दूसरी ओर सफेद रोशनी में नहाई ऊँची इमारतों में गीत हंसी के ठहाकों की सपनों भरी दुनिया है । जिसमें न भूख का डर और न ही काली रातों से सुरक्षा का कोई भय ।

मुरदाघर के केंद्र में वेश्या जीवन ज़रूर है । लेकिन सभी घटनाएँ वेश्यावृत्ति के इर्द-गिर्द ही घूमती हैं । समाज की प्रत्येक घटना का असर

वेश्याओं के जीवन पर देखा जा सकता है । एक स्त्री के वेश्या बनने की मुख्य वजह आर्थिक ही समझी जाती है । परंतु गहराई से समझने पर पता चलता है कि वेश्यावृत्ति अपनाने के कारण और उनके निर्माण में सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परम्पराओं की अहम भूमिका होती है । मुरदाघर वेश्यावृत्ति से सम्बंधित धरातलीय तथ्यों की तह तक जाकर वेश्याओं के प्रति सफेदपोश समाज के नजरियें के साथ प्रशासन की अमानवीयता के विद्रूप चित्र को उजागर कर अमानवीय वातावरण से भरे पूंजीवादी समाज के आर्थिक विकास का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है । जिसे हम आर्थिक विकास बता रहे हैं उस अति पूँजीवाद की अंधाधुँध दौड़ ने आदमी को कुली, मजदूर और भिखारी बनाकर झोपड़पट्टियों में रहने को विवश कर समाज में गरीब-अमीर के फासले को कम करने की बजाय और अधिक गहरा किया है । इस विकास की चकाचौंध दुनिया में आम आदमी की कोई हिस्सेदारी व भागीदारी नहीं है । यह घोर पूंजीवाद का ही परिणाम है कि विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों को लूटा जा रहा है । यह उपन्यास घोर पूंजीवाद के विकास की कहानी बयाँ कर रहा है ।

मुरदाघर उपन्यास में चित्रित झोपड़पट्टीयों की दुनिया 21वीं सदी के तीसरे दशक में भी मुंबई जैसे अनेक बड़े महानगरों में रेललाइनों के किनारे यथासंभव बनी और बसी हुई है । गौर करने वाली बात यह है राज्य की कल्याणकारी योजनाओं में समाज की मुख्य धारा से पिछड़ गये लोगों के लिए कोई स्पष्ट रोड मैप दिखाई नहीं देता । एक ओर हम विश्व शक्ति

बनने की उद्घोषणा कर रहे हैं वहीं रेलवे पटरियों के किनारे बसी गन्दी बस्तियों में बच्चे समाज की जूठन खा रहे हैं । औरते एक वक्त की रोटी की खोज में जिस्म का सौदा कर रही हैं । पुरुष सपनों को पाने की चाह में अपराध की दुनिया का ग़ुलाम बना हुआ है । विकास की 21वीं सदी की यही सचाई है कि समाज में फैली ग़ैर-बराबरी की कोई सुध लेने वाला नहीं है ।

मुरदाघर का वर्णित कथा संसार हमारे समाज में व्याप्त बदबूदार, कोढ़ी अपाहिजों की पागल दुनिया का जीता जागता दस्तावेज है जहां मनुष्य और जानवर के क्रिया-कलापों में फर्क करना असम्भव है । पैसों की अंधी-दौड़ में हमारा समाज संवेदनहीनता की पराकाष्ठ पर पहुँचा गया है ।, ''फिर कट गया कोई रेल की पटरियों पर आदमी या जानवर...कोई फर्क नहीं । मंडरा रहे हैं कौवे...कुत्ते । गटर के पास...एक पागल औरत और एक पागल दुनिया..चीख रहे हैं दोनों ।''[1] पोपट के रेल से कट जाने पर किसी का पानी तक नही देना संवेदनहीनता की पराकाष्ठा का उदाहरण है । मुरदाघर संवेदनहीन लोगों की दुनिया का अजायब घर है यहाँ किसी के मरने व जीने से किसी को कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता हैं ।

वेश्याओं की स्थिति व वेश्याओं के जीवन से जुड़े पहलुओं को समझने के लिए वेश्याओं के जीवन से जुड़ी समस्याओं को समझना ज़रूरी है । लोगों में आम धारणा है कि एक स्त्री अपनी मर्ज़ी से वेश्या बनती है ।

जबकि सत्य यह है कि कोई स्त्री अपनी मर्ज़ी से वेश्यावृत्ति नहीं अपनाती । उपन्यास की गृहणियों का अभावों से भरा जीवन इस बात की तस्दीक़ करता है कि वेश्याएँ अमानवीय जीवन की बेबसी से मुक्ति के लिए अपने जिस्म का सौदा कर रहीं हैं । विडम्बना यह है जिस्म के सौदे के बाद न पेट की भूख शांत होती है और न आने वाले भविष्य की चिंता ख़त्म हो रही है । मैना, नूरी आदि उपन्यास में ऐसी गृहणियों से वेश्या बनी स्त्रियाँ हैं जो रोज़मर्रा की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए चंद पैसों में अपना जिस्म बेच रही हैं । मुरदाघर की वेश्याओं के जीवनगत अभावों के साथ-साथ स्थायी निवास की बड़ी समस्या है । मैना, नूरी, बशीरन आदि वेश्याओं की झोपड़ियाँ क़ानून की नज़र में अवैध हैं । सभ्य होने का ढोंग करने वाला समाज चाहता है कि समाज में वेश्याएँ ज़रूर हो लेकिन उसको आस-पास वेश्याओं की उपस्थिति असहज करती है । सभ्य समाज की सहजता का ध्यान रखने के लिए प्रशासन झोपड़पट्टियों के लोगों को एक जगह से दूसरी जगह खानाबदोश लोगों की तरह भगाता रहता है । यहाँ सवाल यह उठता है कि खानाबदोश लोगों के भविष्य का घर कहाँ है ? कब तक इन्हें अपने ही देश में विस्थापितों का जीवन जीना होगा ? वह कौनसा समाज होगा जिसमें मैना और पोपट के सपनों का आशियाना होगा । जहां इन लोगों के लिए रहने की जगह है ? कब तक पोपट और मैंना जैसे लाखों लोगों को विस्थापन का दंश झेलना होगा ? कब मरियम और रोज़ी के अंतहीन सफ़र को मंज़िल मिलेगी है ? कब तक समाज और शासन की

हिक़ारत के कारण जब्बार को एक जगह से दूसरी जगह पर विस्थापित होना पड़ेगा ? ''मालूम नहीं कहाँ...किस जगह तोड़ दिए गए झोपड़े । मालूम है सिर्फ इतना कि एक पीली सुबह...जब सोने वालों ने आँखें खोलीं...गन्दी बस्ती को घेर लिया नीली वर्दी ने चारों तरफ़ से । लंबे बेंत और डंडे । नीली गाडियाँ । खाकी वर्दियाँ और अफ़सर । सुना दिया गया हुक्म । तोड़ दिए गए झोपड़े । पीली रोशनी में नंगी हो गई एक दुनिया । कालिख लगे बरतन...मैली पतीलियाँ...गुद्ड़ियाँ..रोते हुए बच्चे...।''[2] समाज में सबसे गरीब व्यक्ति का शोषण आम बात है, यह हर रोज़ और हर जगह की यही दास्ताँ है । जहां पर हर रोज़ मासूम नन्ही जिंदगियों को बेघर किया जाता है । मुरदाघर में चित्रित गरीब लोगों का शोषण कोई नई बात नहीं है बल्कि रोज़मर्रा की ज़िंदगी में असहाय लोगों को सत्ता के दलालों और प्रशासन के शोषण का शिकार होना पड़ता है । मुरदाघर पूंजीवाद के कठपुतली के खेल को नये सिरे से परिभाषित करता है । जिसमें क़ानून के रखवाले ही माफिया लोगों के हाथों की कठपुतली बनी हुई है । आज भी क़ानून व्यवस्था में कोई बदलाव आ गया । क़ानून व्यवस्था पूंजीपतियों के हाथों में बिकी हुई है और केवल पूंजीपतियों के हितों की रक्षा कर रही है ।

मुरदाघर में व्याप्त समस्याएँ हमारी सामाजिक रूढ़ियों और आर्थिक विसंगतियों की उपज हैं । इसी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के असंतुलित होने के चलते समाज में वर्गीय अन्तर्विरोध और ग़ैर-बराबरी मौजूद है । सामन्ती समाज से चली आ रही ग़ैर-बराबरी ने पूंजीवादी समाज

में विकराल रूप धारण कर लिया है । सामंती और पूँजीवादी समाज की संरचना का बारीकी से विश्लेषण करने पर पाते हैं कि दोनों व्यवस्थाओं के केंद्र में अर्थ (पैसा) ही महत्वपूर्ण दिखाई देता है । सामन्ती समाज हो या फिर पूंजीवादी व्यवस्था दोनों ही शोषण आधारित व्यवस्था हैं । मुनाफ़े पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था में पुरुष के श्रम का शोषण होता है और स्त्री की देह का । यही वजह है कि बुर्जुआ समाज द्वारा स्त्रियों के प्रति सिर्फ भोगवादी दृष्टी ही अपनाई जाती है । स्त्री शोषण की सामन्ती व्यवस्था की वर्गीय संरचना का विश्लेषण करते हुए लेनिन ने लिखते है, ''वर्गीय समाज की विषम स्थिति के चलते मनुष्य का ऐसा अवमूल्यन अथवा अमानवीकरण हो जाता है कि एक ओर स्त्रियाँ वेश्या का गर्हित जीवन जीने को विवश हो जाती है तो दूसरी ओर पुरुष बेकार और अपाहिज जिन्दगी जीने को मजबूर हो जाते हैं | इस तरह आदमी पशु से भी बद्तर बना दिया जाता है | यही कारण है कि अमानवीकृत स्थितियों से लगातार गुजरने के लिए अभिशप्त होता है |''[3] मुरदाघर में अभिव्यक्त झोपड़पट्टियाँ, बस्तियों से लेकर रात के अंधरे में बस स्टैंड तक फैली दयनीयता कोई एक दिन की देन नहीं हैं । बल्कि विकास के नाम पर की गई अंधाधुँध लूट का परिणाम हैं । इसी अंधाधुँध लूट के चलते झोपड़पट्टियों की वेश्याओं का जीवन नितांत अभाव और कष्टों से भरा हुआ है । जिस समाज में मनुष्य के लिए रहने को घर ना हो और खाने के लिए भोजन नही, उस व्यवस्था में मूलभूत सुविधाओं के अभाव में मनुष्य का जीवन नारकीय ही होगा । मुरदाघर की

झोपड़पट्टी के लोगों का भविष्य और भूख की विवशता से भरी दुनिया को मैना के माध्यम से अभिव्यक्त किया है, ''चलती है मैना...और लड़खड़ा जाती है । सवेरे खाया था पाव...पी काली चाय । तब कुछ नहीं मिला । गुजरी दो जलती सलाखें सब ख़त्म हो गया । टूट रहा था जिस्म । उबासियों पर उबासियाँ । जोड़ों और घुटनों में दर्द । अब नहीं । नसों में बहने लगी चिनगारियां । गाती है ऊँची आवाज में । गजरा...कहाँ गया । टुटा-टुटा गजरा...आधी रात के टाइम ।...हाथ में ले लेती है । और हँसती है ।...हो गई आधी रात अब घर जाने दो...।

आधी रात के टाइम...सामने बैठी हैं रंडिया...खामोश । बस स्टाप की दीवार से टिककर सो रही है जैसे । मैना के दिमाग में भभक उठती है आग-सी । नशा कुछ तो है...कुछ मान लो । नफरत...हर रंडी को हर रंडी से...क्योंकि अपने आप से घृणा ।''[4]

प्रत्येक वेश्या वेश्यावृत्ति की भयावहता से वाकिफ है । इसलिए अधिकतर वेशाएँ नहीं चाहती है कि जिस्मफिरोशी की घिनौनी दुनिया में कोई दूसरी स्त्री भी अपने जीवन को बर्बाद करे । वेशाएँ जिस्मफिरोशी की दुनिया में दी जाने वाली यातनाओं को भोग चुकी हैं । उन्होंने जिस यंत्रणा व यातना को सहाँ है वह दूसरी स्त्री भी सहे । हर वेश्या वेश्याजीवन की चुनौतियों के सच से वाक़िफ़ है । इसलिए एक वेश्या वेश्याजीवन के सत्य को जानने के बाद खुद से तो घृणा करती ही है । उसे वेश्यावृत्ति का धंधा करने वली दूसरी वेश्याओं से घृणा होती है ।

मुरदाघर में अभिव्यक्त झोपड़पट्टी के लोगों को नारकीय जीवन में होम होते देखकर सभ्य समाज के सारे नैतिक प्रतिमान धराशयी हो जाते हैं । यह ऐसा निष्ठुर समाज है जिसको गंदी बस्ती में जहालत भरा जीवन गुजर-बसर कर रहे लोहों की दयनीय स्थिति से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता । समाज में मूलभूत सुविधाओं से वंचित लोगों के लिए तथाकथित सभ्य समाज को किसी प्रकार की हमदर्दी नहीं है

समाज में यह एक आम धारणा है कि एक स्त्री गरीब होगी तभी उसने वेश्यावृत्ति को अपनाया है । वेश्यावृत्ति अपनाने के पीछे ग़रीबी एक कारण ज़रूर हो सकता है लेकिन मुख्य वजह नहीं हो सकती है । एक स्त्री को वेश्या बनाने के पीछे सदियों से चली आ रही सामाजिक रूढ़ियों व सांस्कृतिक पहलुओं की अहम भूमिका होती है । जब हम गहराई के साथ से उन सामाजिक रूढ़ियों और सांस्कृतिक पहलुओं की पड़ताल करते हैं तो पाते हैं कि सदियों से चली आ रही सामंती व्यवस्था ने परंपरा के नाम पर स्त्री को ग़ुलाम बना रखा है । पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा निर्मित विधान में स्त्री की स्वतंत्रता और अधिकारों के लिए कोई जगह नहीं होती है ।

उपन्यास में राज्य की घोर पूँजीवादी नीतियों के आम नागरिकों पर अमानवीय प्रभाव को उजागर किया गया है | जब राज्य की नीतियाँ ही कल्याणकारी नहीं होंगी फिर उस समाज में विकास की दौड़ में पिछड़ गये लोगों के हित्तों के लिए कौन ज़िम्मेवार होगा ? मनुष्य का सम्पूर्ण विकास तभी सम्भव होगा जब राज्य नागरिकों के सहयोग के लिए प्रतिबद्ध होगा

है । इसलिए घोर पूँजीवादी व्यवस्था पर राज्य का नियंत्रण ज़रूरी है । नहीं तो पूंजीवाद व्यवस्था गरीब आदमी का शोषण करती रहेगी है और इसका परिणाम यह होगा कि गरीब विरोधी नीतियों के कारण गरीब आदमी की विवशता दिन-प्रति-दिन और गहराती जायेगी ।

समाज की पहली वेश्या पितृसत्तात्मक सोच की उपज ही रही होगी, क्योंकि कोई स्त्री अपनी मर्ज़ी से ऐसा रास्ता कभी नहीं चुन सकती जो तन के साथ उसके मन को भी हर ले । स्त्री को उपभोग की वस्तु समझने वाली सोच पितृसत्तात्मक दौर से शुरू हुई । वैसे तो वेश्याओं के प्रति समाज का नजरिया सदैव ही हेय दृष्टीकोण वाला रहा है लेकिन समय-समय पर अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु समाज अपने नजरिये को बदलता रहता है । समाज की कथनी और करनी में दिन रात का अंतर है । इसी कथनी और करनी के चलते अपने आप को सभ्य कहने वाला कामुक प्रवृति का समाज रात के अंधेरे में वेश्याओं के पास जाता है लेकिन दिन के उजाले में वेश्याओं से घृणा करता है । दिन में वेश्याओं के नाम पर, वेश्याओं की बात करने पर नाक-भौं सिकोड़ने वाले लोगों को रात में वेश्याओं के साथ हम-बिस्तर होने में कोई परहेज नहीं है । हमारे समाज के दोगले चरित्र का प्रमाण देखिए है । समाज में वेश्याएं भी हो और समाज की नज़र में गुमनाम रहें, जब ज़रूरत हो तो वेश्या पुरुष के मनोरंजन का साधन बने, उसकी वासनाओं की पूर्ति करें ।

मुरदाघर की अधिकतर वेश्याएँ शादीशुदा और बाल-बच्चों वाली गृहणियाँ हैं । ये वो गृहणियाँ है जिनके कंधों पर परिवार की ज़िम्मेवारी है और उस ज़िम्मेवारी को निभाने के लिए पूंजीवाद के क्रूर बाज़ार में अपने सपनों और आकांक्षाओं को मारकर एक समय के भोजन के लिए देह बेच रही है । यह इक्कीसवी का कटु सत्य है कि अभी भी समाज का एक बड़ा वर्ग बुनियादी सुविधाओं से वंचित (रोटी, कपड़ा, मकान) हैं । मुरदाघर की मैना, नूरी, मरियम, हसीना, पार्वती आदि वेश्याएँ बुनियादी सुविधाओं के लिए हर रोज शाम को सस्ते रंगों से तैयार होकर अंधेरी रातों में सुबह की चाय और रगड़ा पाँव के बंदोबस्त के लिए ग्राहक की तलाश में रहती हैं । मुरदाघर की मैना, हसीना आदि वेश्याएँ पति का साथ होने के बाद भी भुखमरी और गरीबी से उत्पन्न हुई चुनौतियों से लड़ रही हैं । इस भुखमरी और गरीबी से केवल मैना अकेले नहीं जूझ रही बल्कि मैना जैसी अनगिनत स्त्रियाँ हैं । शोषण आधारित व्यवस्था को मैना के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए जगदम्बा प्रसाद दीक्षित लिखते हैं , ''और मैनाबाई...खामोश और निढाल...चल नहीं पाएगी...गिर जाएगी लड़खड़ाकर । गरम सलाखों की चिनगारियां बुझ गई अपनी ही आग में जलकर । बच गई एक टूटन जो तोड़ देगी सबकुछ । वही बैठ जाती है चुपचाप...फुटपाथ पर...। अचानक थक जाती है एकदम । लेट जाती है फुटपाथ पर । क्या हो गया है ? गलियाँ...धीमे-धीमे...किसकों ? नहीं मालूम |...मादरचोद !...भेनचोद ! तेरी

माँ की...! तेरा कभी भला नई होंगा !...साला...हरामी...तेरा मुरदा निकलेगा...।"[5]

बेबसी की मार व्यक्ति की चेतनाहीन कर देती है और चेतनहीन मनुष्य के लिए अच्छे--बुरे में फर्क कर पाना जटिल हो जाता है । मैना को व्यवस्था निर्मित बेबसी से उपज्जी तंगहाली ने चेतनाहीन बना दिया है । व्यवस्था की सताई हुई स्त्री के दिल से समाज और व्यवस्था के विरुद्ध ऐसे संबोधन स्वाभाविक हैं । पोपट उपन्यास में समाज के उन पुरुषों का प्रतिनिधित्व कर रहा है जो अपनी पत्नी के जिस्म की कमाई से अपने शौक़ पूरा करना चाहता है । समाज में ऐसे अनेक मर्द हैं जो अपनी औरत से देहव्यापार करवाते है और खुद वेश्यावृत्ति के पैसों से अय्याशी करते हैं । यह ऐसे पुरुषों की जमात है जिसको पत्नी के वेश्यावृत्ति करने पर कोई एतराज नहीं है । बशर्ते उन्हें बदले में पैसा मिलता रहे । मुरदाघर में पोपट उसी पुरुष जमात का प्रतिनिधित्व कर रहा है | "बहुत पहले हुआ था ऐसा । दो रूपये आठ आने का खर्च । चिल्ला-चिल्लाकर बोलता है मरद...फुकट में नहीं लाया तेरे कू । पूरा अढाई रुपिया खरच करके शादी बनाया हूँ...। और जोर से चिल्लाती मैना...आक्खी जिंदगानी दे डाली तेरे कू । तू अढाई आधी रुपिया की बात करता ।"[6]

समाज में एक ओर पोपट जैसे पति हैं जो अपनी पत्नी से वेश्यावृत्ति करवाते हैं । वहीं ऐसी माँ भी हैं जो चंद पैसों के लिए अपनी बेटी को दलालों के हाथों में को बेचना चाहती है । उपन्यास हसीना और जब्बार

एक दुसरे से प्रेम करते हैं लेकिन हसीना की माँ को दोनों का प्रेम मंज़ूर नहीं है । हसीना की माँ को बेटी की ख़ुशी से अधिक रुपयों से प्यार है । एक हसीना को तो जब्बार ने काल के गर्त में जाने से बचा लिया लेकिन कितनी ही जिन्हें परिवार से धोखा मिला और प्रेम में छल । जब्बार हसीना से किये गए वायदों और परिवार के भरण पोषण और अपने सपनों को पूरा करने के लिए चोरी के माध्यम को माध्यम बनाता है । जब्बार की महत्वाकांक्षा के चलते पुलिस द्वारा चोरी के अपराध में पकड़ लिया जाता है । जब्बार के पकड़े जाते ही हसीना की स्थिति भी मैना के जैसी हो जाती है । जो रोटी का सवाल मैना के जीवन डर का साया बना हुआ था । वही सवाल अब हसीना के जीवन में भी चुनौती बनकर खड़ा हो जाता है । पत्नी और बच्चे को गन्दी और सड़ांध भरी दुनिया से बाहर निकालने की कोशिश करने वाला जब्बार लाख कोशिशों के बाद भी परिस्थितियों के आगे हार जाता है । ऐसी स्थिति में हसीना के पास भूख और अभाव से लड़ने का एक ही विकल्प बचता है और अंत में हसीना भी बेटे की खातिर वेश्या बन जाती है । लेकिन यहाँ समझने वाली बात यह है कि पोपट और जब्बार दोनों एक ही परिवेश का प्रतिनिधित्व कर रहें हैं लेकिन दोनों की सोच में बुनियादी अंतर है । जो पोपट मैना की देह की कमाई से बड़ा आदमी बनना चाहता है । वहीं जब्बार हसीना को वेश्या बनने से रोकने की भरशक कोशिश करता हैं । जब्बार व्यवस्था की प्रकृति से भली-भांति वाक़िफ़ है लेकिन भ्रष्ट व्यवस्था के कुचक्र में दोनों फंस जाते हैं और नरभक्षी संसार

में मैना और हसीना अकेली रह जाती हैं । अभावों से भरे जीवन को चलने के लिए बेबस इंसान के पास परिस्थितियों से समझौता करने के सिवा क्या विकल्प हो सकता है ? ''शुरु कर देता है बोलना... बस एकच बात मानना मेरी । उधर मत जाना । किधर ? वो जोगेसरी... फोगेसरी । वो... फरदीन तेरे कू रंडी बना देंगी । समझी ?...और क्या बोलू मैं तेरे कू !...इधरिच रहना । मेरा रास्ता देखना । जइसा छूटा...वइसाच आऊंगा तेरे पास...।

और हसीना की काली आँखों में...आ जाती हैं लाल चिनगारियाँ । चुप्पी । और टूट जाती है चुप्पी ।

ये भी तो बोलके जा कि क्या खाके रहूंगी तब तलक ? और ये छोकरे कू क्या खिलाऊँगी ?

खींचकर ले लेती है अमजद को अपने पास ।...जइसा छूटा वइसाच आऊँगा तेरे पास बड़ा आया आने वाला ! हवा खाकर जिंदा रहूँगी तब तलक मैं ।''[7] हसीना का वेश्या बन जाना केवल जब्बार की हार नहीं बल्कि हमारी पूरी सामाजिक व्यवस्था की हार है । दूसरी तरफ़ हसीना का वेश्या बन जाना समाज में व्याप्त सामंती सोच का प्रमाण भी है । यह सामंती सोच ही है जो (हसीना) स्त्री से सिर्फ़ एक ही (वेश्यावृत्ति) काम लेना जानती है ।

उपन्यास की सभी वेश्याओं हसीना की तरह बेबसी में वेश्यावृत्ति को नहीं क़बूला है । अधिकतर स्त्रियों को पुरुष ने छल के माध्यम से प्रेम के जाल में फँसाकर चंद पैसों की खातिर कोठे के दलालों को बेचा है । जो

लड़कियाँ प्रेम के जाल में नहीं फंसी उनका अपहरण कर तस्करी के माध्यम से कोठों में क़ैद किया गया । इस प्रकार से अलग-अलग रास्तों के माध्यम पुरुष का लक्ष्य स्त्री को कोठे पर पहुँचना ही रहा है ।

हमारे समाज में स्त्री की अभिलाषाओं व आकांक्षाओं को आरंभ से ही नियंत्रित किया जाता है । शिक्षा के अधिकार से लेकर जीवन साथी के चुनाव तक स्त्री पुरुष के फ़ैसलों पर निर्भर रहती है । जेल में बंद नई लड़की की दशा के लिए सामंती सोच ज़िम्मेवार है । यह ऐसी लड़की है जो प्रेम में घर को छोड़ कर प्रेमी संग भागाकर मुंबई आ गई लेकिन जिस प्रेम की बदौलत उसने घर को अलविदा कह दिया था वही प्रेमी उसे चकले की वीरान दुनिया में बेचकर चला गया । जेल में बंद नई लड़की घर वापिस जाना चाहती है लेकिन सामंती व्यवस्था के कठोर दंड विधान के डर से जीविकापार्जन के लिए वेश्यावृत्ति को क़बूल लेती है । ‘’नई छोकरी का किस्सा...सुनती जाती है मैना चुपचाप | बड़ा पैसादार है छोकरी का बाप...कठियावाड़ में | खूब जमीन...खेत...गाय...भैस...सबकुछ | मगर छोकरी को हो गई मुहब्बत...भागकर आ गई बंबई | मुहब्बत झूठी निकली | किसी से ले लिये कुछ रुपए और छोड़कर चला गया मुहब्बत करने वाला |’’[8]

समाज की मान-मर्यादाओं के विपरीत जाकर प्रेम के लिए कोई स्त्री एक बार पिता के घर की दहलीज़ को लांघ देती है तो उसे घर-परिवार अपवित्र मानकर आश्रय देने से मना कर देता है | यह समाज के विधान की दोहरी नीति है कि वह एक ही कार्य के लिए स्त्री को चरित्रहीन समझता

है और पुरुष को चरित्रवान । हमें यह क़बूल करना होगा कि स्त्री विरोधी रूढ़ियों और परम्पराओं की जड़ों को पोषित करने के लिए सामंती समाज ने हजारों-लाखों स्त्रियों के जीवन को तबाह किया है । समाज में उदाहरण स्थापित करने के लिए ऐसी रूढ़िवादी परम्पराओं के क्रिया-कर्म दोहराये जा रहें हैं । जिनकी डर से स्त्री कभी भी व्यवस्था के मानदंडों के विरुद्ध आंदोलन ना कर दे । समाज के दंड विधान के चलते ही नई लड़की शोषण भरी ज़िंदगी में घुट-घुट कर जीना मंजूर कर लेती है परन्तु घर लौटना नहीं चाहती है | नई लड़की उन स्त्रियों का प्रतिनिधित्व कर रही है जो अपने सपनों व जीवन को दाव पर लगाकर पिता और भाई की अस्मिता को आँच नहीं आने देती हैं । ''रोना...तो पड़ेगाच | में बोलू कि नई रोऊँगी...तो नई रोऊँगी क्या ?...ये धंधा नई करने का मेरे कू | कोई का वासण भी साफ़ करेगी | पन ये धंदा नई मँगता मेरे कू |

बड़ी देर...गुमसुम बैठी रहती है मैना | फिर...मैं बोलू ? तू एकदम पागल है | मेरा तेरा जइसा इन्सान कू तो इधर भांडी घासने कू भी नई मिलता | समजी क्या ? मिलेंगा भी तो लोक अपने से येच करवाने वाला है आखेर में | मैं सब करके देख ली | सादी भी बनाई...तो भो वो का वोच...|''[9]

नई लड़की के माध्यम से लेखक ने समाज के क्रूर चरित्र को अभिव्यक्त कर, ऐसी व्यवस्था को उजागर किया है जो स्त्री को आजीविका चलाने के लिए स्वतंत्र रास्ते का चुनाव करने की आज़ादी भी नहीं देती है । मैनाबाई

का जीवन भी समाज के क्रूर चरित्र की देन है । यह समाज स्त्री से सिर्फ एक ही काम लेना जानता है । चाहे वो घर का काम करने वाली बाई हो या कोई और । घर में हो या फिर घर के बाहर सामंती सोच से पूर्ण समाज का स्त्रियों का शोषण करना ही होता है | ''तू ये लोक कू अपना घर का पता बोल दे | वापिस लौट जा...| मैना फिर समझाती है | ... मेरी बात कू समझ ले | तू पता नई बताएँगी तो ये लोक तेरे कू होम में भेज देंगा | एक बार होम गई...तो बन जाएँगी | पूरी रंडी | कोई भी आएंगा...ले जाएँगा तेरे कू रुपिया देके | बेच देंगा ये लोक तेरे कू | उधर कागद पर लिख देंगा...तेरा भाई ले गया...तेरा बाप ले गया | समज गई क्या ? ये लोक जो धाड़ मारता है तो कायके वास्ता मारता ? ये बेकार का बात है कि कुछ काम करेंगी...बरतन-भांडी घसेंगी | ये लोक त अपने से एकच काम लेंगा...ये समझ ले तू |''[10]

वेश्याओं के जीवन में अभावों से ऊपजी पीड़ा राज्य-तंत्र की प्रताड़ना के साथ मिलकर और अधिक कष्टदायी हो जाती है । पुलिस नाबालिग लड़कियों को वेश्यावृत्ति के दल-दल से बाहर निकलने की बजाए पैसों के लिए बार-बार गिरफ़्तार कर मार-पीट की जाती है । पकिस केवल वेश्याओं का आर्थिक शोषण ही नहीं करती है बल्कि हवालात में पुलिस के साहब लोग वेश्याओं को अपनी हवश का शिकार तक बनाते हैं । जिस काम के लिए जेल के बाहर वेश्याओं को पैसे या कुछ खाने को मिल जाता था, वही काम पुलिस के साहब लोग जेल के भीतर फ़ौक्ट में करते हैं । पुलिस और

दलालों की साँठ-गाँठ के चलते पुलिस पैसों की ख़ातिर वेश्याओं को बार-बार गिरफ्तार कर निर्दोष लड़कियों को उतनी ही बार दलालों को बेचती है । लेखक ने चन्द्री के माध्यम से हवालात में पुलिस की बर्बरतापूर्ण कार्यप्रणाली और वेश्याओं के प्रति पुलिस के अमानवीय व्यवहार का पर्दाफ़ाश किया है, ''एक टैम लाया ? कितना टैम लाया | मैं देखने की छोटी...पन भोत दुनिया देखी मैं...पूच | क्या समझी ? जभी पैला टैम पकड़ा मेरे कू...इधर इंगले नाम का साब होता | साला रात कू किया मेरे कू...फिर ये मोटे डंडे से मारा | बोला कि कोई कू बोलेंगी तो तेरी जान ले डालूँगा | क्या समझी ? पूच ! भोत छोटी थी वो टैम मैं मेरे कू क्या मालम | करवा ली और मार भी खा ली चुपचाप ! भोत डर लगा मेरे कू | तीन दिन लाकप में रखे मेरे कू...पीछे होम में डाल दिए...पूच ! महीना-भर उधर रही | पीछू एक भाई आया मेरा | साब उससे पाँच सौ रुपिया लिया और मेरे कू भेज दिया साथ में |...वो टैम ताड़देव में एक मुस्लिम घरवाली होती | ये मेरा भाई उधरिच रखा मेरे कू | उधरिच धंधा करती मैं...पूच ! तीन टैम गई होम में और तीन भाई आया मेरा | कोई पाँच सौ दिया साब कू...कोई चार सौ | अभी ये टैम क्या करेगा मालम नई...क्यू यार ?

हँसती है बशीरन |...कितना भाई है तेरा मुंबई में ?

आक्खा मुबंई का लोक मेरा भाई है | जो साब कू देंगा रुपिया...बोच मेरा भाई हो जाएँगा | भाई नई होएँगा तो बाप हो जाएँगा | बापू नई होएँगा

तो मर्द हो जाएँगा | पूच ! साला ये लोक कितना पइसा कमाता ! उधर छोकरी लोक भूका मरता | इसकी माँ की...पूच |"[11]

पुलिस का काम पीड़ित को सुरक्षा देना और कोर्ट-कचहरी का काम पीड़ित को न्याय देना होता है । उपन्यास में दोनों शोषक की भूमिका में नज़र आते हैं । जिसके पास नागरिक की रक्षा का ज़िम्मा है वही व्यवस्था में भक्षक बना हुआ है । न्यायव्यवस्था के क़ानूनी ढुलमुल व्यवहार के कारण वेश्याओं को उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है । पुलिस से लेकर दलाल और न्यायव्यवस्था से लेकर समाज सभी स्त्री के शोषण में भागीदार हैं । हमारी सारी संस्थाएँ भ्रष्ट हों गई हैं। यही कारण है कि धीरे-धीरे आम आदमी का संस्थाओं की कार्यप्रणाली से विश्वास ख़त्म हो रहा है । जिस न्यायव्यवस्था पर न्याय करने का दायित्व है वह वेश्यावृत्ति की समस्या के मूलभूत कारणों की पहचान ना करके वेश्याओं को ही वेश्यावृत्ति के लिए अपराधी मान रही है । हमारे समाज द्वारा वेश्यावृत्ति की समस्या को गम्भीरता से ना लेने के कारण एक बड़ा समुदाय रेडलाइट इलाक़ों की काली कोठरियों में नारकीय जीवन भोगने को मजबूर है | समाज में व्याप्त भ्रष्ट तंत्र वेश्याओं के उत्पीड़न का एक अहम् कारण है । राज्य में करप्शन के होने से जन-विरोधी बुनियाद की जड़े मज़बूत होती हैं । राज्य की जन-विरोधी बुनियाद की मज़बूत जड़े मुरदाघर में पुलिस से लेकर न्यायव्यवस्था तक दिखाई देती है । गंदगी से सराबोर हवालात में वेश्याओं को भेड़-बकरियों की तरह ठुसा जाना व हवालात की मैली दीवारों पर लिखे हुए

नाम राज्य-तंत्र की अमानवीयता व जन-विरोधी बुनियाद की गवाही दे रहे हैं | ''मैली दीवारों पर कोयले से लिखे हुए नाम...किसके हैं ? सलीमा...जग्गो...फ़्लोरा...| कहाँ चली गई सब जिंदा हैं या मर गईं ? कब आई थीं...और कब चली गईं ?''[12] जेल में बंद वेश्याओं के प्रति राज्यव्यवस्था का बर्ताव अमानवीयता का पुख़्ता प्रमाण है । इस अमानवीयता की झलक हम हवालात में चमेली की तबीयत बिगड़ जाने पर घंटों तक किसी द्वारा संज्ञान ना लेने पर साफ़ देख सकतें हैं । ''चमेली कू ले जाने के वास्ते आए ये लोक चार घंटे के बाद | बोलती कि नई जाती |...साला हरामी है ये लोक | कुछ फिकर नई इनकू | आदमी का जान जाओं की रहो |

भोत कमजोर हो गई है |....क्या करना बाबा ! हम लोगों का तो जिंदगानीच अइसा है | अपुन मर भी जाएँगा तो किसकू क्या फरक पड़ने वाला है | एक दुसरे की मदद करो...येई भोत है | सम्हालके नूरन आस्ते...आस्ते चल !

बिचारी ! जीती कि मरती...किसकू मालम !...बोलती जाती है लाईन की औरतें |...क्या करना अपना अपना नसीब ! हम लोक का नसीबच गाँडू है पन इनसान का भी कुछ फर्ज होता | ये लोग इनसान नई...जिनावर हैं | अपना चैन आराम मालम ! दुसरे का कुछ नई | बिचारी चमेली...|''[13]

कल्याणकारी राज्य में सभी नागरिकों को समान अधिकार होते हैं । राज्य के नागरिकों की शिक्षा, स्वास्थ्य और रोज़गार आदि से लेकर विकास

के समान अवसर उपलब्ध करवाना राज्य की जिम्मेवारी होती है । लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था में इसका एकदम उल्टा होता है । ऐसे राज्य की नीतियों में गरीब व्यक्ति के जीवन का कोई मुल्य नहीं होता है | उपन्यास में वर्णित पुलिस और उसके लालची अधिकारियों अपने कर्तव्य और ईमान को दोनों बेचकर पूँजीवादी व्यवस्था के इशारों पर नाच रहे हैं | ऐसी व्यवस्था और उसके रक्षों से बेबस और लाचार लोग न्याय की उम्मीद में हैं । ''जमानत तो मिल गई...पन जमानत लेने वाला कोन ? सौ रुपिए की जमानत की साब ने | आठ दिन हो गया इधर ! कोन लेंगा अपनी जमानत !

किसी की सौ...किसी की दो सौ | मगर नहीं मिलते जमानतदार | सब पड़ी हैं और गालियाँ दे रही हैं सबकों | कोई काम नहीं आता ! सब मतलबी | इनकी माँ-बहन को...|''[14]

राज्य के क़ानून या क़ानूनी प्रावधानों के अनुरूप वेश्याओं को ज़मानत तभी मिलेगी जब वे दो सौ से लेकर पाँच सौ रुपए तक की धनराशी गारंटी के तौर पर जमा करेंगी । अब सवाल यह उठता है कि जो औरत पेट के लिए दो पाँच रुपये में अपना जिस्म बेच रही है । वह इतनी बड़ी धनराशी का इंतज़ाम कहाँ से करेगी ? वेश्या का धंधा करने वाली औरत के लिए पाँच सौ रुपये जुटा पाना असम्भव काम है | ऐसी क़ानून व्यवस्था में न्याय मिलता नहीं है वेश्याओं को उसे ख़रीदना पड़ता है । मुरदाघर की वेश्याएँ आर्थिक तौर पर इतनी सक्षम नहीं हैं वे ज़मानत का पैसा चुका दे, दूसरा

ज़मानत का पैसा चुका भी दे तो कानून सड़क, फुटपाथ पर रहने वाले लोगों को जमानत का अधिकार नहीं देता है | वे क़ानून के हिसाब से लवारिश हैं और उन्हें तभी ज़मानत मिलेगी जब कोई साहूकार उनका ज़मानती बनकर ज़मानत देगा । राज्य का क़ानून भी वेश्याओं के साथ भेदभाव करता है । जो खुद समाज से बहिष्कृत है, वह कहाँ से किसी साहूकार, नौकरी वाले व्यक्ति को जमानती बनाकर ले आये ? ''क्या बोलेंगा मजिस्ट्रेट ?...जाओं ! छोड़ देव सब कू | इनका कुछ गुन्हा नहीं | इनके बदले पकड़ लो इंस्पेक्टर लोक कू...साब लोक कू...बंद करो सब कू | येच है असली गुन्हेगार | कब होंगा अइसा इंसाफ ? कभी नई आएंगा अइसा मजिस्ट्रेट ?...कभी नई...|''[15] कानून व्यवस्था वेश्याओं के जीवन की समस्या का हल करने की बजाए बार-बार दंड का प्रावधान कर इंसाफ़ की जगह वेश्याओं का शोषण ही करती है । ऐसी न्यायव्यवस्था को कल्याणकारी व्यवस्था कहना बेईमानी होगा । असहाय वेश्याओं को दुकान वाले, मकान वालों, दारूवालों आदि सब तरफ से निराशा ही मिलती है । वेश्याओं की ओर आसक्त होने वाले लोगों के लिए दीन-हीन वेश्याओं पर पुलिस का अत्याचार तमाशा भर है । ऐसा नहीं है कि समाज और व्यवस्था में शोषक ही शोषक हैं और समाज से सहयोग व उपकार की परंपरा ख़त्म हो गई । पुलिस की बर्बरता के ख़िलाफ़ हिजड़ों द्वारा वेश्याओं को बचाना, जब सब ओर से आपदा से घिरी वेश्याओं को कोई सहारा नहीं देता उस समय हिजड़ों का सहयोग के लिए हाथ बढ़ाना समाज में मानवता का बचे रहने का संकेत है । ''चली जा रही हैं

भागती...पारबती और सलमा...कहाँ कौन...जो बचाएगा ? इस तरफ आदमी | उस तरफ आदमी | बचाने वाला कौन ? कोई नहीं | दुकानवाला | दारूवाला | मटकावाला | सब खड़े देखते रहेंगे | भागती जाएगी रंडियाँ...पारबती और सलमा |

- मगर खड़े हुए है हिजड़े...सब मरदों से अलग | बचा लेंगे दोनों को |

- ए ! ए मेरी भैना !...कमला की आवाज | इधर आ जा | आ जा इधर | जल्दी ! ''[16]

मुरदाघर के माध्यम से लेखक ने मानवीयता ख़त्म हो चुके निष्ठुर समाज का चित्रण किया है । यह समाज इस कद्र निष्ठुर हो चुका है कि पीड़ित व्यक्ति की मदद करने की बजाए उसकी बेबसी का तमाशा देख रहा है । लेखक ने हिजड़ों को मानवीय गुणों से परिपूर्ण दिखाकर तथाकथित सभ्य समाज के व्यवहार पर प्रश्नचिन्ह लगाया है । ''लेकिन उधर...दूसरी तरफ...किसी झोपड़े में घुस गए हैं हवलदार |...एक आदमी और रंडी | भाग रहा है आदमी | हाथ आ गई रंडी |...मार ! और मार ! और मार ! गिड़गिड़ाती है...नई-नई | मेरे कू मत मारो | ए भैया ए हवलदार भैया ! मत...मत मारो | ये तो धंधा है मेरे पेट का | दो-दो बच्चे है मेरे कू |....वो आदमीच लेके आया मेरे कू |...ए भैया ? ए हवलदार भैया ! मत मारों मेरे कू...तुम्हारे पाँव पड़ती...| ''[17]

यहाँ सवाल यह है कि जो व्यक्ति स्त्री को वेश्यावृत्ति के लिए मजबूर करता है, उसे वेश्यावृत्ति के दल-दल में धकेलता है । वह व्यक्ति पुलिस और समाज की नज़र में अपराधी क्यों नहीं होता और पुलिस उसे दण्डित क्यों नहीं करती है ? क्यों पुलिस हमेशा दलालों को पकड़ने की जगह वेश्या का धंधा करने वाली स्त्रियों को ही पकड़ती है ? क्यों बार-बार वेश्याओं को बुर्जुआ समाज की घृणा और पुलिस की प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है ? अमानवीय परिस्थितियों में जीवन यापन कर रही वेश्याओं के प्रति समाज का कोई सकारात्मक दृष्टीकोण नहीं है ? क्यों वेश्याओं को जेल के बाहर समाज की घृणा और जेल के भीतर पुलिस उत्पीड़न के रूप में दोहरी मार सहन करनी पड़ती है ? वेशाएँ जेल में रहें या जेल के बाहर, उनके कष्टों, चुनौतियों में कोई कमी नहीं आती है । यह वेश्याओं के जीवन की विडम्बना ही है कि वेश्याओं को जेल की प्रताड़ना के आगे पेट की प्रताड़ना अधिक कष्टकारी लगती है । एक वक्त के खाने के लिए वेश्याओं को जेल के बाहर रात भर ग्राहक के इन्तजार में बैठे रहना पड़ता है । उस खाने का बंदोबस्त जेल में में प्रताड़ना के बाद हो ही जाता है । या यूँ कहे कि कुछ ना कुछ खाने को ज़रूर मिल जाता है |

''तुम इधर और रहना मँगता मैनाबाई ? उधर नई जाना मँगता ?

आँसू हैं या नहीं मैना की आँखों में...मगर आवाज भारी हो गई है |

क्या है उधर मेरे वास्ते ? वोई रंडी का धंधा ! वोई रोना धोना...लफड़ा...तंगी | उधर से तो इधर

अच्छा |''[18]

एक वक्त के भोजन के बंदोबस्त की ख़ातिर वेश्याओं को जेल के बाहर किसी कुली, ड्राइवर, नौकर, शराबी, अपराधी के निचे बिछना पड़ता है । लेकिन इसके बाद भी ज़रूरी नहीं कि एक वक्त के खाने का जुगाड़ हो जायेगा । वेश्याओं के लिए उम्र का ढलना जीवन भोजन की चिंता के साथ जीवन की नई चिंताओं व कई असुरक्षाओं को जन्म देता है । उपन्यास में बशीरन ऐसी ही पात्र है जिसे अभी से अपना आने वाला भविष्य नजर आ रहा है । बशीरन के माध्यम से लेखक ने उम्रदराज वेश्याओं के जीवन की विवशता को रेखांकित किया है । वेश्याओं का उम्रदराज होना जीवन का सबसे अधिक ख़राब दौर होता है । एक वेश्या के लिए यह ऐसी अवस्था होती है जिसमें उसको सहारा देने वाला कोई नहीं होता है । और न ही शरीर में भूख से लड़ने की शक्ति | अमूमन पौष्टिक भोजन का अभाव, मानसिक तनाव जवान वेश्याओं को समय से पहले ही बुढ़ापा दे देता है । यह ऐसा समय है जो प्रत्येक वेश्या के जीवन में एक ना दिन ज़रूर आना है । कुछ वेश्याएँ भाग्यशाली भी होती हैं । उन्हें वृद्ध जीवन की पीड़ा को नहीं भोगना पड़ता लेकिन उससे पहले भयानक यौन बीमारियों की पीड़ा को भोगना ही पड़ता है । बशीरन के भविष्य की चिंता किसी एक वेश्या की चिंता नहीं है बल्कि अधिकतर वेश्याओं के जीवन की यही कहानी है, ''एक लम्बी उबासी...और कहानी खत्म कर देती है बशीरन |...येई सब सोचती रहती मैं | जो चलता है सोचना तो खतमच नई होता | ये टैम तो निकल

गया...पन आगे क्या होंगा ? जिसम जबाब दे रया है | मैं बोलती नूरन...दो साल के अंदर वो टैम आ जाएँगा मेरा... कि हवलदार लोक पकड़ेगाच नई मेरे कू | इधर रहके महीना बीस दिन जो चैन से खाने कू मिलता है बैठके...वो भी नई मिलेंगा तब क्या होंगा मेरा ? सोचती तो सर में चक्कर आने लगता |''[19]

बुढ़ापा मनुष्य के जीवन की प्राकृतिक अवस्था है । जो हर व्यक्ति के जीवन का शाश्वत सत्य है । यह ऐसी अवस्था है जिसमें मनुष्य जीवन का सहारा खोजता है । भारतीय समाज में संतान को बुढ़ापे का सहारा समझा जाता है । इसलिए एक स्त्री संतान को जन्म देकर बुढ़ापे का सहारा और मातृत्व का सुख दोनों प्राप्त करती है परंतु मुरदाघर में वेश्याओं की स्थिति एकदम भिन्न है । वेश्याओं के यहाँ संतान का जन्म ख़ुशी की जगह अवसाद लेकर आता है । किसी भी स्त्री के लिए मातृत्व का सुख दुनिया में हर स्त्री के लिए से सारे सुखों से बढ़कर होता है । यह मातृत्व का सुख अभावों के चलते वेश्या के लिए बोझ बन जाता है । मरियम का पुत्र जन्म पर ईश्वर को कोसना इस बात का प्रतीक है कि बेबसी और लाचारी से भरे जीवन ने स्त्री की ममता को सोख लिया है ।

''एक छटपटाहट खुद एक आवाज !...अल्ला ! अल्ला ! किधर है तू ! कहाँ है तू ? क्यों...क्यों पैदा करता है सबकों ? रंडी को ? रंडी के...पेट से बच्चे को ?...अल्ला ! अल्ला |''20 बेबसी से भरी माँ के भीतर ममता ख़त्म हो चुकी है । जिस नवजात को प्यार और दुलार मिलना था उसे गालियाँ

मिल रही हैं | ''गालियाँ बकती है मरियम...कायकू आया तू ? साला मरदूद ! मेरा जिंदगानी हरम करने कू ? कौन बुलाया था तेरे कू ? अभी मैं तेरे कू देखू कि धंधे कू जाऊ | हरामी की अउलाद | चिलाती है मरियम...जैसे फोड़ लेगी अपना सर |...कभी मरेंगा ? मेरे कू मारके मरेंगा...| अइसा नई मरेंगा...| भूख से तिलमिला रही है अंदर-ही-अंदर | कुछ मिल जाता खाने को नहीं मिलेगा ! गंदे कपडे की बती चूसता जा रहा है काला बच्चा | अंधा है अल्ला भी | रंडी का धंधा करने वाली कू दे दिया बच्चा...|''[21] विवशता व्यक्ति को विवेक शून्य बना देती है । यह विवशता से उपज्जी विवेकशून्यता को मरियम के केस में देखा जा सकता है । यहीं कारण है कि मरियम को जीवन के प्रति किसी प्रकार की कोई सहानुभूति नहीं है । मरियम अभाव और विवशता भरे जीवन से मुक्त चाहती है । अकेली मरियम ही नहीं है बल्कि मरियम जैसी अनेकों वेश्याएं हैं जो वेश्यावृत्ति के घृणित काम से मुक्ति की इच्छा रखती हैं । ''ए सुना क्या ? तू नई आता ना...तो तेरे को भी अच्छा रहता और मेरे कू भी |...मेरे कू...मालम है...तू रहेंगा नई...चला जाएंगा | वोई ठीक भी है | पन तू आयाच कायकू ? अभी तू जाएँगा...हो जाएँगा अल्ला कू प्यारा ! क्या बोलेंगा उसकू...अल्ला कू ? कि मेरी अम्मा भोत खराब है...नई क्या ? अईसाच बोलेंगा तू ? ए शाला | बोल ना ! अइसाच बोलेगा ना तू...? |''[22]

जीवन की मूलभूत ज़रूरतों से परिपूर्ण गृहणी ही संतान के उज्वल भविष्य की कामना कर सकती है लेकिन जिस स्त्री का खुद का जीवन

विपदाओं से भरा हुआ है, जो स्वयं के गुज़ारे हेतु दूसरों पर निर्भर हो उस स्त्री में जीवन की विपदाओं और परेशानियों का होना लाज़मी बात है । मरियम को अपनी संतान का भविष्य मालूम है । मरियम जानती है कि एक वेश्या के बच्चे को समाज में नागरिक के रूप में स्वीकार्यता नहीं मिलेगी ना ही उसके बच्चे के विकास के लिए समाज समान अवसर प्रदान करेगा । इसीलिए मरियम अपनी संतान के लिए जीवन की जगह मौत की प्रार्थना कर रही है | ''अपने आप से बोलती हुई आवाज | कुछ न सुनने वाला नन्हा आदमी |...नई रे सुना क्या ? नई ! अईसा मत बोलना अल्ला कू | तेरी अम्माँ कू...दूसरा कुछ रस्ताच नई | क्या समझा ? कुछ रस्ता नई | सच्ची बोलती मैं | अल्ला कू मालुम...झूट नई बोलती ? मेर नई मालम क्या करू मैं | किधर जाऊ !...हा रे अपना अम्माँ कू भी ले चल अपने साथ | सच्ची बोलती | मेरे कू ले चल | मैं चलूँगी तेरे साथ | सुना क्या ?''[23]

जीवन के सभी विकल्पों के बंद हो जाने से उपज्जी परिस्थितियाँ ने हसीना को वेश्या बना दिया है । जीवन की यह बेबसी, विवशता हसीना के लिए क्रोध का कारण है । ''आँखों से जैसे निकलने लगती है आग | कहना चाहती है कुछ...नहीं कह पाती | देखती रहती है सिर्फ !...साला गाँडू ! मादरचोद ! मेरे कू रस्ते लगा दिया ! छोकरे कू भिखारी और कोढ़ी बना देंगा | और अभी तेरे कू चानस मँगताच ! तेरी माँ की में डाल तेरा चानस | भड़वी का...! | ''[24]

झोपड़पट्टीयों की वेश्याओं के जीवन में खुशी का कोई कारण और पल नहीं है । पेट की आग ने वेश्याओं के जीवन को नीरस बना दिया है । अगर यूँ कहे कि संसार में मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु कोई है तो वह भूख है । मुरदाघर की वारांगनाओं को आने वाले भविष्य की चिंता सता रही है । वेश्याएँ जानती हैं जब तक वह जवान है पुलिस वाले उसकों पकड़ लेते हैं जिसके चलते जेल में 15-20 दिनों के लिए तीन टाइम का खाना भी नसीब हो जाता है । लेकिन बूढी होने पर ना जेल नसीब होगी और ना ही जेल का खाना नसीब होगा । मुरदाघर में मैना, हसीना, मरियम, नूरी, आदि सभी वेश्याओं के लिए भविष्य की अनिश्चितता चिंता का कारण है | वेश्याओं के अभावों से भरे जीवन का सत्य हर दिन उद्घाटित होता है । यही सत्य मैनाबाई के सामने पोपट की मृत्यु के समय आकर खड़ा हो जाता है । मैना के पास पोपट को कफ़न ओढ़ाने के लिए भी पैसे नहीं हैं । जो पैसा पास में है उसको खर्च कर दिया तो शाम का चूल्हा तभी जलेगा जब कोई ग्राहक मिल जाएगा । ''मैनाबाई ! रोना बंद करों अभी ! ये बोलो कि कितना पइसा है पास में ?

ढलते हुए दिन के पास...हिसाब लगाती है मैना |...कल का एक रूपया होंगा | और थोड़ा खुला पइसा |...राजू | नई आया राजू ?

-राजू को छोड़ो अभी |...मेरे पास भी है कल का थोडा पईसा |...एक रुपिया उधर भंगी कू देने का | और आने जाने का बस का भाड़ा |...हो

तो जाएंगा इतने में...पन लौटके जल्दी से घराक पकड़ना पड़ेगा | तब मिलेंगा खाना |"[25]

मुरदाघर में वेश्याओं के विवशता भरे जीवन का चित्रण करते हुए राज्य-तंत्र की कार्य प्रणाली, राज्य की नीतियों और तथाकथित प्रबुद्ध वर्ग की समाज के प्रति उदासीनता पर सवाल खड़ा किया है । राज्य की नीतियों व समाज के तथाकथित प्रबुद्ध वर्ग की उदासीनता के कारण एक वर्ग गंदी बस्तियों में रहने के लिए मजबूर है । वहीं दूसरी ओर पुलिस की मफ़ियाओं के साथ मिलकर गरीब और निर्दोष लोगों का शोषण कर रही है | वेश्याओं के प्रति पुलिस का व्यवहार क्रूरता की सारे हदें पार कर चुका है । पुलिस पैसों के लिए निर्दोष स्त्रियों को वेश्यावृत्ति के धंधे में धकेलते समय सामंती समाज से भी अधिक क्रूर दिखाई देती है | यह पूँजीवादी व्यवस्था का क्रूर रूप है जिसमें राज्य की पुलिस अपराध को रोकने की बजाए पैसों की खातिर वेश्यावृत्ति की प्रथा को बढ़ाने में लगी हुई है । इसका सबसे भयावह रूप हमें तब दिखाई देता है जब पुलिस दलालों के साथ मिलकर गरीब लड़कियों को वेश्यां बनाती है । "और सिर उठाकर बोलती है मैना...जैसे अपने-आपसे बोल रही है... बारह साल पीछे लौटकर |...देख ! क्या नाम है तेरा ! ये मुंबई है ना ? और मुंबई क्या ये अक्खा दुनिया है ना...बजार है...भोत बड़ा बजार | बोले तो...एक भट्ठी है | भोत बड़ा भटठी | और दूर-दूर से...गाव-गाव से छोकरी लोक कू ला-लाके ये बजार की भटठी में डालता है ये लोक | सीधा भोला छोकरी लोक...तेरा जइसा...हंसा जइसा | भोला

नहीं होएँगा | तो गरीब होएँगा खाना नई...ठिकाना नई | एक बार गिरा ये भटठी में...तो जलनाच मँगता कोई रस्ता नई | ये लोक तुमकू निकलनेच नई देगा |''[26] यह किसी भी समाज के सभ्य होने की निशानी नहीं है जिसमें खेलने-कूदने और स्कूल जाने की उम्र में बालिकाओं को वेश्या बनाया जा रहा हो ।

मुरदाघर पुलिस की शह से समाज में चल रहे अवैध कारनामों को भी उजागर करता है । जहां अवैध धंधों के माध्यम से पैसा कमाकर अनेक लोग धनाढ्य हो गए हैं और पुलिस को भी अवैध कामों के लिए मोटा पैसा मिलता है | पुलिस की आँखो के सामने समाज में स्मगलिंग, दारु वाले सरेआम धंधा कर रहे हैं और प्रशासन मफ़िया लोगों के हाथों की कठपुतली बना हुआ है । पोपट मैना को बता रहा है कि अवैध कार्यों के ज़रिये पैसा कमाकर कैसे लोग धनाढ्य हो गये हैं, ''जो लोक कल तलक कंगाल था...आज लाखों पति बन गया | पोलिस का जो साब कल तलक उसकू हवालात में बंद करता था...आज बोई उसकू सलाम करता है...उसका साथ मुरगा खाता...दारूपीता |''[27] घोर पूँजीवादी व्यवस्था में अपराध, कालाबाजारी, अवैध-धंधों और तस्करी आदि का चलन तेजी से बढ़ा है । यह आला अफसरों से लेकर मंत्रियों तक की मिलीभगत का परिणाम है | पोपट का कथन अफ़सरों से लेकर भ्रष्ट मंत्रियों की साँठ-गाँठ का कच्चा-चिट्ठा खोलता है, ''सोई मैना को झकोरता है |...सो गई...अभी सेच ! उठ उठ !...हाजी उमर कू जानती ना तू ? नई जानती ? मेरा साथ हवालात में था एक टैम

| पहला दारू का धंधा किया | जभी पइसा कमाया थोड़ा...तो रंडी का होटल चालू किया | थोड़ा और पइसा कमाया | पीछू दानचोरी का काम चालू किया...इस्मलिंग | पाँच साल का अंदर बन गया लाखोपति | बड़ा-बड़ा बिल्डिंग है उसका | पोलिस का सब बड़ा साब लोक कू पार्टी देता...बड़ा-बड़ा मिनिस्टर लोग उसकू अपना घर कू बुलाता | समजी क्या ?''[28] यही अति पूंजीवाद की भ्रष्ट व्यवस्था है जिसमें जिसे कम मौक़ा मिला वह छोटा चोर है और जिसे लूटने के ज़्यादा अवसर मिले वह बड़ा चोर है । इस भ्रष्टाचार आधारित विकास मॉडल ने सामूहिक विकास की जगह व्यक्ति के विकास तव्वजों देकर समाज के संसाधनों पर ऐकाधिकर को बढ़ावा दिया है इसी का परिणाम है कि पोपट जैसे साधारण व्यक्ति के सामने बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने का संकट खड़ा हो गया । ऐसी व्यवस्था में मेहनत-मजदूरी से जीवनगत ज़रूरतें कभी पूरी नहीं हों सकती है । पोपट और जब्बार का जीवन इस बात साक्षात प्रमाण है कि पूंजी आधारित समाज में मेहनत-मजदूरी की हाड़-तोड़ कमाई से दो वक्त के भोजन का भी गुजर-बसर नहीं चलता है । पोपट इस बात को अच्छे से जानता है कि अपने जीवन के सपनों को पूरा करने के लिए उसको कुछ बड़ा करना पड़ेगा । यानी कि वह भ्रष्ट तंत्र में बिना कालाबाज़ारी के मज़दूरी से अपनी ज़रूरतों को पूरा नहीं कर सकता है । ''हम्माली करेंगा तो क्या मिलेंगा...कुछ नई | आक्खा जिंदगानी इधरिच सड़ना पड़ेगा | मजदूरी करके आज तलक कोन खोली लिया है और कोन मकान बाँधा है ! कोई नई | फिर मैं किधर से क्या

क्या करूँगा...किधर से लाउँगा खोली और घर ! ये झूट बात है मैना | तू अइसा सोचती होंगी तो ये चूक है तेरी | तेरी भोत बड़ी चूक | समज गई ना तू ! |''[29] पोपट घुटन भरी जिन्दगी से मैना और राजू को बाहर निकालना चाहता है लेकिन उसको मैना को देहकर्म के अंधेरें में रखने में भी कोई हर्ज नहीं है | वहीं जब्बार अपने बेटे और पत्नी गन्दी बस्तियों की मलिन दुनिया से बाहर निकालकर साफ-सुथरी दुनिया में ले जाना चाहता है । इस काम के लिए जब्बार चोरी का रास्ता चुनता है, ''हम लोक जिसका मकान में घुसा था...वो दारू का धंधा वाला था...| साब लोक भोत दोस्त था | इस वास्ते नई छोड़ा मेरे कू | नालबंदी कर दिया मेरा...|

-नालबंदी ?...नालबंदी बोले तो ?

-अइसा हाथ उपर किया और लकड़ी बाँध दिया...और अइसा पाँव में...| चल छोड़...जान दे उस बात कू | खयाल आ जाता...तो भोत ख़राब लगता मेरे कू | अपना किस्मतच गाँडू है साला...|''[30]

उपन्यास में क़ानून व्यवस्था की धज्जियाँ उड़ी हुई हैं । यहाँ अवैध काम करने वाले आजादी से घूम रहे हैं । पुलिस की पनाह में दारुवालों, स्मगलरों आदि का धंधा धड़ल्ले से चल रहा है । पुलिस अपराध के बड़े माफ़ियाओं के खिलाफ कार्यवाही करने से घबराती है । क़ानून के रक्षक लोगों ने ही लोकतंत्र और मानवीय मूल्यों को ताक पर रख हुआ है । धन की लालसा में उचित-अनुचित का फर्क भूलकर अनुचित साधनों के माध्यम से समाज में प्रतिष्ठित व्यक्ति बने बैठे हैं । आज के दौर में भी लोकतांत्रिक

मूल्यों को ताक पर रखकर मंत्री अफसर लोग अपनी-अपनी जेब भर रहें हैं । प्रत्येक दिन कोई नया घोटाला सामने आ रहा है । भ्रष्टाचार ऊपर से लेकर नीचे तक इस कदर फैला हुआ है कि पुलिस से लेकर न्यायव्यवस्था सब आँख मुँदें हुये हैं । अगर किसी ईमानदार अधिकारी के चलते एकाध केस में कोई गिरफ़्तार भी हो जाता है तो न्यायव्यवस्था से घोटालेबाज को क्लीन चिट मिल जाती है । गरीबी, बेरोजगारी का आलम यह है कि मनुष्य के सामने रोज़ी-रोटी का संकट खड़ा हो गया है । ऐसी स्थिति में चोरी और अपराध ही व्यक्ति को गुजर-बसर का शॉर्ट-कट दिखने लगता है | जब एक आम आदमी की समस्याएं दिन-प्रतिदिन बढ़ती जायेंगी तो भूख का मारा हुआ आदमी कुछ ना कुछ जरुर करेगा चाहे फिर वह चोरी ही क्यों ना हो । इसलिए मेरा मानना है कि पूँजीपतियों के हाथों में बिकी हुई व्यवस्था जनकल्याणकारी नीतियों का निर्माण नहीं कर सकती है । ऐसी व्यवस्था की प्राथमिकता में सदैव पूँजीपतियों के हित ही होते हैं । जब राज्य खुद ही व्यक्ति विरोधी नीतियों का निर्माण करेगा तो जब्बार और पोपट का जन्म होना स्वाभाविक है ।

जेल में बंद नत्थू पूँजीपतियों के हाथों में बिकी हुई व्यवस्था की स्पष्ट तस्वीर पेश करता है, ''चिलाता है नत्थू...येई तो तुम लोक का गलती है । तुम लोग सोचता इस्मगलर के घर चोरी करेंगा तो वो पोलिस कू नई बोलेंगा और पोलिस कुछ नई करेंगा | पन मैं सब लोक कू येई बोलता...किधर भी चोरी करना...पन इस्मगलर...दारूवाला...रंडीवाला...इधर कभी भूलके भी

नई जाने का | नई तो पुलिस जान ले डालेगा मार-मारके | कब्भी नई छोड़ेंगा | कायकू अरे तेरे कू मालम तो है कि कायकू नई छोड़ेंगा | सारा पोलिस खाता इधर सेच चलता | पन तुम लोक कू अक्कल नई | साला उधरिच जाके मारेंगा |"[31]

जब्बार व्यवस्था की असलियत से अच्छी तरह से वाक़िफ़ है । वह जानता है कि भ्रष्ट समाज में कोई दूध का धुला हुआ नहीं हैं, किसी के हाथ कम काले हैं तो कोई पूरी तरह कालिख में पुता हुआ है, "एक और इंस्पेक्टर निकल आया है अंदर से |...मादरचोद ! उधर से चोरी करके आया...इधर मुँजोरी करता | एक देंगा मूँ पर...|

-मूँ सम्हालके बात करना साब ! मैं चोर...तुम लोक बड़ा साहूकार आया | सबसे बड़ा बड़ा चोर...तुम लोक...|

-एक हाथ पड़ता मुँह पर | चिल्लाता है...हौ...तुम लोक चोर...सबसे बड़ा चोर | तुम चोर...तुम्हारा साब लोक चोर...तुम्हारा मिनिस्टर लोक चोर |...साला...तुम सबका पइसा खाता...|

ताड़ ! ताड़ ! ताड़ ! हाथ पड़ते जा रहे हैं |...साला...मादरचोद !

चीख रहा है |...तुम लोक मादरचोद |...हो...हम बोलता...तुम लोक मादरचोद !...तुम साला कुत्ता लोक ! जो टुकड़ा डालेंगा...उसका पीछू जाएँगा...|"[32] घोर पूंजीवादी व्यवस्था शोषण के ध्येय से काम करती है ऐसी व्यवस्था की अनिवार्यता और प्राथमिकता में स्त्री, मजदुर और गरीबों का

शोषण होता है । एक साधारण मनुष्य के लिए ऐसी शोषणवादी व्यवस्था से लड़कर जीत पाना आसान काम नहीं है ।

मुरदाघर स्त्री को वेश्या बनाने वाले सभी कारकों का जायजा लेता है । ऐसा नहीं है कि एक स्त्री को वेश्या बनाने के लिए सिर्फ़ सामाजिक रूढ़ियाँ ही ज़िम्मेवार है । हमारा आर्थिक ढाँचा और कानून व्यवस्था भी उतनी ही ज़िम्मेवार है । सभी ने मिलकर एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण कर दिया है जिसको स्त्री चाहकर भी नहीं भेद पा रही है । जिस राज्य के पास नागरिकों देने के लिए भोजन और सिर छुपाने के लिए छत देने की नीतियाँ भी नहीं उस व्यवस्था से मनुष्य के कल्याण की उम्मीद करना अपने साथ छलावा करना है । पोपट, जब्बार, मैना, हसीना, रोजी किसी दूसरे उपग्रह के चरित्र नहीं है बल्कि भारतीय समाज की सच्चाई है । ये सब हम और आप के बीच के ही लोग हैं । ये मूलभूत अधिकारों से वंचित वे लोग हैं जो अच्छे दिनों का इन्तजार कर रहे हैं । अगर सरकार ने समय रहते सही कदम नहीं उठाये तो हर गली मोहल्ले में पोपट और जब्बार जैसे हज़ारों लोग होंगे |

पूँजीवाद को बढ़ावा देने वाली आर्थिक नीतियों ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था की कमर तोड़ दी है । यही नहीं मुनाफ़े पर आधारित व्यवस्था ने श्रमिक क़ानूनों को भी कमजोर किया है । इस क्रोनी कैप्टिलिजम में फँसकर गरीब आदमी दिन-प्रति-दिन शोषण का शिकार हो रहा है । लेकिन किस्तय्या, हाजी सेठ जैसे लोग पुलिस के साथ मिलकर गरीब, मजदूरों की खून-पसीने

की गाढ़ी कमाई को लूटकर दिन-दुगनी रात-चौगनी उन्नति कर रहे हैं । हताश और निराश गरीब, मजदुर की पीड़ा को सुनने वाला कोई नहीं है । ''छिप गए कनस्तर और गिलास | किस्तय्या सिगरेट पिला रहा है हवलदार को | खिंचता है कश...नाक से धुआँ छोड़ता है हवलदार |... बड़ा साब का पास भोत तकरार गया ये झोपड़पट्टी का | वो बाजू सब अच्छा लोक रहता...बाल बच्चा वाला...सरीफ धंदा-पानी वाला | भोत तकलीफ होता सबकू | ये रंडी लोक का क्या...भला देखती ना बुरा...पइसा से गरज | बड़ा साब का आडर आया...बन्द करो | हम नई छोड़ेंगा एक कू भी |

-मत छोड़ना ! कोन बोलता तेरे से कि छोड़ | साला रंडी लोक कू बुरा बोलता | पोलिस का लोक तो रंडी लोक से भी खराब है | पइसा का वास्ते कुछ भी करेंगा...|

घूमकर देखता है हवलदार |...कौन है ये रांड ?

मैना है...घिरी हुई...बोलती चली जाती है |...अपने डंडे का डर बताता क्या ? साला गाँडू ! बड़ा सरीफ बनता | क्या है तू और साब लोक...सब मालम है | पइसा का वास्ते मराने में भी सरम है क्या तुम लोक कू ?[33]

उपन्यास में जब्बार और पोपट दोनों महत्वाकांक्षी पात्र है । अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने और आने वाले भविष्य को सुंदर बनाने के लिए वर्तमान की चुनौतियों से लड़ रहे हैं । पोपट और जब्बार क्रोनी कैप्टिलिज्म के बंधनों से मुक्त होना चाहते हैं । यही वजह है कि जब्बार

पुलिसवालों की बर्बरता को सहन कर लेता है लेकिन चोरी को स्वीकार नहीं करता है । उसे मालूम है पुलिस कि मार से तो एक ना एक दिन उभर ही जाऊँगा लेकिन व्यवस्था की रोज़ की मार सहना मुश्किल काम है । जब्बार को मालूम है कि पुलिस वालों की मार से ज्यादा पीड़ादायी बाहर की व्यवस्था की मार है । आज उसने पुलिस की मार शान नहीं की तो व्यवस्था हसीना को रांड बना देगी । जब्बार को पुलिस की अमानवीय यातना व्यवस्था की मार से कम तकलीफ़देह लगती है । ''एक इशारा | और फिर पटक दिया जमींन पर | हाथों को पकड़ रखा है कसकर | फैलाकर उठा दिया दोनों टांगों को |

-बोल बोलता है कि नई ?

और अब भी एक आवाज....मादर...!

-हवलदार ! डाल इसके भोक में डंडा...|

झुकता है हवलदार ! अचानक...जोर से काँप जाता है नंगा बदन | अचानक...जोर से निकलती है चीख...दीवारों को हिलाती हुई...काली रात की खामोशी में सारा-का-सारा जिस्म नहा जाता है पसीने से | बैल की तरह हाँफता चला जाता है आदमी |

-बोल !...बोलता कि नई अभी ?

और कोई जवाब नहीं सिर्फ खामोशी |

-हवलदार !

-साब !

फिर चीख...दीवारों-दरवाजों के आर-पार | फिर पसीना...हजारों छेदों से बहता हुआ |

खामोशी...और चीखें ! खामोशी और चीखें | कटती जाती है रात इसी तरह |"[34]

मुरदाघर के झोपड़पट्टीयों में रहने वाली आबादी देश दुनिया के क्रिया-कलापों से कटी हुई है | यह भिखारी, कोढ़ी, मजदुर, कुली, गन्दी बस्तियों की वारांगनाएं, अपराधियों और बच्चों आदि लोगों की एक अलग अपनी ही दुनिया है । आज ऐसी आबादी भारत के अनेक शहरों में बढ़ती जा जा रही है । ऐसी दुनिया में पुरुष अपराध और नशे की दुनिया में शामिल है और औरतें मुरदाघर की वारांगनाओं की तरह देहकर्म में संलिप्त है । बच्चे समाज द्वारा फेकी गई जूठन से खाना बीनकर खा रहे हैं । मुरदाघर की कहानी महानगरों की बस्तियों के लोगों की दिनचर्या से हू-ब-हू मेल खाती है । यह सब देखकर तो यही कहा जा सकता है कि चारों तरफ़ जो विकास हो रहा है उस विकास में ऐसे लोगों की भागीदारी कहाँ है ।

जिस समाज में चारों ओर वेश्याओं को हिकारत भरी नजर से देखा जाता है, वहां पर हिजड़ों द्वारा पुलिस से वेश्याओं को बचाना मानवता का प्रतीक है | काठियावाड़ से भागी हुई लड़की के प्रति मैनाबाई की सहानुभूति | सदैव गाली देने वाली मैना का पोपट की मृत्यु पर रोना बिलखना, मैनाबाई से लड़ने वाली बशीरन का मैना के साथ जाना और आर्थिक मदद करना

आदि मानवीय करुणा से सराबोर उदाहरण है | ''देखती जाती है मैना | झिलमिल आँसूओं के पार...घूमते जाते हैं सपने |...अब आया पोपट | अब शुरु हो गई जिन्दगी |...ये झोपड़े ! ये रास्ते ! ये...ये गरमियाँ ! ये बरसातें ! ये टपकते हुए छप्पर !...ये आदमी ! ये भीड़ ! ये बच्चे ! ये गाड़ियाँ ! ये बादल !...जब कोई नहीं था आगे-पीछे...तब आया पोपट | उठाने वालों ने फ़ायदा उठाया...फेंक दिया सड़क पर | उठा लिया पोपट ने |...फिकर मत कर तू | तेरे कू ले जाके रखूँगा उधर...भोत अच्छे से |...झूठ नहीं बोला | सपने देखता रहा...भरोसा करता रहा हर सपने पर |...भागते चले गए सपने...पीछे-पीछे पोपट | हाथ नहीं आए | भटकते रहे...बरसातों में | एक पाव...एक चाय...दो हिस्से | हर क़दम...हर मोड़...समझाता रहा...बार...बार |...फिकर मत कर...ये सब सच होंगा | मानती गई...ये सब सच होंगा | धीरे-धीरे...टूटता गया भरोसा | भरोसा...पोपट का...नहीं टुटा | जब टुटा...खुद चला गया दुनिया से |''[38] मुरदाघर उस क्रूर व्यवस्था की कहानी कहता है जिसमें नितांत अभावों में भी मानवीय संवेदनाओं की लो को बुझने से बचाने की जदोजहद जारी है । अति पूँजीवाद के फलस्वरूप उपजी शहरी विलासिता में सम्पन और तथाकथित सभ्य समाज में जिस मानवीयता का लोप हो गया है, वह अब भी गरीब लोगों में बची हुई है | अति पूँजीवादी विलासिता के चलते अंतिम साँस ले रही मनुष्यता पोपट के रेल से कट जाने पर दम तोड़ देती है | ''दो हमाल | नीली और लाल कमीजें | बता रहे हैं...कैसे मरा पोपट !...कुछ सामान था उसका पास | चोरी से लाया |

पेला सामान फेंका...फिर खुद कुदा...चलती गाड़ी से | उधर से आ गया दुसरा गाड़ी...लोकल !...इधर उठाके लाया...तभी तक जान था उसमें | पानी मँगता था बार-बार | कोई नई दिया | कोन देंगा ! मर गया तो अपना उपर आएँगा | आधा कलाक पड़ा होता इधर | पीछू मर गया | कोई पिछानता नई था उसकू उधर पीछू वो हिजड़ा लोक देखा उसकू...|"[39] आज भी अनेंक जगहों पर हादसों वाले स्थानों पर मनुष्यता के पतन को देखा जा सकता है । अनेंक जिंदगियाँ सहायता के अभाव में दुर्घटना स्थल पर ही पोपट की तरह दम तोड़ देती हैं और हम दूर से तमाशा देखकर अपना नैतिक कर्तव्य अदा कर देते हैं |

मुरदाघर की वेश्याओं को प्रताड़ित करने में पुलिस और ग्राहक के बीच प्रतिस्पर्धा लगी हुई है | पुलिस दलाओं को लूट की छूट देती है । पुलिस की अनदेखी के चलते ग्राहक वेश्याओं का शारीरिक और मानसिक शोषण करते हैं । कई ग्राहक तो पहले से निर्धारित पैसों को देने में आना-कानी करते हैं । अपनी ही कमाई का पैसा लेने के लिए वेश्याओं को झगड़ा भी करना पड़ता है । "तेरी माँ की !...साड़ी उपर उठा लेती है मंगला |...ले घुस जा अंदर | पइसा नई...तो अपनी माँ समज के आया मेरे पास...|

और जोर से चिल्ला रही है | गला फट जायेगा | छाती फट जाएगी |...साला भड़वा !...रंडी का पइसा मारता तू ! साला हरामी ! तू खुद रंडी का अउलाद |...अरे मेरा पइसा मार लिया रे ! रंडी का पइसा...| "[41]

जेल से लेकर झोपड़ी, कोठे से लेकर सड़क तक कोई ऐसी जगह नहीं है जहां वेश्याओं का उत्पीड़न नहीं होता है । वेश्याओं से पत्नी की तरह काम लेने वाले लोग भी विपदा के समय उनका साथ छोड़ देते हैं । हर स्तर पर अत्याचार से पीड़ित स्त्री अपने वेश्या जीवन से उब चुकी है । वेश्याओं से दिन रात काम लेने वाले लोग भी ज़रूरत के समय मुँह फेर लेते हैं । अपना होने का अहसास दिलाकर सुभद्रा और काली लड़की की बेबसी का समाज के लोगों कितनी ही बार फायदा उठाया है । "मैं समझी थी कि बाबू भाई तेरा मरद है...| करके बुला रही तू उसकू |

काली आँखों में अब छा जाता है काला बादल |...मरद नहीं तो क्या...आता तो है मेरे कने |

- सोने कू ?

- नई तो क्या ?

- और खाना भी नई देता दो टैम का ?"[42]

मुरदाघर में अभिव्यक्त दमघोटू परिवेश में ईर्ष्या, नफरत और लड़ाई आम बात है लेकिन यह लड़ाई किसी पारस्परिक प्रतिस्पर्धा से नहीं जन्मी बल्कि भूख की विवशता की देन है । वेश्याओं के बीच लड़ाई क्षणिक होती है । इसका कारण यह है कि वेश्याएँ एक दुसरे की परिस्थितियों से भली तरह से वाकिफ हैं और उन्हें अच्छे से मालूम है कि सब वेश्याएँ एक ही समस्या से जूझ रही हैं । इसलिए आपसी सम्बन्धों को सामान्य होने में ज़्यादा वक्त नहीं लगता ।

मुरदाघर वेश्या जीवन के कटु सत्यों की ओर समाज का ध्यान खिंचकर समाज में व्याप्त विसंगतियों का लेखा-जोखा पेश करता है । समाज का एक वर्ग राज्य की नीतियों के चलते ऐसी अवस्था में पहुंच गया है जहाँ से वह बिना किसी सहयोग के बाहर नहीं निकल सकता है । उपन्यास में अभिव्यक्त वेश्याओं के जीवन की भयावहता, समाज का तिरस्कार और प्रशासन का अत्याचार किसी भी सहृदय मनुष्य के मन को विचलित कर देगा । मुरदाघर के जिस सामाजिक वातावरण में वेशाएँ ज़िंदा है, उसमें शायद ही कोई साधारण मनुष्य जीवन गुजर-बसर कर सकता है | ''फुटपाथ पर रहने वालों को छाया की तलाश |...छह महीने का पेट...भटक रही है मैना | पोपट आगे-आगे | नहीं मिलती छाया...भागती जाती है | मुँह पीले...होठ सूखे | एक पाव रोटी...दो टुकड़े | खाते हैं दोनों...पीते हैं पानी | एक चालू चाय...फिर दो हिस्से...कप में और बसी में | कहाँ से आये हैं दो आदमी...मालूम नहीं | एक बहुत बड़ा शहर...भीड़-भरी फुटपाथ...फिर आए बादल | अब नहीं लौटेंगे...बरसेंगे बार-बार | एक छाया की तलाश | एक बड़ा पेट ला-लाकर देती है टुकड़े...लकड़ियों के | बन रहा है छप्पर रेल की पटरियों के पास | घर दो आदमियों का | रिमझिम-रिमझिम पानी ! कीचड़ | दो ठिठुरे हुए आदमी | रात | फिर रात | फिर वही पानी....रिमझिम-रिमझिम |''[43]

21वीं सदी में हम विकासशीलता से विकसित देशों की श्रेणी की ओर कदम बढ़ा रहे हैं और इस क्रम में मानव के सर्वांगीण विकास की ओर

ध्यान ना देकर ढाँचागत विकास पर अधिक ज़ोर दे रहें हैं । यह केवल हमारे आर्थिक विकास को मज़बूत कर रहा लेकिन हम सामाजिक विकास में पिछड़ रहें हैं । मनुष्य के सर्वांगीण विकास को प्राथमिकता दिये बिना हम कभी आर्थिक विकास प्राप्त नहीं कर सकते है । मुरदाघर का समाज इसी आधे-अधूरे आर्थिक विकास का परिणाम है । जब तक व्यवस्था की मूलभूत स्थिति में परिवर्तन नहीं होगा लोग दाने-दाने को मोहताज रहेंगे हैं । शहरों की बस्तियों में ऐसे ही जिस्मफिरोशी पैर पसारती रहेगी । हम और हमारा लोकतंत्र मूक दर्शक बनकर स्त्रियों के जीवन को खाख होते देखते रहेंगे । आज देहव्यापार दुनिया के प्रत्येक कोनों में फैल रहा है आज वेश्यावृत्ति अस्त्र-शस्त्रों की नियोजित खरीद-फरोख्त के बाद दुनिया के सबसे बड़े व्यवसायिक कार्य के रूप में तब्दील हो गई है |

मुरदाघर में अभिव्यक्त जिस्मफिरोशी के कोढ़ की भयावहता का शिकार कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि एक वर्ग परोक्ष रूप से जबकि दूसरा वर्ग अपरोक्ष रूप से प्रभावित है । अब सवाल यह उठता है कि रेल लाइनों के किनारे बस्तियों में रहने को विवश लोगों के लिए कौन जिम्मेवार है ? समाज से बेदख़ल और राज्य की नीतियों से वंचित लोगों (पोपट से लेकर जब्बार, मैना, हसीना, नई लड़की आदि) के दयनीय जीवन के लिए कौन ज़िम्मेवार है ?

मुरदाघर में वेश्यावृत्ति के कारणों, वेश्याओं के शोषण और जीवन के संघर्ष के साथ-साथ वेश्याओं की जीवनगत इच्छाओं व आकांक्षाओं के सवाल

को भी उठता है । लेखक ने व्यंगात्मक शैली के माध्यम से कोर्ट- कचहरियों में वकीलों के व्यवहार को पेश करते हुए कोर्ट में एक दो रुपयों की खातिर एफ़ीडेविट बेच रहे दयनीय बूढ़े वकीलों की हालात का भी जायज़ा लिया है । ''सच्ची...अहसाच तो अपुन लोक भी करता | नई क्या ?''[44]

उपभोगवादी व्यवस्था स्त्री की रचनात्मक गुणों, स्त्री के अधिकार, जीवन के निर्णय लेने की स्वतंत्रता का कोई स्थान नहीं होता है । यह ऐसी व्यवस्था है जिसमें स्त्री को स्वतंत्रता की कीमत शारीरिक शोषण के रूप में चुकानी पड़ती है । मुरदाघर की वेश्याओं को व्यवस्था ने ऐसी ही स्वतंत्रता प्रदान की हुई है जिसमें शोषण के विरुद्ध वेश्याओं को कोई क़ानूनी अधिकार नहीं हैं ।

मुरदाघर में वेश्याओं के साथ होने वाले अमानवीय अत्याचार पूँजीवादी व्यवस्था की देन हैं । यह व्यवस्था इतनी क्रूर है कि यहाँ जीवित देह का भाव भी है और मृत शरीर का माल भी है । जो पोपट मरने से पहले समाज के ऊपर बोझ था वही पोपट मरने के बाद व्यवस्था के लिए उपयोगी हो गया । ''कुछ नहीं होंगा | वो लोक जो इधर पढने के वास्ते आता...उनका काम में आ जाएँगा | हड्डी का भाव भोत जास्ती है आजकल | पूरा जिस्म का ढांचा का भाव तीन सौ रुपिया चलता है...|''[45] दीक्षित जी ने वेश्याओं के रोज़मर्रा के शोषण के साथ पूंजीवादी व्यवस्था के कुरूप चरित्र को उजागर किया है । इस पूंजीवादी व्यवस्था के बाज़ार में प्रत्येक वस्तु के लिए मूल्य सुनिश्चित है । यहाँ कुछ भी व्यर्थ नहीं है । दीक्षित जी का मानना है कि

पूंजीवादी व्यवस्था मनुष्य की शक्ति और सामर्थ्य के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों के शोषण की व्यवस्था है । यह ऐसी व्यवस्था है जिसमें दिन-रात मेहनत के बाद भी मनुष्य अभाव में ही रहता है । पूंजीवादी व्यवस्था ऊपर से विकास का आवरण ओढ़े हुए हैं लेकिन अंदर से समाज और संसाधनों की लूट की नीयत से परिपूर्ण है ।

मुरदाघर की वेश्याओं के जीवन में पग-पग पर प्रताड़ना और चुनौतियों से भरा जीवन है । झोपड़पट्टी की वेश्याओं के सामने जीवन की मूलभूल सुविधाओं का अभाव है । वेश्याओं की जवानी कष्टों से भरी हुई है और उनका बुढ़ापा भी दुखदायी है । एक वेश्या को जीवन भर भविष्य की असुरक्षा और बुढ़ापे की चुनौतियों के साये में जीना पड़ता है । मुरदाघर में वेश्याजीवन से जुड़े तमाम पहलुओं को लेखक अभिव्यक्त किया है । वेश्याओं के प्रति समाज की सोच से लेकर राज्य की पुलिस के व्यवहार को उपन्यास में प्रस्तुत किया है । अंत में हम कह सकते हैं कि वेश्याओं का जीवन शुरू से लेकर जीवन के अंत तक उत्पीड़न से भरा रहता है । एक वेश्या जीवन की किसी अवस्था में रहे शोषण का पहलू उसके जीवन से हमेशा जुड़ा रहा है ।

संदर्भ सूची:

1. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, संस्करण-2000, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली 110032, पृष्ठ सं-7
2. वही. पृष्ठ सं-7
3. हृदयेश मयंक, चिंतन दिशा, साहित्य व समाज विमर्श का त्रैमासिक, अक्टूबर-दिसम्बर,- 2014, मुंबई- 401107, पृष्ठ सं-47
4. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, संस्करण-2000, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली-110032, पृष्ठ सं-9
5. वही. पृष्ठ सं-12
6. वही. पृष्ठ सं-12
7. वही. पृष्ठ सं-126
8. वही. पृष्ठ सं-53
9. वही. पृष्ठ सं-53
10. वही. पृष्ठ सं-81
11. वही. पृष्ठ सं-55
12. वही. पृष्ठ सं-53
13. वही. पृष्ठ सं-77
14. वही. पृष्ठ सं-68
15. वही. पृष्ठ सं-82
16. वही. पृष्ठ सं-111

17. वही. पृष्ठ सं-112

18. वही. पृष्ठ सं-76

19. वही. पृष्ठ सं-81

20. वही. पृष्ठ सं-90-91

21. वही. पृष्ठ सं-95

22. वही. पृष्ठ सं-118

23. वही. पृष्ठ सं-11

24. वही. पृष्ठ सं-66

25. वही. पृष्ठ सं-144

26. वही. पृष्ठ सं-78

27. वही. पृष्ठ सं-17

28. वही. पृष्ठ सं-18

29. वही. पृष्ठ सं-17

30. वही. पृष्ठ सं-40

31. वही. पृष्ठ सं-129

32. वही. पृष्ठ सं-128

33. वही. पृष्ठ सं-32

34. वही. पृष्ठ सं-135

35. वही. पृष्ठ सं-24

36. वही. पृष्ठ सं-41

37. वही. पृष्ठ सं-95

38. वही. पृष्ठ सं-144

39. वही. पृष्ठ सं-142

40. वही. पृष्ठ सं-107-108

41. वही. पृष्ठ सं-109

42. वही. पृष्ठ सं-67

43. वही. पृष्ठ सं-13

44. वही. पृष्ठ सं-83

45. वही. पृष्ठ सं-146

अध्याय तीन

सलाम आख़िरी में अभिव्यक्त यौनकर्मियों की समस्याएँ

सलाम आख़िरी उपन्यास कलकत्ता के लालबत्ती इलाक़ों की वेश्याओं की दास्ताँ को प्रस्तुत करते हुए समाज में सदियों से चली आ रही वेश्यावृत्ति की समस्या को उठाया गया है । हाँ यह अलग बात है कि समाज ने आज भी वेश्यावृत्ति को स्त्री के जीवन से जुड़ी समस्या नहीं माना है । बल्कि वेश्यावृत्ति के पक्षधरों का मानना है कि वेश्यावृत्ति को ख़त्म किया गया तो समाज को उसके गम्भीर परिणाम भुगतने होंगे । लेकिन मधु काँकरिया ने सलाम आख़िरी उपन्यास में वेश्यावृत्ति के पक्षधरों से इतर वेश्यावृत्ति को सामाजिक समस्या मानते हुए उसे स्त्री के जीवन से जोड़कर परिभाषित किया है । आज का प्रबुद्ध वर्ग जिसे यौनकर्म नाम दे रहा है, यह वही वेश्यावृत्ति है जो अलग-अलग नामों से दुनिया के सभी समाजों में विध्यमान रही है । आज भी वेश्यावृत्ति अनवरत जारी है । अब समझने वाली बात यह है कि जिस समाज में एक साधारण स्त्री का जीवन संघर्ष और चुनौतियों से भरा हुआ हो उस समाज में एक वेश्या का जीवन कैसा होगा और उसकी स्थिति क्या होगी है? इसका अनुमान लगाना कोई मुश्किल कार्य नहीं है । एक स्त्री के साथ वेश्या की पहचान जुड़ जाने पर उसकी समस्याओं और

उत्पीड़न का दायरा विस्तृत व व्यापक हो जाता है । मधु कांकरिया ने स्त्री वेश्या के रूप में जीवनभर जिन चुनौतियों का सामना करती है उपन्यास में उन सभी का लेखा-जोखा पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है । प्रत्येक वेश्या को अपने जीवनकाल में किसी ना किसी समस्या से जूझना ही पड़ता है । लेकिन कुछ समस्याएँ ऐसी हैं जिनका सामना सभी वेश्याओं को करना पड़ता है । उसी में आजीविका की समस्या सब वेश्याओं के जीवन की आम समस्या है । सलाम आख़िरी की वेश्याओं में आजीविका को लेकर गहरी असुरक्षा की भावना दिखाई देती है । दूसरा वेश्याओं के जीवन में उनकी बढ़ती उम्र और गिरता स्वास्थ्य एक बड़ी चुनौती है । एक उम्र के बाद बुढ़ापा तथा कई लाईलाज बीमारियाँ वेश्याओं के शरीर को अपने जाल में जकड़ लेती हैं । शरीर से बुज़ुर्ग हो जाने पर कोई ग्राहक भी उनके पास नहीं आता है जो वेश्याओं के सामने रोज़ी-रोटी का संकट खड़ा कर देता है । उपन्यास में हम देखते हैं सलाम आख़िरी की वेश्याओं को सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक, स्तर पर शोषण का सामना करना पड़ता है ।

किसी स्त्री द्वारा एक बार वेश्यावृत्ति अपना लेने के बाद ताउम्र उसको वेश्या की नज़र से देखा जाता है । इसकी वजह से वेश्याओं सामाजिक स्वीकार्यता के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है । ऐसी वेश्याओं को वेश्यावृत्ति छोड़ देने के बाद भी समाज स्त्री रूप में स्वीकार नहीं करता है । वेश्याओं की समस्याओं पर बात करने से पहले हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि

वेश्यावृत्ति अपने आप में ही स्त्री जीवन की सबसे बड़ी समस्या है जिसके कारण ही स्त्री के जीवन में तमाम तरह की अन्य समस्याओं का जन्म होता है । दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि समाज वेश्यावृत्ति की समस्या पर बात ना करके समाज को दुराचार और वेश्याओं को शोषण से निजात दिलाने के लिए वेश्यावृत्ति को क़ानूनी वैधता देने की वकालत की जा रही है । समाज में वेश्याओं की उपस्थिति को लेकर सदियों से दिए जा रहे तर्क के बारें मे लेखिका लिखती है, "समाज में वेश्या की मौजूदगी एक ऐसा चिरन्तन सवाल है जिसको लेकर हर समाज, हर युग में अपने-अपने ढंग से जूझता रहा है । वेश्या को कभी लोगों ने सभ्यता की ज़रूरत बताया, कभी कलंक बताया, कभी परिवार की क़िलेबंदी का बाई-प्रोडक्ट कहा और कभी सभ्य सफ़ेदपोश दुनिया का गटर जो 'उनकी' काम-कल्पनाओं और कुंठाओं के कीचड़ को दूर अंधेरे में ले जाकर डंप कर देता है ।"[1]

सलाम आख़िरी उपन्यास में कलकत्ता महानगर के रेडलाइट इलाक़ों जिसमें सोनागाछी, बहुबाज़ार, कालीघाट, बैरकपुर, खिदिरपुर में चल रहे देहव्यापार को आधार बनाकर समाज में व्याप्त वेश्यावृत्ति की समस्या की ओर लोगों का ध्यान खिंचा गया है । उपन्यास में समाज के दोहरे चरित्र को उजागर करते हुए वेश्या जीवन से जुड़ी तमाम समस्याओं को अलग-अलग पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है । वैसे वेश्याओं के जीवन में समस्याओं को जन्म देने वाले या यूँ कहें की सामान्य स्त्रियों के जीवन को समस्या में डालने वाला कोई और नहीं बल्कि हमारा समाज ही है । परंतु समाज

कभी भी इस बात को स्वीकार नहीं करता है कि वह स्त्री के जीवन से जुड़ी समस्याओं का जनक है । यह समाज के दोहरे मापदंडों का ही प्रमाण है कि एक तरफ़ समाज स्त्री के अधिकारों की बात करता है तो दूसरी ओर यही समाज स्त्री को वेश्यावृत्ति के लिए मजबूर करता है । वेश्यावृत्ति को बढ़ावा देने वाले समाज के पद प्रतिष्ठा वाले वहीं लोग हैं जिनको कंधों पर समाज को बदलने की ज़िम्मेवारी है । ऐसे लोगों के चरित्र ब्याँ करते हुए लेखिका लिखती है, "स्त्री की दशा पर लिखने वाले लेखक, समाज सुधारक एवं पत्रकार भी । लुंगीवाले । टाईवाले । जींसवाले । पतलून वाले । धोती धारी, तिलकधारी, गांधी टोपी धारी-समाज के सभी कोनों से आते लोग यहाँ- अपनी ज़िंदगी में 'रस', 'वेरायटी' और झूठे प्यार' का बंदोबस्त करने इन बदनाम गलियों में ।"[2]

सलाम आख़िरी की वेश्याओं के जीवन का आर्थिक अभाव भविष्य की चिंताओं को जन्म देता है । उन्हें अभावों की काली रात का साया मृत्यु के क्षण तक सताता रहता है । यह डर वेश्याओं को उम्र से पहले ही बूढ़ापे का शिकार बना देता है । यही नहीं आर्थिक अभाव से उपजी विवशता वेश्याओं को कोठों पर आने वाले ग्राहकों की मनमर्ज़ी का शिकार बनाती है । जिसकी बदौलत वेश्याओं के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है । यह शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाला नकारात्मक प्रभाव वेश्याओं के जीवन में कई लाईलाज बीमारियों को जन्म देता है ।

सलाम आख़िरी में वेश्याओं के आस-पास का परिवेश उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति को दर्शाता है । जैसे इलाक़ों में सलाम आख़िरी की वेश्याएँ रह रही हैं वह स्थान पशुओं के रहने लायक़ भी नहीं है । परंतु समाज के विधान ने वेश्याओं को अमानवीय परिवेश में रहने को बाध्य किया हुआ है । वेश्याएँ चाहकर भी अच्छे सठन पर नहीं रह सकती हैं । समाज वेश्याओं को यह इजाज़त नहीं देता है कि वे साफ़-सुथरे परिवेश में रहें । वेश्याएँ जिस अमानवीय परिवेश में रहती हैं उसका का वर्णन करते हुए लेखिका लिखती है, "इन गलियों के लगभग हर कमरे बदबूदार, अंधेरे, चूना झड़ती दीवारोंवाले, जंग खाए जंगलोंवाले एवं टूटे फ़र्शवाले हैं । हर कमरे में एक ऊँचा सा कहीं-कहीं ईंटों के सहारे ऊँचा कर दिया गया एक सिंगल बेडनुमा तख़्ता है जिस पर पतला-सा बिस्तर है, जिस पर पतली-सी मैली-सी एवं किसी पूर्व ग्राहक के पसीने से अटी पड़ी फुलालेन या कोई छींटदार चद्दर है । पाँवों की तरफ़ तह किया हुआ सस्ता मैला कम्बल है । मैल और तेल से अटे पड़े गिलाफवाला, कहीं-कहीं बिना गिलाफवाला । एकदम कम रुई का कड़ा-सा तकिया है । जगलों पर वेश्या या आनेवाले ग्राहक की इज़्ज़त पर पर्दा डालने के लिए डोरी से लटके, धूल से अटे गंदे काले पर्दे हैं ।"[3] सिलन भरे कमरों के दमघोटूँ वातावरण में वेश्याओं को असंख्य स्वास्थ्य सम्बन्धी बीमारियाँ लग जाती हैं । और पैसों के अभाव में समय पर बीमारी की जाँच और इलाज ना मिलने के कारण कई वेश्याएँ जीवन के चालीस

वर्ष भी पूरे नहीं कर पाती हैं । वेश्याओं के लिए ना सरकार के पास उनके स्वास्थ्य को लेकर कोई योजना है और ना समाज के पास बदबुदार, दमघोटू वातावरण वेश्याओं को बाहर निकालने का को प्रोग्राम है । वेश्याएँ स्वास्थ्य को लेकर जिन समस्याओं का सामना करती हैं उसका विवरण देते हुए रेशमा बताती है, "मैं अभी सिर्फ़ चालीस वर्ष की हूँ, पर मेरा एच.आई.वी. पोज़िटिव आया है । बस तीन-चार वर्ष की ज़िंदगी और है मेरे पास...।"[4] एच.आई.वी. जैसी गंभीर बीमारी से जूझने वाली रेशमा अकेली नहीं है । यह हर दूसरी वेश्या की कहानी है । सबसे अहम बात यह है कि एच.आई.वी. वेश्याओं में कोई जन्मजात बीमारी नहीं है बल्कि यह पुरुष की काम-वासनाओं की देन है । "यह कोई विशेष घटना नहीं यहाँ के जीवन की । आधी से ज़्यादा ग़रीब वेश्याओं का भाग्य ऐसा ही होता है । चालीस-पैंतालीस तक कई मर-मुरा जाती हैं या अपंग या सड़-गल जाती हैं । यदि यह नहीं हुआ तो पागल या भिखारिन ही बन जाती हैं । पिंकी थोड़ी जल्दी मर गई । अरे, यदि सेप्टिक और रक्तस्त्राव से नहीं मरती तो कुछ सालों बाद एड्स या सिफ़लिस से संक्रमित होकर मर जाती । जानती है चालीस तक आते-आते बहुत सारी वेश्याएँ सड़-गल कर तीन चौथाई मर चुकी रहती हैं, शरीर और मन दोनों से । हमारे भाग्य में न ख़ुशनुमा बचपन है न शांत प्रौढ़ावस्था । हमारे भाग्य में सिर्फ़ सड़क और जाँघ होती है ।"[5] समाज की कामुकता ही वेश्याओं के लिए यौनरोगों का कारण बनती है । केवल यौनरोग ही नहीं पुरुषों की कामुकता के चलते अधिकतर समय वेश्याओं को अनचाहा

गर्भ भी धारण करना पड़ता है । एक वेश्या के लिए गर्भवती होना जीवन में नई चुनौतियों को जन्म देता है । वेश्या जानती है कि उसके लिए जीवनगत अभावों से लड़ना आसान नहीं है । ऐसी स्थिति में अपनी तथा अपने संतान के लिए जीवन की मूलभूत ज़रूरतों को जुटा पाना और भी कठिन है । ऐसे संकट में पिंकी जैसी वेश्याओं के पास गर्भपात करवाना ही एक मात्र रास्ता बचता है । "तीन साढ़े तीन महीने का है, गिरवाना है-ग़रीबी में और ग़रीबी...ख़ैर पैसों का इन्तजाम हो गया है । थोड़ा अभी थोड़ा बाद में भर दूँगी-अभी सीज़न चल रहा है । किसी को साथ ले जाऊँ तो मना नहीं करेगी पर बेचारी का नुक़सान हो जाएगा...यूँ ही आजकल जब-तब कई दिन फाके पड़े रहते हैं ।"[6] एक वेश्या से पहले वह स्त्री है । और स्त्री होने के नाते उसके भीतर माँ का जो रूप है उस रूप का अपने बच्चों के भविष्य के प्रति चिंतित होने स्वाभाविक है । लेकिन दूसरी ओर वह वेश्या के रूप यह भी जानती है कि तथाकथित सभ्य समाज वेश्या के बच्चे को नागरिक के रूप में कभी स्वीकृति नहीं देगा । जब हमारा समाज एक वेश्या को कोई अधिकार नहीं देता। वह समाज बच्चों के साथ अच्छा सलूक कैसे कर सकता है । लेखिका पादरी के माध्यम से वेश्याओं के बच्चों के प्रति तथाकथित सभ्य समाज की कथनी और करनी वाली सोच को उजागर करती है ।, "जैसे ही लोगों की मालूम पड़ेगा कि यह बच्चा लालबत्ती इलाक़ों से आता है, सारी अंगुलियाँ मेरी तरफ़ उठ जाएँगी कि पादरी अवश्य ही लालबत्ती इलाक़ों में जाता होगा । नो, आई कैन नॉट डू एनीथिंग दैट गोज

अगेन्स्ट माई इंटीग्रिटी । लुक । सिस्टम निर्भीक हो सकता है, व्यक्ति नहीं । मैं मानवता की बेहतर सेवा कर सकूँ इसके लिए यह ज़रूरी है कि मेरी इंटीग्रिटी बनी रहे ।"[7] समाज के लिए लोगों के लिए झूठी मान और प्रतिष्ठा ज़रूरी है । ऐसे समाज को अपनी इंटीग्रिटी को बचाने की ख़ातिर किसी निर्दोष का भविष्य भी बर्बाद करना पड़े और किसी की जान भी लेनी पड़े तब भी पीछे नहीं हटता है । सामंती सोच वाले समाज ने अपनी इंटीग्रिटी को बनाये रखने के लिए सैकड़ों-हज़ारों स्त्रियों को वेश्यावृत्ति के कूए धकेला है । और न जाने अभी कितनी ही स्त्रियों को इंटीग्रिटी बचाने के नाम पर वेश्यावृत्ति के जाल में फँसाया जायेगा ? पिंकी का जीवन इसी इंटीग्रिटी को बचाने बात का साक्षात उदाहरण है । जो कई पीढ़ियों से वेश्यावृत्ति का शिकार बनी हुई है । पिंकी की माँ से लेकर पिंकी की बहन और ख़ुद पिंकी का जीवन इस बात की तस्दीक़ करता है । "मैं वेश्या, मेरी माँ वेश्या, बहन वेश्या, और अब यह पुत्री भी इसी दुनिया में...ईश्वर अगले जन्म में कुछ भी बना दे...चील, कौआ, साँप, गाय...पर वेश्या...नहीं ।"[8] पिंकी वेश्याओं के जीवन की भयावहता से अच्छी तरह से वाक़िफ़ है । पिंकी नहीं चाहती कि उसकी बेटी उस शोषण के दलदल में रहे । जिसमें पिंकी खुद रह रही है । वह अपनी बेटी की सलामती चाहती है । अपनी संतान को लेकर पिंकी की जो चिंता है वैसी ही चिंता सलाम आख़िरी की अधिकतर वेश्याओं में दिखाई देती है । वेश्याओं की चिंता है कि जो नारकीय जीवन उन्होंने भोगा है, वह उनके बच्चों को ना भोगना पड़े । यह चिंता हम मृत्यु शया पर लेटी हुई

पिंकी की अंतिम इच्छा के रूप में देख पाते हैं । अपनी चिंता को ज़ाहिर करते हुए पिंकी, रेशमी से कहती है, "रेशमी ध्यान रखना मेरी बेटी का ।"[9] ऐसा कब होता है कि वेश्या की बेटी को कोठे पर नहीं बिठाया जाता है । पिंकी की बेटी कोई उपवाद नहीं है जिसको कि वेश्या बनाया गया है । पिंकी की मृत्यु के साल भर के अंदर की उसकी बेटी मलका को कोठे पर तैयार कर बिठा दिया गया । पिंकी की भाँति माया भी अपनी पुत्री को वेश्यावृत्ति की परछाईं से दूर रखना चाहती थी लेकिन माया चाहकर भी पुरुष की कामुकता और हिंसा से अपनी बेटी को नहीं बचा पाती है । माया और पिंकी की इच्छा केवल इच्छा ही रहती है । माया अपनी बेटी की स्थिति के लिए समाज को दोष ना देकर अपने कर्मों को ही ज़िम्मेवार मानती है । "इतनों को वेश्या बना डाला तो ख़ुद की पुत्री को कैसे बचाती ।"[10]

वेश्याओं के जीवन में कदम-कदम शोषण है । न्यायव्यवस्था, पुलिस, समाज, कोठे की मालकिन सब के सब वेश्याओं का जी भर शोषण करते हैं । समाज स्त्री के वेश्या बनने के लिए उसके चरित्र को दोष देता है वहीं पुलिस वेश्यागामी पुरुष को पकड़ने की बजाए वेश्याओं को वेश्यावृत्ति की संरक्षिका का अपराधी मानती है । वेश्याओं के प्रति पुलिस व्यवहार सदैव नकारात्मक होता है । पुलिस वेश्याओं के केस में एकतरफ़ा कार्यवाही करती है । "बैरकपुर की एक महिला को पहले तो पुलिस पकड़कर ले गई, राह चलते राहगीरों को परेशान करने के आरोप में । उसने आनाकानी की,

विरोध जताया तो उसे घसीटा और फिर थाने में उसके साथ सामूहिक रूप से बलात्कार किया । फ़्री-फ़ंड में मिले आनंद को जो छोड़ दे वह भारतीय पुलिस ही क्या...उस वेश्या ने हिम्मत करके धमकी दी कि मैं सीनियर पुलिस से इसकी शिकायत करूँगी, तो वहाँ खड़े सभी पुलिसवाले हँस पड़े...वेश्या के साथ बलात्कार !"[11] वेश्याओं का शोषण करना पुलिस अपना क़ानूनी अधिकार समझती है । पुलिस और पुलिस की पूरी कार्यप्रणाली अपराध और शोषण को रोकने की जगह पीड़ित को ही पीड़ा देती है । क़ानूनी रूप से पुलिस का काम शोषण को रोकने और शोषक पर कार्यवाही करने का होता है लेकिन उपन्यास में पुलिस शोषण में भागीदार की भूमिका में नज़र आती है । पूरा उपन्यास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा जहाँ पुलिस, ग्राहक, दलाल मिलकर वेश्याओं का शोषण कर रहे हैं । "साले कुत्ते का भी एक मालिक होता है, एक ठौर ठिकाना होता है, हर कोई उसे हड़का नहीं सकता । पर हमारा क्या है, रास्ते में पड़ी कुतिया से भी बदतर ज़िंदगी है हमारी । कोई भी मार दे ठोकर । जो भी डाल दे दो पैसे, बस उसी के आगे बिछ जाना पड़ता है । क्योंकि हम किसी की भी नहीं हैं, न माँ की, न बाप की, न भाई की, न बहन की । न हिंद की और न ही हिंदुस्तान की । किसी की भी नहीं ।"[12]

सामाजिक ताने-बने जैसे घर, परिवार, समाज की इकाई में भी स्त्री शोषण से मुक्त नहीं है । स्त्री चाहे घर में रहे या चकला घर में शोषण उसका पीछा नहीं छोड़ता है । वेश्याओं को ना समाज में कोई अधिकार होता है

ना शोषण के विरुद्ध क़ानून में कोई प्रावधान है । चकलों की मालकीन से लेकर वेश्याओं के पास आने वाले पुरुषों तक वेश्याओं का शोषण करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं । वेश्याओं के उत्पीड़न की कहीं कोई सुनवाई करने वाला नहीं है । वेश्याएँ अपने ख़िलाफ़ हो रहे शोषण को लेकर कहीं शिकायत भी दर्ज कराती हैं तो उल्टा उन्हें ही दोषी बना दिया जाता है । यही वजह है कि पुलिस का वेश्याओं के साथ अच्छा बर्ताव ना होने के कारण चकला घरों में आने वाले ग्राहकों भी उत्पीड़न से पीछे नहीं हटते हैं । "कल रात चूहे की-सी शक्लवाले मिनमिनाते एक ग्राहक ने विकल वासना के आवेग में उसे भरपूर साथ न देने के कारण एवं उसे मनमानी करने से रोक दिए जाने के कारण भरपूर चाटा मार दिया था ।"[13] हिंसा और उत्पीड़न चकलाघरों के रोज के क़िस्से हैं । इस उत्पीड़न और हिंसा के विरुद्द चकला घरों की मालकिन भी वेश्याओं के साथ खड़ी नहीं होती हैं । वेश्याओं के उत्पीड़न को नज़रंदाज़ कर कोठे की मालकीन आर्थिक लाभ के लिए ग्राहक का ही पक्ष लेती हैं । "थोड़ी-बहुत एक्टिंग तो इस लाइन में करनी ही पड़ती हैं....सभी कोई करती हैं तुम कोई सीता-सावित्री तो हो नहीं । शुक्र मना कि तुझे चौड़ी नाक, मोटे होंठ और भौंडी छाती के बावजूद गिराहक मिल जाते हैं, उनकी क़द्र कर । हाँ हूँ, उफ़-उफ़ करते सिसकारी भी मारनी पड़ती है...जिससे उसका पुरुषार्थ सहला रहे ।"[14] चकलाघरों में वेश्याओं को पीड़ा, घुटन और यातनाओं को सहते हुए अपने स्वाभिमान के विपरीत पराए पुरुष के आगे बिछना पड़ता है । हर चकले की वेश्या को

मालकिन और ग्राहक की ख़ुशामद के लिए शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न को सहना पड़ता है । "साला गिद्ध था...गिद्ध, गिद्ध से भी बदतर । गिद्ध तो फिर भी मरे हुए का माँस नोचता है पर इसने तो ज़िंदा माँस ही नोच डाला ।"[15] ग्राहक, पुलिस, समाज से लेकर चकलाघरों की मालकिन वेश्याओं के शोषण में तनिक भी कोताही नहीं बरतती हैं । "पहले जिस चकले में मैं थी उसकी मालकीन तो पूरी 'राक्ख़शी' थी-चोट्टी । सभी लड़कियाँ काँपती थी उस हरामिन से । अमें कभी भी किसी गिराहक से मेल-जोल तक नहीं बढ़ाने देती । कहती मर्द की जाति का चाटना और काटना दोनों बुरा होता है । चकले से बाहर झाँकने तक नहीं देती कि कहीं अम भाग खड़ी न हों...अपने गाँव में मैं चिट्ठी तक बड़ी मुश्किल से लिखवा पाती । हरामिन अमारे हगने-मूतने तक का हिसाब रखती ।"[16]

सलाम आख़िरी में स्वतंत्र रूप से वेश्यावृत्ति करने वाली वेश्याओं की तुलना में मालकीन के अधीन कोठे पर काम करने वाली वेश्याओं को अपनी मर्ज़ी से ग्राहक चुनने की आज़ादी भी नहीं होती है । मालकीन के साम्राज्य में या यूँ कहें चकले के भीतर वेश्याओं के ग्राहक को पसंद और ना पसंद करने का सवाल ही नहीं होता । ग्राहक के साथ सम्बंध बनाने में वेश्याओं के लिए मालकिन का आदेश अंतिम और सर्वोपरि होता है । वेश्याओं के पास खुद के मकान का ना होना और मालकिन के कोठे पर रहने की निर्भरता वेश्याओं की ग्राहक चुनने की स्वतंत्रता को सीमित कर देती है । यह मालकिन के कोठे की निर्भरता कई बार वेश्याओं के शोषण का कारण बनती

है । "यहाँ तो फिर भी पुरानी पड़ने पर अम लोग कई बार किसी बेहद गंदे या डरावने गिराहकों को देख मना कर देती हैं । पर वहाँ तो सवाल ही नहीं उठता था...मालकीन का यार था, पूरा जल्लाद, काले इंजन सा चेहरा । दिनभर बस एक ही काम था-रंगबाज़ी झाड़ना । ज़रा-सी ना नुच्च की कि ढाई मन का पूरा पंजा मुँह पर । पुलिस तक भैन...से मिली हुई थी ।"[17] चकलाघरों में आने वाले पुरुष जवान व कम उम्र की लड़कियों की ओर ही आकर्षित होते हैं । इसलिए कोठे की अधिकतर मालकीन कम उम्र की आकर्षित लड़कियों को ही रखती हैं परंतु वेश्याओं के लिए शोषण और घुटन भरे अमानवीय वातावरण में लम्बे समय तक यौवन को बनाएँ रखना चुनौतीपूर्ण काम होता है । दैहिक और मानसिक उत्पीड़न के कारण ढलती उम्र वेश्याओं के भीतर असुरक्षा का भाव उत्पन्न करती है । वेश्यावृत्ति में वेश्याओं की माँग तभी तक होती है जब तक वे जवान है । वेश्याओं की जवानी ही कोठें की मालकीन की आय का मुख्य स्त्रोत होती है । कुल मिलाकर वेश्याओं की कच्ची उम्र व आकर्षक रंग-रूप ही ग्राहकों को आकर्षित कर वेश्याओं की कमाई का ज़रिया बनता है । वेश्याएँ लम्बे समय तक देहकर्म में संलिप्त होने के कारण स्त्री अपनी सारी कार्यकुशलता को भूल चुकी होती है । वे अब कोई दूसरा काम नहीं कर सकती हैं । लेकिन इसके बावजूद भी अगर कोई अपनी आजीविका के लिए वेश्यावृत्ति को छोड़कर कोई दूसरा काम करने का प्रयास करती है तो समाज उसको उस काम में

टिकने नहीं देता है । ऐसी स्थिति में वेश्याओं के पास वेश्यावृत्ति के अलावा दूसरा कोई विकल्प नहीं बचता है । "आगे क्या करना चाहोगी ?

एकदम सपाट-सा जवाब था, "अम तो अब ख़राब हो चुकी है, अम लोगों का क्या होगा? बस मालकीन ख़ुश रहें, ग्राहक मिलते रहें । आजकल धंधा उतना अच्छा नहीं रहा...इस रास्ते में खड़ी रहनेवालियों ने रेट भयंकर रूप से गिरा दिए हैं...और हिंदुस्तानी आदमी सस्ते में पहले मुँह मारेगा । कभी-कभी यह सोचकर परेशान ज़रूर हो जाती हूँ कि मालकिन ने यदि निकाल दिया तो क्या होगा...ग्राहकों के लिए सड़क पर सस्ती रेट पर खड़े रहना पड़ेगा...या फिर दलालों से निपटना होगा ।"[18] वेश्या के यौवन का ख़रीददार पुरुष तब तक ही होता है जब तक वह यौवना है । उम्रदराज़, यौवन ढली हुई वेश्या की तरफ़ पुरुष कम ही आकर्षित होते हैं । एक उम्रदराज़ वेश्या के जीवन में बेसहरा होने पर शोषण और उत्पीड़न के दलदल से बाहर निकलने का अकाल मृत्यु ही एक मात्र रास्ता बचता है । नूरी कोई जन्मजात वेश्या नहीं है बल्कि हालातों की विवशता के चलते उसे देहव्यापार के लिए विवश किया गया । नूरी के सामने ऐसी परिस्थितियाँ खड़ी कर दी गई की उसके पास अपनी हालातों से पार पाने का कोई दूसरा विकल्प नहीं था । अब नूरी के सामने दो ही विकल्प हैं एक भूख का चुनाव कर ले । दूसरा वह इज्जत छोड़ कर भूख को छोड़कर चुनौती दे । "किसे देखे? भूख की कगार पर खड़े उम्मीद लगाए माँ-बाप को, छोटे भाई-बहनों को कि अपनी इज़्ज़त को ।"[19] नूरी ने अभावों से भरे हुए जीवन से मुक्ति पाने के लिए

वेश्यावृत्ति का रास्ता अपना लिया । परंतु सभी स्त्रियों के वेश्या बनने और बनाए जाने की प्रक्रिया और कारण एक जैसे नहीं होते और सब लड़कियों के जीवन की परिस्थितियाँ भी एक जैसी नहीं होती । नूरी ने ज़रूर अभावों से लड़ने के लिए वेश्या बनने का रास्ता चुना लेकिन ऐसी असंख्य निर्दोष लड़कियाँ है जिनको तस्करी करके ज़बरन वेश्यावृत्ति के लिए मजबूर किया गया है । उन्हें जबरन उनकी मर्ज़ी के विरुद्ध देहव्यापार के दल-दल में धकेला जाता है । "छुकरी कभी अपनी इच्छा से नहीं आती है, चोरी से लाई जाती हैं और फिर किसी भी चकले में बेच दी जाती हैं । एक बार मोटी रक़म में उसको ख़रीद लेने पर, फिर हर रोज़ की कमाई मालकिन की पूरी अपनी । मालकिन को बस उसे खाना-कपड़ा भर देना पड़ता है ।"[20] छोटे क़स्बों और गाँवों से वेश्यावृत्ति के लिए अपहरण करके कोठों पर बेची गई नाबालिग लड़कियों का दोहरा शोषण होता है । यह शोषण कोठों की मालकिनों और दलालों द्वारा किया जाता है । एक तो ऐसी नाबालिग लड़कियों से उनकी मर्ज़ी के खिलाफ शारीरिक सम्बंध बनाये जाते है । क़ानूनी भाषा में कहूँ तो निर्दोष और नाबालिग लड़कियों के साथ बलात्कार किया जाता है दूसरा लड़कियों के पास आने वाले ग्राहक से मिलने वाली राशि पर चकले की मालकिन का हक होता है । वेश्याओं के शोषण का इतिहास बहुत लम्बा है । प्रत्येक चकलाघर भी अपने वजूद में इतिहास लिए हुए है और जिसमें अनगिनत वेश्याओं के जीवन की कहानियाँ हैं । कोई भी चकला इस तथ्य से अछूता नहीं है जिसमें अनगिनत स्त्रियों को

वेश्या ना बनाया गया । मीना का जीवन चकलाघरों के इतिहास की तस्दीक़ करता है । मीना का जीवन अभावों से भरा हुआ ज़रूर था लेकिन मीना ने कभी नहीं चाहा था कि वह ग़रीबी को दूर करने के लिए वेश्या बने । मीना ने ग़रीबी से उत्पन्न जीवन के अभावों को दूर करने के लिए चौका-बर्तन का काम शुरू किया लेकिन पुरुष जाति ने मीना से चौका-बर्तन का काम नहीं करवाया । उल्टा उसे वेश्या बनाकर चकलाघर में पहुँचा दिया । नलिनी की कहानी मीना से अलग है लेकिन उसका अंत वही है जो मीना की कहानी का है । "उन बाली उमरिया के दिनों मुझे लगता जैसे इससे ब्याह कर मैंने दुनिया पा ली है । ऐसी कुछेक मस्त और रंगीन रातें बीती न बीती कि वह उदास रहने लगा । मैंने पूछा तो एक रात वह ज़िंदगी का, ख़र्चे-पानी का रोना लेकर बैठ गया ।"[21] नलिनी को प्रेमी के छल ने वेश्या बनाया । उसे जब तक प्रेमी के प्रेम का पूरा खेल समझ आता तब तक बहुत देर हो चुकी थी । नलिनी को वेश्या बनाने के लिए वह पुरुष ज़िम्मेवार है जिस पर नलिनी ने सबसे अधिक विश्वास कर प्रेम को पाने के लिए घर परिवार को छोड़ा शादी रचाई । वह पुरुष और उसका झूठा प्रेम नलिनी को वेश्या बना देता है । नलिनी को छलकपट द्वारा वेश्या बनाया गया है । "तुम्हारे लिए ही तो वह सब कर रहा हूँ, वरना गाँव में मेरे पास क्या नहीं था, ख़ैर, तुझे मैं थोड़े दिन के लिए अपनी मामी के यहाँ छोड़ देता हूँ, बहुत ख़्याल रखेगी वह तेरा...'ठीक यही शब्द थे उस भौसड़ी के...के और वह मुझे बहुबाज़ार के किसी चकले में बेच गया ।"[22] प्रेमी के प्रेम पर भरोसा करना

नलिनी के जीवन की अहम भूल थी । कलकत्ता के बहुबाज़ार आदि रेडलाइट इलाक़ों में मीना और नलिनी जैसी अनेकों स्त्रियाँ हैं जिनको प्रेमियों ने प्यार के जाल में फँसाकर धोखे से वेश्या बनाया गया है । नलिनी के वेश्या बन जाने के बाद पहले से विध्यमान सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ और विकराल हो गई । नलिनी के जीवन में सुधार आने की बजाय उसे दूसरी स्वास्थ्यगत समस्याओं ने घेर लिया है । जिन जीवन के अभावों से मुक्ति पाने के लिए वेश्यावृत्ति को अपनाया था । वे अभाव नलिनी की चेतन अवस्था में अभी भी क्रियाशील है । अब भी नलिनी अपने भूतकाल से पीछा नहीं छुड़ा पाई है । "मेरे माँ-बाप दोनों खेती में काम करते थे । छह भाई-बहन हम लोग । आज भी देख सकती हूँ अम्मा को रोटियाँ गिनते हुए और हिसाब लगाते हुए । सारा दिन अम्मा का यही सोचते-सोचते बितता कि शाम किस प्रकार गुज़रेगी, सुखी या भूखी ।"[23]

उपन्यास की वेश्याओं के जीवन में चुनौतियाँ एक दूसरी वेश्या की तुलना में भले ही कम ज़्यादा हो लेकिन साधारण मनुष्य की तुलना में वेश्याओं के जीवन की चुनौतियाँ कई गुणा अधिक हैं । मीना का जीवन केवल शोषण और संघर्ष से भरा हुआ नहीं है बल्कि उपन्यास में हमें मीना का शोषित और शोषक रूप भी दिखाई देता है । मीना वेश्या के रूप में जिस संघर्ष और शोषण की शिकार है, वहीं मीना कोठे की मालकिन के रूप में ख़ुद शोषण की प्रतिरूप है । कोठे की मालकिन के रूप में मीना विशुद्ध रूप से उसी सामंती समाज का प्रतिनिधित्व कर रही होती है जिसने खुद मीना को

वेश्या बनाया था । उसी सामंती समाज की सोच को आगे बढ़ाते हुए मीना ने कई स्त्रियों को वेश्या बना डाला है । मीना केवल चकले की मालकीन ही नहीं है बल्कि रोद्र रूप वाली मालकीन कोठे की मालकिन है । ।"आज समझा दो इस पतुरिया को कि तैयार होके बैठे पार्टी ऑफ़िस में । मूसल सी एक ही जगह नहीं पड़ी रहे...नहीं हो तो तुम्हीं तैयार कर दो । अब और नहीं चलेंगे लौंडिया के नख़रे ।"[24]

हमारा समाज स्त्री की अभिलाषाओं और इच्छाओं को जीवन के आरम्भ में ही कुचल देता है । इसलिए स्त्री का जीवन कभी स्वाभाविक आकार ग्रहण नहीं कर पाता है । वेश्याओं को समाज से मिली प्रताड़ना के चलते बहुत सारी स्त्रियाँ इस क़दर तन और मन से टूट जाती हैं कि उनका जीवन दौबारा सामान्य पटरी पर लौट ही नहीं पाता । समाज और परिवार का तिरस्कार स्त्री के विकास में बड़ी बाधा बनता है । इसी घर परिवार के पालन-पोषण की ज़िम्मेवारी और समाज के अभिशाप और तिरस्कार की मार ने मन्नालाल एंड सुरेखा फ़र्म में काम करने वाली स्त्री को रेड लाइट इलाक़ों में पहुँचा दिया । "यूँ एकदम हठात भी नहीं, क़रीब तीन वर्ष पहले मेरी एक सहकर्मिणी थी, यही मन्नालाल एंड सुरेखा फ़र्म में, एकाएक उसकी छटनी हो गई थी, पति की रोड ऐक्सिडेंट में पहले ही मृत्यु हो चुकी थी दो छोटी-छोटी बच्चियाँ और एक बूढ़ी सास थी । मैंने बाद में किसी से सुना था कि किसी परिचित के द्वारा वह इन गलियों में देखी गई थी । शायद

लास्ट लाइन-ऑफ़ डिफ़ेंस के रूप में उसने वही शॉर्टकट रास्ता अपना लिया था ।"[25]

कामुक समाज स्त्री की विवशता को अपनी कामुकता को शांत करने के अवसर में तब्दील कर लेता है । स्त्री को उपभोग की वस्तु समझने वाला समाज स्त्री को अपने चंगुल में फ़साने के लिए ऐसा ताना-बाना बुनता है जिसमें वह स्त्री को वेश्यावृत्ति के दल में धकेल कर ही चैन लेता है । यह कोई नया सत्य नहीं है बल्कि सदियों से अलग-अलग रूपों में पुरुष स्त्री के लिए ऐसे ही विकल्पों की निर्मिती करता आया है । पितृसत्तात्मक समाज सदियों से देहव्यापार को जीवनयापन के लिए अंतिम विकल्प के रूप में स्थापित करता आ रहा है । आज स्थिति पहले से भी अधिक भयावह हो गई है । घुटन और सामाजिक तिरस्कार भरा जीवन जीने वाली वेश्याओं की संख्या कम होने की बजाए दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है । प्रगतिशील समाज वेश्यावृत्ति पर पाबंदी लगाने की जगह उसे नये-नये नाम देकर बढ़ावा ही दे रहा है । आज के दौर में कालगर्ल वेश्यावृत्ति का ऐसा ही आधुनिक नाम है । नये-नये नामों के साथ नये-नये इलाक़ों में वेश्यावृत्ति दिन-प्रति-दिन पैर पसार रही है । "आजकल तो काफ़ी दूर तक फैल गए हैं ये इलाक़े । पहले तो इक्की-दुक्की खड़ी रहती थी, वो भी शाम परे, पर आजकल तो भरी दुपहरी में झुण्ड का झुंड खड़ा रहता है ।"[26]

उपन्यास चकलाघरों और वेश्याओं की बढ़ती आबादी को लेकर समाज व सरकार से सवाल करता है । समाज में वेश्यावृत्ति की समस्या दिन-प्रति-

दिन विकराल होती जा रही है । पितृसत्तात्मक समाज के लिए वेश्यावृत्ति कामवासनाएं डम्प करने का गटर बना रखा है । समाज अपनी कामवासनाओं का ठीकरा वेश्याओं के सिर पर फोड़ता है । यह पुरुष की चालबाज़ियों का परिणाम है कि वेश्यावृत्ति के लिए स्वयं को दोषी ना बताकर वेश्याओं को कटघरे में खड़ा करता है । पितृसत्तात्मक समाज चिट और पट दोनों अपनी रखना चाहता है । लेखिका पुरुष की चालबाज़ियों को उजागर करते हुए लिखती है, "अपनी दुष्कामनाओं के बेग को नहीं संभाल पाना और उसके लिए ऐसे विकल्प ढूँढना जिसकी नीव दूसरों की बर्बादी हो, संस्कृति नहीं विकृति है ।"[27]

हमें उपन्यास में वेश्यावृत्ति का दूसरा पहलू भी दिखाई देता है । जिसमें लड़कियों को वेश्यावृत्ति के दल-दल में केवल पुरुष ही नहीं धकेलता अपितु एक स्त्री भी दूसरी औरत को वेश्या बनाती हुई दिखाई देती है । लेकिन उपन्यास में गायत्री जैसी वेश्याएं वर्षों की शारीरिक और मानसिक यंत्रणा झेलने के बाद भी सही और ग़लत का विवेक बचा हुआ है । वर्षों के उत्पीड़न के बाद गायत्री बारह वर्षीय लड़की को वेश्यावृत्ति के दलदल से बचाकर अपना सामाजिक फ़र्ज़ अदा करती है । "उसने एक मासूम बारह वर्षीय बालिका को एक साथी वेश्या के चंगुल से ज़बरन वेश्या होने से बचा लिया था ।"[28] गायत्री जैसा विवेक व ऐसी सोच बहुत कम वेश्याओं में मिलती हैं । ऐसी सोच के अभाव में ही नाबालिग़ लड़कियों को ज़बरन दलालों द्वारा

वेश्यालयों में बेचा जा रहा है । कोठों पर नाबालिग बच्चियों को बचाने वाला कोई नहीं है इसलिए बाल वेश्यावृत्ति का धंधा ख़ूब फल फूल रहा है । गायत्री ने अपनी जान पर खेलकर एक नाबालिग को वेश्या होने से बचा लिया । परंतु यह गायत्री की सोच और समझ से बड़े स्तर का खेल है । जिसको गायत्री अपने बलबूते अकेले नहीं रोक सकती है । गायत्री ने जो साहसिक कार्य किया ऐसे कार्यों के लिए कई वेश्याएँ को जान तक से हाथ धोना पड़ता है । गायत्री कोई साधारण वेश्या नहीं है, ना ही उसे किसी ने बलात् वेश्या बनाया है । गायत्री के वेश्या बनने के पीछे उसके पति की अहम भूमिका है । गायत्री को वेश्या बनाने के लिए परिस्थितियों से अधिक उसका पति ज़िम्मेवार है । पति ने परिवार की ज़िम्मेदारियों से पल्ला झाड़ कर गायत्री को ऐसे घिनौने कार्य के लिए मजबूर किया है । "मैं जिस गाँव से आती हूँ वहाँ सब जानते है कि पति ने मुझे छोड़ दिया है, फिर भी यदि मैं सिंदूर नहीं लगाऊँगी तो मुझे बदचलन समझेंगे, फ़ब्तियाँ कसकर जीना हराम कर देंगे ।...मेरी सास भी मुझसे सम्बंध तोड़ लेगी ।"[29]

अपने जीवन और आत्मसम्मान को दाव पर लगाकर परिवार को भूख और ज़िल्लत से बचाने वाली स्त्री को समाज भी तभी सम्मान देता है, जब वह किसी की पत्नी हो, किसी का सिंदूर उसके माथे पर लगा हो । पितृसत्ता के विधान में पति पत्नी को जब चाहे छोड़ सकता है, लेकिन स्त्री की पहचान के पुरुष से ही होती है । स्त्री की सामाजिक स्वीकार्यता भी तब तक ही है जब तक उसके माथे पर किसी पुरुष के नाम का सिंदूर लगा

हुआ होता है । अगर स्त्री पितृसत्ता के प्रतिमानों को त्यागकर स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है तो वह समाज में विद्रोही करार कर दी जाती है । "भारत की आत्मा, ये ग्रामीण स्त्रियाँ और भारत के ये गाँव जहाँ आज भी स्त्री का आकलन उसकी जुझारू प्रवृति उसकी कर्मठता, श्रम और परिवार के लिए किए गए उसके त्याग के आधार पर नहीं होकर उसके सतीत्व के आधार पर ही होता है ।"[30] सदियों से लिंग के आधार पर स्त्री का शोषण हो रहा है । स्त्री के शोषण की पहली इकाई घर है तथा शोषण का दूसरा स्थान समाज है । घर, परिवार और समाज को छोड़कर भी स्त्री शोषण से मुक्त नहीं हो सकती है । गायत्री का जीवन इसका साक्षात उदाहरण है । वह ना समाज की नज़र में स्वतंत्र है और ना ही परिवार की ज़िम्मेदारियों से मुक्त है । उपन्यास की पात्र गायत्री एक फ़्लाईग वेश्या है । जो अपना गृहस्थ जीवन चलाने के लिए कमरा किराये पर लेकर देहव्यापार कर रही है । ऐसी वेश्याओं के सामने भी कम चुनौतियाँ नहीं है । अपने हक़ के लिए वेश्याओं को मनचले ग्राहकों के साथ लड़ाई लड़नी पड़ती है ।, "असल बाप का है तो पैसा मारकर दिखा दे यहाँ से अपना गूदा निकलवा के ही जाएगा ।"[31] यह वेश्याओं के रोज़मर्रा के जीवन का संघर्ष है । हर दिन एक ना एक ग्राहक ऐसा आता ही है जो काम होने के बाद पैसों के लिए आनाकानी करता है । ऐसे पुरुषों से पेश आते हुए गायत्री जैसी वेशाओं को समाज की बनाई हुई सभ्य असभ्य की परिधि को तोड़ना पड़ता है । चकलाघरों की वेश्याओं का असभ्य होना पुरुषों से पैसे निकलवाने का शस्त्र का काम करता है ।,

“यहाँ आकर बिना पैसे दिए सही-सलामत चला जाए कोई ग्राहक...किसी के बाप की ऐसी ताक़त नहीं, कटवा के ही जा पाए तो जा पाए ।”[32]

मानव समाज जैसे-जैसे आधुनिकता की ओर कदम बढ़ा रहा है । वह उतना ही मानवीय मूल्यों के रूप में गिरता जा रहा है । कहाँ तो औद्योगिक विकास से समाज में व्याप्त ग़ैर-बराबरी को मिटा कर मानव जीवन को सुगम और सरल बनाने का सपना था और कहाँ हम आज औद्योगिक विकास द्वारा पैदा की ग़ैर-बराबरी की खाई को मिटाने के लिए नीतियाँ बना रहे हैं । एक ओर औद्योगिक विकास से पैदा हुए अतिपूंजीवाद ने इंसान को मूलभूत सुविधाओं के लिए तरसा दिया है । वहीं दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों पर क़ब्ज़ा करने होड़ मच गई है । जिस औद्योगिक विकास की बदौलत हम समाज के सभ्य और विकसित होने की कल्पना कर रहे थे वह समाज आज अपनी प्रकृति में उतना ही असभ्य हो गया है । औद्योगिक विकास की देन अनियोजित विकास ने स्त्री को शरीर तक बेचने को मजबूर कर दिया । सलाम आख़िरी ग़रीबी और बेरोज़गारी को समाज में बढ़ती वेश्यावृत्ति और वेश्याओं की बढ़ती संख्या को एक कारण मानता है । “ज्यों-ज्यों महँगाई बढ़ती बढ़ती जा रही है, लाइनवालियाँ बढ़ती जा रही हैं । ग्राहक भी उतने नहीं मिलते, आमदनी भी अब वैसी नहीं रही, पैसा देते फटती है सालो की तो मन मारकर जो वे दे दें कई बार उसी में राज़ी हो जाना पड़ता है।”[33]

यह सच है कि बेरोज़गारी और ग़रीबी के चलते समाज में वेश्याओं की संख्या बढ़ी है, इस ग़रीबी और बेरोज़गारी का कोठों पर आने वाले ग्राहकों और वेश्याओं दोनों पर नकारामक प्रभाव पड़ा है । वेश्याओं के जीवन में आर्थिक अभाव जीवन की अन्य समस्याओं का कारण बन जाता है । वेश्याओं के जीवन की लाचारी ग्राहक की मनमानी के आगे बेबस बनाती है । ग्राहक की मनमर्ज़ी के समक्ष वेश्याओं का समर्पण आर्थिक रूप से घाटे का सौदा तो होता ही है, साथ ही ऐसे मनचले ग्राहकों के साथ बिना किसी यौन सुरक्षा उपकरणों के शारीरिक सम्बंध बनाना आगे चलकर वेश्याओं के गर्भधारण और स्वास्थ्य सम्बंधी बीमारियों का कारण बनता है । जो वेश्याओं के जीवन में नई चुनौतियों को जन्म देता है । ऐसी स्थिति में वेश्याओं को अपनी ज़िम्मेवारियों के साथ-साथ अनचाही संतान का भार उठाना पड़ता है । “हम बिना कंडोम के ग्राहक के पास नहीं जाए...पर मैडम कुत्ता जाति ग्राहकों की-कई बार साफ़ मना कर देते हैं, इसका उपयोग करना नहीं चाहते, मज़े में खलल पड़ जाता है इनके । हम भी जब पूरे दिन खड़े-खड़े कमर अकड़ जाती है, शरीर का जोड़-जोड़ जब दुखने लगता है और कोई ग्राहक नहीं पटता है तो इस पर भी राज़ी हो जाती है कि कम से कम दिन पूरा तो फाँका नहीं जाए...आने-जाने का ख़र्चा तो निकले ।”[34] असुरक्षित यौन सम्बन्धों से पैदा हुए बच्चों की देखरेख का जिम्मा वेश्याओं के हिस्से में ही आता है । सलाम आख़िरी की गायत्री एक ऐसी ही वेश्या है जिसको पति ने पाँच वर्ष पूर्व छोड़ दिया था । विडम्बना यह है कि गायत्री को

मालूम भी नहीं है कि उसके बच्चे का असली बाप कौन है? "यह बच्चा किसी ग्राहक का ही है, किंतु बोल नहीं सकती है वह बच्चा किसका है...आमि बूझते पेलामना पाई (मैं समझ नहीं पाई)।"[35]

सलाम आख़िरी की वेश्याओं को बच्चों के पालन-पोषण से लेकर परिवार की देखरेख के लिए पूरी तरह ग्राहकों पर निर्भर हैं । इन्हीं ग्राहकों के आने से वेश्याओं के पास कमरे के किराये और भाड़े का बंदोबस्त हो पाता है । महंगाई और मकान मालिकों के मनमाने किराये के चलते एक ही कमरे को दो-दो वेश्याएं मिलकर किराये पर लेती है । एक मकान को दोनों मौखिक समझौते से बारी-बारी से मिल बाँटकर इस्तेमाल करती हैं । लेकिन कई बात स्थिति जटिल भी हो जाती है और एक ही समय में दोनों वेश्याओं के पास दो अलग-अलग ग्राहक आ जाते हैं ऐसी स्थिति में वेश्याओं को कमरे के बीच में पर्दा लगाकर काम चलाना पड़ता है । "हमारे लिए यह सब ऐसा ही है जैसा कि सरकारी अस्पतालों में आपने देखा होगा, आसपास दो डाक्टर और बीच में लकड़ी का पार्टीशन । फ़र्क़ यही कि यहाँ डाक्टर नहीं हम वेश्याएँ रहती हैं और बाहर लाइन में खड़े रहते हैं सेक्स रोगी । कई बार ऐसा भी होता है कि लाइनवाली भीतर है और उसी का दूसरा ग्राहक आ गया है तो वह बाहर खड़ा धैर्य के साथ अपनी बारी का इंतज़ार करता रहता है ।"[36] पुरुष अपनी आदत से लाचार होता है । वह अमानवीय परिवेश में वेश्याओं से प्रेम की अपेक्षा करता है । कई पुरुष वेश्याओं से प्रेमिका और पत्नी की तरह पेश आने की उम्मीद करते हैं । वेश्याओं के

लिए झूठे प्रेम नाटक ना करना पुरुषों को अखरता है । "दरअसल साले ख़ुद कितने भी गिरें क्यों न हो, जगह-जगह की झूठन चाटे हुए हो पर चाहेंगे कि लड़की मिले तो कुँवारी कन्या या फिर सती-सावित्री । साले वेश्याओं तक से उम्मीद रखते हैं कि हम उन क्षणों में लजाएँ । उनके पुरुषार्थ का लोहा मान ले । साले पूरे के पूरे गधे होते हैं भैन...कइयों को अच्छा लगता है-हमारा चीख़ना, सिसकारी भरना, नोचना...अरे मैडम पूरी अजायबघर है यह दुनिया ।"[37]

यूँ तो चकलाघरों में आने वाले ग्राहक सिर्फ़ देहकर्म के लिए ही आते है । लेकिन कई ग्राहकों को वेश्याओं से प्रेम भी हो जाता हैं । परंतु चकलाघरों की वेश्याओं को किसी ग्राहक से प्यार करने की आज़ादी और अनुमति नहीं होती है । कोठे की मालकिन सिर्फ़ कोठे की मालकिन नहीं होती है बल्कि कोठों पर रहने वाली वेश्याओं के इच्छाओं की भी मालकिन होती है । मालकीन की ओर से वेश्याओं को शारीरिक सम्बन्ध बनाने के सिवा अन्य किसी प्रकार की आज़ादी नहीं होती है । कोठों पर रहने वाली वेश्याओं पर मालकिन और दलालों का तन और मन पर पूरा नियंत्रण रहता है । ऐसी वेश्याएँ जो कोठे की मालकीनों के अधीन रहती हैं उन वेश्याओं को अपनी पसंद के पुरुष से प्रेम करने, अपनी पसंद का ग्राहक चुनने और शोषण की दुनिया से आज़ाद होने की चाह जीवनभर अधूरी ही रहती है । वेश्याओं को ग़ुलाम बनाने की ख़ातिर दलालों और चकलों की मालकीनों ने मिलकर ऐसा चक्रव्यूह बनाया हुआ है जिसको स्त्री चाहकर भी तोड़ नहीं सकती है । जो

स्त्री एक बार दलालों के चक्रव्यूह में फँस जाती है उसका बाहर निकलना असम्भव होता है । यह ऐसा चक्रव्यूह है जिसके आगे वेश्याओं को भविष्य के सपने दिखने वाले प्रेमी भी समर्पण कर देते हैं । "एक तो बहादुर प्रेमी मिल भी गया था, हिम्मत करके भगाकर भी ले गया तो उसकी कटरे की मालकिन दलाल के साथ पहुँच गई, धमकी दी उस मजनूँ को कि-तू या तो लौटा दे मेरी छोकरी नहीं तो अपनी बहन को देखेगा तू इसकी भरपाई करते...वेश्या हूँ और कईयों को बना चुकी हूँ...। बहन की ख़ैरियत चाहता है तो लौटा दे मेरी मेरी कबूतरी को...बस, बहन का नाम सुनते ही सारी प्रेम हवा निकल गई, दूसरे दिन ही लौटा गया...।"[38]

वेश्याओं का समान में कोई मान-सम्मान नहीं होता ना ही वेश्याओं को समाज में सामाजिक स्वीकार्यता मिलती है । हमारे समाज का बर्ताव वेश्यागामी पुरुष और वेश्या के साथ एक जैसा नहीं होता । समाज अपनी संकीर्ण मानसिकता के चलते वेश्यागामी पुरुष के साथ तो सलिके से पेश आता है । लेकिन वेश्या के साथ यही समाज दोहरा व्यवहार करता है । समाज का यही दोगला व्यवहार पति द्वारा परित्यक्त स्त्री के प्रति दिखाई देता है । स्त्री विरोधी मानसिकता से ग्रस्त समाज स्त्री द्वारा घर परिवार को बचाये रखने के लिए किए गये त्याग, बलिदान तथा परिश्रम को भी मान्यता नहीं देता है । सलाम आख़िरी में गायत्री एक ऐसी ही गृहिणी वेश्या है जिसको पति ने अपने हाल पर छोड़ दिया है । लेकिन गायत्री ने मुश्किल परिस्थिति में अपने परिवार का केवल साथ हाई नहीं दिया बल्कि

उसने जीवन की मुश्किल परिस्थितियों से लड़ते हुए परिवार का भरण-पोषण व बाल-बच्चों की देख रेख का बोझ अपने कंधो पर उठाया । “अपने दोनों बच्चों को तो मैं अपनी सास के पास छोड़कर आती हूँ । स्वामी चला गया, पर सास मेरे साथ ही रहती है भोर चार बजे उठकर, सब खाना बनाकर, घर सफ़ाई कर, खाने को ढाँक-मूँदकर दस बजे वाली लोकल में बैठकर क़रीब साढ़े ग्यारह बजे तक मैं यहाँ पहुँच जाती हूँ...।”[39] समाज में परिवार की देखभाल की ज़िम्मेवारी स्त्री के हिस्से में होती है । हर स्थिति में स्त्री को परिवार की देख-रेख ही करनी होती है ।

वेश्याओं का असुरक्षित यौन-सम्बंध के कारण गर्भवती हो जाना जीवन में नई समस्याओं और नई चुनौतियों को जन्म देता है । एक तो असुरक्षित यौन-सम्बंधों से उपज्जी लाईलाज बीमारियों का समय पर पता ना लगाना दूसरा समय पर उचित उपचार ना मिलना वेश्याओं की असमय मृत्यु का कारण भी बन जाता है । यहीं नहीं कई बार तो असुरक्षित यौन-सम्बंध बनाने के चलते अधिकतर वेश्याएँ गर्भवती भी हो जाती हैं । हमारे आधुनिक कहे जाने वाले समाज में तमाम तरह की सुख-सुविधाओं से लैस होने के उपरांत भी भ्रूण की गर्भ में हत्या हो रही है । अंधाधुँध भागदौड़ में आधुनिक समाज की नवविवाहित पीढ़ी बच्चे का लिंग और जन्म का समय निर्धारित कर समाज में लिंगानुपात को असंतुलित कर रहा है । भ्रूण हत्या ने समाज में इतना विकराल रूप धारण कर लिया है कि भ्रूण को बचाने और गर्भ में हत्या को रोकने के लिए सरकार ने कानून बनाकर अपराध घोषित करना

पड़ा । लेकिन फिर भी समस्या में कोई सुधार नहीं हुआ है । दूसरी ओर समाज द्वारा वेश्या बना दी गई ऐसी स्त्रियाँ हैं जो मातृत्व के चलते अनचाहे बच्चे के जन्म की चुनौतियों को स्वीकार किया है । ये वो वेश्याओं हैं जिनके जीवन में मूलभूत सुविधाओं का अभाव ज़रूर है लेकिन मातृत्व में कोई कमी नहीं है, "हिम्मत कर दबी ज़ुबान में पूछा सुकीर्ति ने "तुमने गर्भपात क्यों नहीं करवा लिया ?"

"नहीं मन नहीं हुआ । सबैई तो एक रक़म होते पारी ना (सब तो एक जैसी नहीं हो जाती) मजबूरी में वेश्या बना दिया तो क्या यह सब भी करूँ । माँ दुर्गा की कृपा हुई तो जहाँ दो पल रहें हैं, तीसरा भी पल जाएगा लेकिन अब और नहीं, ईश्वर से मनाती हूँ कि अब बाँझ बना दे ।"[40]

एक स्त्री के लिए मातृत्व का सुख सबसे बड़ा सुख होता है । उस सुख की प्राप्ति की ख़ातिर स्त्री अनगिनत असहनीय पीड़ाओं से गुज़रती है । लेकिन वेश्याओं के केस में मातृत्व का सुख साधारण स्त्री की पीड़ा की तुलना में अधिक कष्टकारी होता है । वेश्याओं की तुलना में साधारण गर्भवती स्त्री के पास चिकित्सा सुविधाओं का होना प्रसूति को कम कष्टकारी कर देता है, वहीं वेश्याओं के यहाँ सुविधाओं के अभाव में प्रसूति मृत्यु तक का कारण बन जाती है । वेश्याओं को पुरुष की कामुकता के चलते असुरक्षित यौनसम्बन्धों के बाद आने वाली चुनौतियों से अकेले ही लड़ना पड़ता है । इसलिए एक वेश्या के लिए गर्भवती होना और बच्चे को जन्म देना आसान कार्य नहीं होता है । उपन्यास की पात्र पिंकी के सामने विकट संकट है ।

वह अनचाहे गर्भ को जन्म देने और जीवन के आधार वेश्यावृत्ति के बीच में किसका चुनाव करे ? सामान्यतय वेश्याओं के लिए गर्भपात करवाना और गर्भधारण करना दोनों ही स्थितियाँ कष्टकारी होती है । एक ओर वेश्याओं के पास अच्छी चिकित्सा सुविधाओं का अभाव होता है । दूसरी ओर पुलिस और आर्थिक तंगी वेश्याओं को लाईलाज रहने को मजबूर करती है । वेश्याओं को आर्थिक तंगी में पुलिस की क़ानूनी कार्यवाही से बचने के लिए अवैध रूप से चल रहे "ऑपरेशन-कम विज़िटिंग रूम-कम-रेस्ट रूम ।"[41] क्लीनिकों से ही काम चलाना पड़ता है । वेश्याओं के गर्भपात के लिए उपलब्ध काम चलाऊ क्लीनिकों का विवरण देते हुए लेखिका लिखती हैं, "सौ स्कवायर फ़ीट का एक बेड का एक गंदा सा कमरा था, जिसके बीचोबीच एक मैला सा पर्दा टँगा हुआ था । पूरे कमरे को दो भागों में विभाजित करता । पर्दे के एक भाग में एक बेड था जिस पर फुलालेन की एक गंदी सी चादर थी, चद्दर के ऊपर प्लास्टिक का मोमजामा । उसके पास ही एक सोखनेवाली मशीन और एक स्टायरप्स । ऊपर कुछ बल्ब, हाई वोल्टेज के । नल बिना के । हाथ वग़ैरह धोने के लिए बर्तनों में भरा पानी । एक खुले कंटेनर में ऑपरेशन से सम्बंधित कुछ उपकरण थे । यही था उस कमरे का ओ.टी. । पर्दे का दूसरा भाग आगन्तुकों के लिए । एक लकड़ी की बेंच ।"[42] उपन्यास में वर्णित सामाजिक परिवेश में वेश्याओं के लिए मूलभूत स्वास्थ्य सुविधाओं का उपलब्ध ना होना राज्य की कल्याणकारी नीतियों पर सवाल खड़ा करता है । स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता के

ना होने का ही परिणाम है कि वेश्याओं को गर्भपात आदि के लिए ऑपरेशन के लिए नौसीखिये डाक्टरों पर निर्भर होना पड़ता है । अधिकतर समय ये नौसीखिये डाक्टर अक्सर वेश्याओं की मृत्यु का कारण बन जाते है । उपन्यास में यही आधा-अधूरा ईलाज पिंकी की मृत्यु का कारण बन जाता है । वेश्याओं के प्रति राज्य की अनदेखी से ज्ञात होता है कि राज्य की कल्याणकारी नीतियों में वेश्याओं के लिए कोई स्थान नहीं है । राज्य की स्वास्थ्य सुविधाओं में वेश्याओं से उसी प्रकार भेदभाव होता है जिस प्रकार समाज में वेश्याओं के साथ भेदभाव होता है । वेश्याएँ राज्य के विधान में नागरिक होने का दर्जा और समाज में इंसान के रूप में स्वीकृति की लड़ाई लड़ रही हैं । केवल वेश्याएँ ही नहीं समाज में स्त्री सदियों से सामाजिक और राजनीतिक बराबरी का अधिकार पाने की लड़ाई लड़ रही है । हम कह सकते हैं कि जब समाज में एक स्त्री का जीवन चुनौतियों से भरा हुआ हो उस समाज में वेश्याओं की स्थिति अच्छी कैसे हो सकती है । वेश्याओं को लेकर हमें समाज व राज्य की कथनी और करनी भी साफ़ दिखाई देती है । एक ओर समाज वेश्यावृत्ति को दुराचार से मुक्ति के लिए ज़रूरी बता रहा है वहीं राज्य का विधान उसे अपराध मानता है । समाज वेश्याओं की उपस्थिति को अपनी ज़रूरतों और मान्यताओं के तौर तरीक़ों के हिसाब से स्वीकार्यता देता है । लेकिन वेश्याओं के सामाजिक अधिकारों के सवाल पर चुप्पी साध लेता है । यह वही समाज है जो वेश्याओं के संघर्ष भरे जीवन से प्रेरणा लेने की बात करता है लेकिन वेश्याओं के ऊपर हो रहे अन्याय

और अत्याचार को रोकने के लिए क़ानूनी प्रावधानों की वकालत नहीं करता है । स्त्री को लेकर समाज की सोच हमेशा विरोधाभाषी रही है । समाज ने एक ओर स्त्री के अधिकारों को सीमित किया वहीं दूसरी ओर धार्मिक ग्रंथों और सामाजिक रूढ़ियों का निर्माण कर स्त्री को परित्यकता, देवी का काल्पनिक दर्जा दिया । लेखिका स्त्री को सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों से वंचित करने वाले विधानों और अनुष्ठानों का अवलोकन करते हुए सलाम आख़िरी में लिखती है, "पश्चिम बंगाल में सालों से एक प्रथा चली आ रही है, वह यह कि यहाँ के सुप्रसिद्ध त्योहारों, दुर्गापूजा, धात्री पूजा, काली पूजा (दुर्गा के सभी रूप) आदि अवसरों पर जब भी देवी प्रतिमा गढ़ी जाती है तो उसके लिए जिस चिकनी माटी की ज़रूरत पड़ती है, वह मिट्टी सबसे पहली बार किसी वेश्या के घर से माँग कर लाई जाती है ।"[43] समाज में सदियों से चली आ रही इस परंपरा के पीछे धार्मिक मान्यताओं का हवाला दिया जाता है । यह ऐसी परंपरा है जिसमें निहितार्थ तथ्य को वेश्या हितैषी बताया जाता है । इस प्रथा के माध्यम से वेश्या को भी एक दिन के लिए समाज के अभिन्न अंग के रूप में सामाजिक स्वीकार्यता दी जाती है । सामाजिक अध्ययन की दृष्टि से देखा जाए तो एक प्रकार से यह परंपरा समाज की दोहरी नीति और नियत की परिचायक है । वेश्या को एक दिन के लिए सामाजिक स्वीकार्यता देने वाला समाज ही उसे वेश्या बनने के लिए मजबूर करता है । जब वह चारों तरफ़ से असहाय होकर विपदाओं से जूझ रही होती है तो समाज की बाक़ी स्त्रियों को उससे प्रेरणा

लेने की बात समझाता है । यही वह समाज जो प्रेरणा की प्रतिमूर्ति को वेश्यावृत्ति के लिए समाज की मुख्यधारा से निष्कासित करता है । यही हमारे समाज का दोहरा चरित्र है । जो अपनी सहुलियत और ज़रूरतों के मुताबिक़ वेश्याओं के बारें में मत निर्धारित करता है ।

सलाम आख़िरी उपन्यास पुरुष समाज की भोग-विलासी प्रवृति और समाज को सचरित्र बनाए रखने के लिए वेश्याओं की उपस्थिति को अनिवार्य बताये जाने वाले पुरुष के भोगवादी तर्क को को कटघरे में खड़ा करता है । पुरुष समाज का तर्क है कि अगर समाज में वेशाएँ नहीं होंगी तो समाज में अपराध दुराचार फैल जायेगा । समाज को दुराचार से बचाने की दुहाई के नाम पर सदियों से स्त्री की अस्मिता के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है । पुरुष अपनी काम कुंठाओं नियंत्रण में ना रखकर स्त्री को समाज में फैलने वाले दुराचार के लिए ज़िम्मेदार मानता है । इस भोग-विलासी समाज ने खुद को सचरित्र बनाए रखने की ख़ातिर असंख्य स्त्रियों को ज़िल्लत और गंदगी भरे नरक में धकेला है । समाज को तथाकथित रूप से इज़्ज़तदार और सचरित्र बनाए रखने के नाम पर स्त्री की इच्छाओं और आकांक्षाओं का गला-घोटा गया है । केवल स्त्री की इच्छाओं और आकांक्षाओं का दमन ही नहीं किया गया बल्कि समाज के विकास में स्त्री के सहयोग और बलिदान को भी सदैव अनदेखा किया गया है । बड़ी चालाकी से सामंती समाज ने एक स्त्री को वेश्या बनाने के लिए अपने विधानों और परम्पराओं को ज़िम्मेदार ना मानकर स्त्री के कर्म और नियति को ही उसके लिए

उतरदायी बताया है । समाज ने कभी खुद से उन परिस्थितियों, मानकों और परंपराओं का विश्लेषण ही नहीं किया है जो एक स्त्री को वेश्या बनाने के लिए उतरदायी हैं । ना कभी समाज ने उन रूढ़ियों को दोष दिया जिन्होंने स्त्री के ऊपर बंधन लगाकर उसके मानसिक व सामाजिक विकास को अवरुद्ध किया है । यह केवल संयोग नहीं है कि जहाँ सामाजिक विधान स्त्री को वेश्या बनने के लिए विवश कर उसके चरित्र का चीरहरण करते हैं, वहाँ क़ानून स्त्री को शोषण और उत्पीड़न से बचाने की बजाए शोषण में भागीदार नज़र आता है । जब समाज द्वारा स्त्री के अधिकारों पर वार कर उसको लाचार बनाने की कोशिश की जाती है । तब क़ानून उस (स्त्री) की रक्षा के बजाए स्त्री की लाचारी और बेबसी का जुर्माना वसूलने के क्रम में अग्रिम पंक्ति में खड़ा नज़र आता है । सलाम आख़िरी में समाज और न्यायव्यवस्था की मिलीभगत को उजागर करते हुआ लेखिका लिखती हैं, "उस दिन सुबह ग्यारह बजे गायत्री को कई वेश्याओं के साथ पुलिस पकड़कर ले गई थी । दिन-भर थाने में बिठाकर, 70 रुपये जुर्माने के लेकर अब पाँच बजे छोड़ा था पुलिस ने उसे ।"[44] वेश्याओं के साथ भेदभाव में क़ानून और समाज के व्यवहार में कोई फ़र्क़ नहीं है । यह भेदभाव हम रेडलाइट इलाक़ों में रेड मारते वक्त और चकलाघरों से वेश्याओं की गिरफ़्तारी के समय में देख सकते हैं । दलाओं और पुलिस की मिलीभगत के चलते पुलिस के काम करने के तौर तरीक़े वेश्याओं को प्रताड़ित करने वाले होते हैं । समाज और व्यवस्था से उत्पीड़ित वेश्या का समाज और सत्ता से एक ही सवाल

है, "यदि हम पाप कर रही हैं तो जो यहाँ आते हैं, क्यों नहीं पकड़ती पुलिस उन्हें, क्या वे पापी नहीं ?"[45]

वेश्याएँ अपनी स्थिति के प्रति सजग हैं । उपन्यास की गायत्री का सवाल उसकी उत्पीड़न के प्रति सजगता का प्रमाण है । गायत्री का सवाल समाज के साथ राज्य की क़ानून व्यवस्था को भी कटघरे में खड़ा करता है । जो क़ानून सभी नागरिकों को एक-समान मानता है और समान अपराध के लिए एक जैसी ही सज़ा का प्रावधान करता है । ऐसी क़ानून व्यवस्था भी वेश्याओं को न्याय देते वक्त चुप्पी साध लेती है । वेश्याओं के साथ होने वाले अपराध में अपराधी की सामाजिक और आर्थिक पृष्टभूमि के आधार पर सज़ा का प्रावधान न्यायव्यवस्था की भेदभावपूर्ण मंशा को प्रदर्शित करता है । पुलिस और समाज का उत्पीड़न, घर और परिवार के बहिष्कार की कहानी को सलाम आख़िरी की वेश्याओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है । सलाम आख़िरी में अभिव्यक्त वेश्याओं के जीवन का सच है ही वास्तविक जीवन में वेश्याओं के जीवन की कहानी कहता है । वेश्याओं के साथ किए जाने वाले बर्ताव में समाज क्रूरता की सारी हदें पार कर जाता है । यही समाज किसी स्त्री द्वारा वेश्यावृत्ति अपनाने की परिस्थितियों का अवलोकन किये बिना ही (स्त्री) चरित्र का प्रमाण-पत्र दे देता है । इसे स्त्री जीवन का दुर्भाग्य ही कहेंगे कि समाज स्त्री की मनस्थिति को समझे बिना ही उसे वेश्यावृत्ति के लिए उतरदायी ठहरा देता है । हमें यह समझना होगा कि एक स्त्री के जीवन में जब सारे रास्ते बंद हो जाते है, तब जाकर कहीं

कोई स्त्री वेश्यावृत्ति अपनाती है । वेश्यावृत्ति के लिए स्त्री को दोषी बताने वाला समाज विपदा के समय में उस स्त्री की किसी प्रकार से मदद नहीं करता है । ऐसी परिस्थितियों में फँसी हुई स्त्री कुछ अलग करना भी चाहती है तो समाज उसके काम को स्वीकार नहीं करता है । उपन्यास की गायत्री पति और समाज दोनों द्वारा अपने हाल पर छोड़ दी गई ऐसी ही गृहणी है ।"दो-दो मासूम बच्चों, शराबी नकारा पति, वृद्ध सास और हर पल ख़तरे की घंटी बजाते अस्तित्व के बीच किन्ही काले, कमज़ोर क्षणों में अपनी जीवन रेखा को मिटाने से बचाने के लिए अपनाई गई वेश्यावृत्ति क्या पाप है ? या मातृत्व का कोई उच्चतम सोपान ?
बिना राग, कामना और वासना के किया सम्भोग क्या व्यभिचार है ?"[46]

सलाम आख़री की वेश्याओं के सामने एक आम गृहणी की भाँति अपने बच्चों के भविष्य का सवाल है । यह बच्चों के भविष्य का सवाल वेश्याओं की वर्तमान की चिंता को बढ़ाता है । वैसे वेश्याओं के बच्चों का भविष्य ही नहीं अपितु वर्तमान भी उतनी ही चुनौतियों से भरा हुआ है । उपन्यास में वर्णित वेश्याओं की स्थिति को देखकर यही लगता है कि अच्छा पौष्टिक आहार, साफ़-सुथरा वातावरण, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी चीजें तो वेश्याओं के बच्चों के लिए बनी ही नहीं हैं । वेश्याओं के बच्चों के जीवन भी सुरक्षित नहीं है । दलाल से लेकर ग्राहकों तक की नज़र वेश्याओं की लड़कियों पर होती है । यह माना भी जाता है कि वेश्या की लड़की को बड़ी

होकर वेश्या और लड़के को गली का दलाल ही बनना है । समाज की इसी धारण और प्रयासों के चलते चकलाघरों में पैदा होने वाली लड़कियों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी वेश्या बनाया जाता है । ऐसे में वेश्याओं के सामने अपनी लड़कियों के वर्तमान को बचाकर भविष्य को सुरक्षित करने चुनौती खड़ी हो जाती है । सोनागाछी और बहु-बाज़ार के चकलाघरों में गायत्री जैसी अनगिनत दूसरी और तीसरी पीढ़ी की वेश्याओं का जीवन इसी सोच और प्रयासों का परिणाम है । वेश्यावृत्ति का रेगिस्तान पीढ़ी-दर-पीढ़ी बढ़ता ही जा रहा है । हमारे समाज और क़ानून व्यवस्था के पास वेश्यावृत्ति रूपी रेगिस्तान की रोकथाम के लिए कोई उचित प्रबंध निकट भविष्य में दिखाई नहीं दे रहा है । वेश्याओं के साथ-साथ उनकी संतानों का भविष्य भी कोठों की अंधेरी गलियों से आज़ादी पाने की जदोजहद कर रहा है । वेश्याओं को समाज के लिए अनिवार्य बताने वाली सोच ने वेश्याओं की संतानों के लिए दो ही रास्ते छोड़े हुए हैं । पहला, अगर किसी वेश्या को लड़का हुआ तो वह सिर्फ़ कोठों पर वेश्याओं के लिए दलाली करेगा है । दूसरा यदि वेश्या को लड़की हुई तो उसे कोठे की परंपरा के अनुसार नई छोकरी का स्थान ग्रहण करना होगा । इस परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए लड़कियों को वेश्याओं के चाल-चलन सिखाएँ जाते हैं । निर्दोष लड़कियों को वेश्या बनाने वाली अमानवीय परंपरा सदियों से चली आ रही है । वेश्याओं की लड़कियों के अलावा ज़बरन पकड़कर भी वेश्या बनाया जाता है । ऐसी लड़कियों को सामाजिक संस्थाओं के सहयोग और दबाव के चलते छुड़वाया भी जाता है

लेकिन ऐसी भाग्यशाली लड़कियों की संख्या बहुत कम होती है । परंतु ऐसा भी नहीं है कि दलालों और कोठों की मालकिनों के चंगुल से भाग जाने वाली लड़कियों के जीवन की चुनौतियाँ ख़त्म हो जाती हैं । जो लड़कियाँ कोठों से बचकर भाग जाती हैं उनको समाज और परिवार के बहिष्कार का दंश झेलना पड़ता है । समाज के भय के चलते लड़की के परिवार वाले उन्हें अपनाने से इंकार कर देते हैं । इस सोच को उजागर करते हुए लेखिका लिखती है, "कई जगह, छोटी जगहों पर बात के बहुत फैल जाने पर सामाजिक डर के चलते भी माँ-बाप वेश्या बन चुकी अपनी लड़की को वापिस नहीं ले पाते है कि यदि ऐसा किया तो उनके बाक़ी बच्चों का भविष्य, शादी ब्याह दाँव पर लग जाएगा । लोगों के कटाक्ष, ताने उनका जीना हराम कर देंगे ।"[47]

एक तरफ़ हमारा समाज आधुनिक हो रहा है वहीं दूसरी तरफ़ विकास की अंधाधुँध दौड़ के चलते समाज में तेज़ी से असमानता फैल रही है । ग़रीब और ग़रीब होता जा रहा है तथा अमीर और अधिक अमीर हो रहा है । विकास की अंधाधुंध रफ़्तार के कारण एक ओर ग़रीब आदमी का प्राकृतिक व सामाजिक संसाधनों पर से अधिकार सिमटता जा रहा है वहीं अमीर आदमी का संसाधनों पर ऐकाधिकर बढ़ता जा रहा है । आज तेज़ी से बढ़ती ग़रीबी के कारण समाज का बहुत बड़ा वर्ग दाने-दाने का मोहताज हो गया है । वह भूख और ग़रीबी की विवशता के आगे अमानवीय कार्य करने के

लिए विवश कर दिया गया है । अभावों के चलते मजबूर व्यक्ति के सामने जीवन की ज़रूरतों को पूरा करने के विकल्प सीमित हो गये हैं । यही वजह है कि समाज में चोरी और अपराध के मामले तेज़ी से बढ़ रहे हैं । हमारे समाज में व्याप्त ग़रीबी, बेरोज़गारी और असमानता के बारें में मधु कांकरियाँ लिखती हैं । "एक तरफ़ विक्टोरिया मेमोरियल, विशाल राजभवन, नेशनल लाइब्रेरी, बड़े-बड़े चर्च, होटल बंगाल ताज, होटल ग्रांड, बिडला मंदिर, फ़ोर्ट विलियम, लाल बाज़ार थाना, कलकत्ता म्यूज़ियम, मेट्रो रेल और गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ हैं तो दूसरी तरफ़ बजबजाती गंदगी और सड़ान्ध के बीच हज़ारों झुग्गी झोपड़ियाँ, कीड़ों की तरह सड़क पर बिलबिलाती जिंदगियाँ । सड़क पर ही मुँह अंधेरे छुपकर नित्यकर्म से निवृत होते लोग । कूड़ों के ढेर से अन्न बीनते भिखारी ।"[48] समाज में व्याप्त असमानता की तस्वीर को स्पष्ट करते हुए लेखिका आगे लिखती हैं, "इसी शहर में कई शहर हैं । इसी शहर में अमेरिका है और धँसा हुआ देहात है । एक तरफ मेट्रो रेल है, फ़ोर्ड आइकोन है तो दूसरी तरफ ठेला गाड़ियाँ हैं, हाथ रिक्शे हैं । साइकिलों पर दौड़ती जिंदगियाँ हैं । एक तरफ मुट्ठी-भर बिल गेटस और माइकेल जेक्सन की पीढ़ी के लोग हैं तो दूसरी तरफ संतोषी माँ और काँवर ढोते श्रद्धालु हैं । ज़ोरों से बजती रामधुन की गूँज यहाँ तो धड़ल्ले से बिकते काम-सूत्र यहाँ । एक तरफ कम्प्यूटर और इंटरनेट पर बैठते मुट्ठी भर तेज-तर्रार बच्चे हैं तो दूसरी तरफ चाय की दुकानों पर स्टोव में पम्प भरते, घरों में जूठे बर्तन, कपड़े धोते ढेरों निरक्षर बच्चे हैं ।

एक तरफ फ़र्राटेदार अंग्रेज़ी है तो दूसरी तरफ देशज भाषाएँ हैं । अति आधुनिकता यहाँ, अतिप्राचीनता यहाँ । कॉलगेट और नीम दातुन साथ-साथ यहाँ । झालमुड़ी और फास्टफूड यहाँ ।"[49] हमारी सरकार का समाज में चारों ओर फैली असमानता की ओर कोई ध्यान नहीं है । देखा जाए तो आज की सरकारें समाज कल्याण का नारा देकर पूँजीवाद की गोदी में बैठी हुई हैं । राज्य द्वारा पोषित पूंजीवाद समाज के कमजोर वर्ग को मूलभूत सुविधाओं से वंचित कर हाशिये पर धकेल रहा है । यही कारण है कि राज्य की अनदेखी और पूंजीवाद की खुली लूट के चलते मनुष्य पशु से भी बदतर जीवन-जीने को मजबूर कर दिया गया है । अतः मुझे यह कहने में कोई हर्ज नहीं है कि पूँजीवादी व्यवस्था ही मनुष्य के शोषण और उत्पीड़न की जड़ है । इसी पूँजीवादी व्यवस्था के चलते समाज असमानता व्याप्त है । सलाम आख़िरी में वर्णित आर्थिक असमानता से उपजा उत्पीड़न मुनाफ़ाखोरी का जीता-जागता उदाहरण है ।

मधु कांकरियाँ ने वेश्यावृत्ति और वेश्याओं के जीवन से जुड़ी हुई समस्याओं से लेकर वेश्याजीवन से जुड़ी प्रत्येक स्थिति को सलाम आख़िरी में अभिव्यक्त किया है । लेखिका ने वेश्याजीवन से जुड़े उन पक्षों को भी उजागर किया है जिनके चलते एक स्त्री को उपभोग की वस्तु बनाया जाता है । इतना ही नहीं मधु कांकरियाँ जी वेश्याओं के अभिलाषाओं और उम्मीदों से भरे पक्ष को भी उजागर किया है । लेखिका ने वेश्याओं के जीवन को सहारा देने वाला पुरुष के सपनों से लेकर जीवन की निरसता को दूर करने

वाला बाल-बच्चों से भरे-पूरे घर-परिवार के सपने को भी अभिव्यक्त किया है । आख़िरकार सारी मर्यादाओं और जीवन की तमाम अभिलाषाओं के बाद वेश्याओं को जीविका की गाड़ी चलाने के लिए ग्राहकों की बाट देखनी पड़ती है । यह वेश्याजीवन का कड़वा सच है कि प्रेमी के आने से नहीं बल्कि ग्राहकों के आने से वेश्याओं का चूल्हा जलता है । इस बात को वेश्याओं को देर-सवेर स्वीकारना ही पड़ता है । "पिछले दो-तीन महीनों से ख़राब तबीयत के चलते रास्ते में खड़ी नहीं हो पाई, इसी कारण बिजली का बिल नहीं भर पाने के चलते लाईन कटी हुई है ।"[50] सलाम आख़िरी की पिंकी के सामने जैसी चुनौतियाँ हैं, वैसी ही चुनौतियाँ बाक़ी वेश्याओं के सामने हैं । एक गृहणी की भाँति चकलाघरों की वेश्याओं के पास बचत निधि नाम की कोई चीज नहीं होती है । जिसको कि वे आपात समय में इस्तेमाल कर अपनी रोज़मर्रा की ज़रूरतों को पूरा कर सकें । वेश्याओं को रोज़मर्रा की ज़रूरतों पूरा करने के लिए तन और मन ठीक ना होने पर भी, शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना सहन करके ग्राहक के इंतज़ार में घंटों खड़ा रहना पड़ता है । "यदि मैं लाईन में खड़ी नहीं रहूँगी तो लोगों को पता कैसे चलेगा कि मैं ख़राब हो गई हूँ वही मैं बीच में किसी प्रकार का रेस्ट-वेस्ट नहीं लेती, बिना मेहनत पैसा नहीं आता इसलिए आदत ही ऐसी बना ली है ।"[51] पिंकी जैसी वेश्याओं से मशीन की भाँति काम लिया जाता है । पिंकी को मिलने वाली यातना और प्रताड़ना के लिए परिस्थितियों से अधिक हम और हमारा समाज ज़िम्मेदार है ।

जो सामाजिक परिवेश पशुओं के रहने योग्य नहीं है । ऐसे अमानवीय परिवेश में वेश्याओं को रहने के लिए बाध्य किया जाता है । गंदगी से लबालब बस्तियों के अमानवीय परिवेश में वेश्याओं की एक पूरी दुनिया बसी हुई है । ऐसे सड़ान्ध और गंदगी भरे माहौल के बीच साधारण मनुष्य एक पल नहीं ठहर सकता । उस परिवेश में वेश्याओं की अनगिनत पीढ़ियाँ बीत चुकी है । "आठ-नौ रूपजीवाएँ और लम्बी गली के भीतर प्रेम व्यापार के लिए उपलब्ध छोटे-छोटे सीलन भरे, खपरैल की छतवाले घर । कहीं-कहीं पक्की छत भी । गली के बीच की सार्वजनिक नल पर ज़ूठे पड़े हंडे, भगोनियाँ, बाल्टियाँ । इक्के-दुक्के अपवादस्वरूप साफ़-सुथरे कमरे भी । गली के अंतिम सिरे पर गंदगी से अटा दलदल । 'यहाँ पेशाब करना मना है' की चेतावनी के बावजूद खुली नालियों से आती पेशाब की दुर्गन्ध, सूखे पत्ते और कचरों से भरा एक बदबूदार पोखर और उसके पास ही कचरे के छोटे-मोटे हिमालय पर तल्लीनता से मँडराते खाते-घूमते लोट लगाते पाँच-छः छोटे-बड़े सूअर अपने परिवार के साथ ।"[52] एक ओर गंदगी से सना हुआ परिवेश दूसरी ओर जिस्मफिरोशी, ऐसे वातावरण में स्वास्थ्य सम्बन्धी रोग अधिकतर वेश्याओं को कम उम्र में ही अपने आग़ोश में ले लेते हैं । उपचार के अभाव में स्वास्थ्य सम्बन्धी रोग लाईलाज बीमारियों का रूप धारण कर लेते हैं जो वेश्याओं की अकाल मृत्यु का कारण बनते है । लेखिका बताती है कि सोनागाछी जैसे इलाक़ों के अमानवीय और बदबूदार

वातावरण में वेश्याओं की स्थिति सड़े-गले कचरे से भी बदतर है । “कभी सड़ा हुआ केला देखा है आपने । ठीक वैसा ही है हम लोगों का शरीर । बस...सड़ान्ध-अभी एकदम ऊपर तक नहीं आई है ।”[53]

लेखिका ने माया देवनार के माध्यम से वेश्याओं के बीच होने वाली एडस जैसी लाईलाज बीमारी की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित किया है । यहाँ माया एक प्रतीकात्मक उदाहरण ज़रूर है लेकिन वेश्याओं की दुनिया में एचआईवी एडस जैसी बीमारी हक़ीक़त है । आज एडस जैसी गम्भीर बीमारी के चलते अनगिनत वेश्याओं की असमय मृत्यु हो जाती है । वेश्याओं को होने वाली बीमारी और उन बीमारी से होने वाली मौत से सरकार का कोई वास्ता नहीं है । सरकार के पास एचआईवी एडस से पीड़ित और उससे मरने वाली वेश्याओं का ठीक-ठीक आँकड़ा भी नहीं है । । वेश्याओं को होने वाली एचआईवी एडस से लेकर सिफलिस जैसी बीमारियाँ पुरुष की कामुकता के चलते बनाये गये असुरक्षित यौन-सम्बंधों का परिणाम हैं । अब वेश्याओं और कोठों की स्थिति पहले जैसे नहीं है । आज के समय में वेश्याओं और चकलाघरों की संख्या अबाध गति से बढ़ रही है । वेश्याओं और कोठों की संख्या में वृद्धि का सीधा असर वेश्याओं की कमाई पर देखा जा सकता है । वेश्याओं की संख्या बढ़ने के कारण ग्राहकों के मिलने का प्रतिशत घटता गया । पहले जिस काम के लिए वेश्याओं को पहले ठीक-ठाक पैसा मिल जाता था आज उतने ही पैसों के घंटों पीड़ा सहनी पड़ती है । “आज के

ज़माने में यदि भाग्य बहुत अच्छा हुआ तो दिन में दो-तीन मिल जाते हैं नहीं तो फाँका तक की नौबत आ जाती है ।"[54] सलाम आख़िरी की वेश्याओं में भविष्य को लेकर असुरक्षा का भाव है । वेश्याएँ अपने भविष्य को लेकर अधिक चिंतित हैं । यह वेश्या जीवन का ऐसा पड़ाव है जिसका सामना प्रत्येक वेश्या को करना होता है । एक उम्र के बाद वेश्याओं का शरीर लाईलाज बीमारियों के कारण बूढ़ा होने लगता है । यह स्थिति वेश्याओं में भविष्य को लेकर डर पैदा करती है । वेश्याओं के पास एक आम स्त्री की भाँति वृद्धावस्था में देखभाल करने वाला कोई नहीं होता है । भविष्य की चिंता का सवाल सब वेश्याओं के लिए एक जैसा नहीं होता है । कुछ वेश्याओं ने भविष्य की चिंताओं से निपटने के लिए पहले से ही योजना बनाई हुई है । उपन्यास की माया देवनार ऐसी ही वेश्या है जो अपने भविष्य में आने वाली चुनौतियों से निपटने के लिए अपना ख़ुद का चकलाघर चाहती है । ऐसी वेश्याओं के लिए खुद का चकलाघर वृद्धावस्था में एक निश्चित कमाई का ज़रिया बनता है । "क्या हैं तुम्हारी भावी योजनाएँ...?"[55] एक वेश्या के भविष्य को सुरक्षित करने वाली योजना दूसरी स्त्री के शोषण की गारंटी होती है । एक वेश्या अपने जीवन की अनिश्चितता को समाप्त करने के लिए अपना एक चकला चाहती है । , "अपना एक कमरा है, बहुत सस्ते भाड़े पर जिसमें वह चाहती है किसी छुकरी को रखना । क्योंकि वह 'कितने दिन की और जोबना कितने दिन का है ?' हद से हद पाँच वर्ष और । उसके बाद भी तो चाहिए आमदनी का कोई ज़रिया ।"[56] कोठे की

मालकिनों के जीवन को सुरक्षित करने के लिए आमतौर पर कम उम्र की बालिकाएं ही आमदनी का मुख्य ज़रिया होती हैं । ऐसी लड़कियों को जो प्राकृतिक रूप से यौन सम्बंधों के लिए परिपक्व नहीं हुई हैं, उन्हें कम उम्र में ही अप्राकृतिक तरीक़े से ग्राहकों के लिए तैयार किया जाता है । "किसी भी छुकरी के उस अंग में (आँख के इशारे से समझा देती है वह कौन सा अंग) शोला (काग़ज़ का बना पदार्थ जो पानी पड़ने से ही गल जाता है, जिसे बंगाली भाषा में शोला कहा जाता है) घुसा दिया जाता है फिर उन्हें पानी के टब में बैठा दिया जाता है । जैसे-जैसे पानी में शोला फूलता है वैसे-वैसे गुप्तांगों में फैलाव आता जाता है ।"[57] रेडलाइट इलाक़ों में सारे चकलाघरों की कहानी एक जैसी है है । यहाँ एक स्त्री के जीवन की बर्बादी दूसरी वेश्या के बुढ़ापे के सुरक्षा की गारंटी है । अधिकतर चकलाघरों में अमानवीय तरीक़ों से अपने बुढ़ापे के सहारे के लिए अगली पीढ़ी की वेश्याओं को तैयार किया जाता है । इस काम को अंजाम देने के लिए छोटे शहरों व गाँवों से नाबालिग लड़कियों का अपहरण कर दलालों द्वारा कोठों की मालकीनों को बेचा जाता है । इस काम को सुगमता से करने के लिए वेश्याओं की ख़रीद-फ़रोख़्त की अदृश्य मंडियाँ बनी हुई है । ऐसी ही शहरों के फ़्लैटों में चल रही ख़रीद-फ़रोख़्त का पर्दाफ़ाश करते हुए लेखिका लिखती हैं । "आसपास के लोगों का हुजूम । फ़्लैट के पिछवाड़े बने गोदाम मार्का कमरे से तीन लड़कियाँ बरामद की गई थीं । ग्यारह से चौदह वर्ष की उम्र तक की । एकदम ताज़ी उखाड़ी फलियों की तरह । दो के हाथ पीछे बँधे

हुए । दोनों के मुँह पर पट्टी । एक को ड्रग खिलाकर लाया गया था । वह अपने होठों पर बार-बार अंगुली रखकर कुछ बोलना चाह रही थी । सभी का (तीनों का ही) शरीर ढीली पड़ती पोटली की तरह एकदम शिथिल । बहती नाक । आँसुओं से सूजी आँखें ।"[58] यह केवल भारत के सोनागाछी जैसे रेडलाइट इलाक़ों की कहानी नहीं है बल्कि दुनिया भर में नाबालिग स्त्रियों को अगवा कर देह की मंडियों में बेचा जा रहा है । मधु कांकरियाँ द्वारिका सिंह के माध्यम से वेश्यावृत्ति के नियोजित बाज़ार की कार्यप्रणाली और दलालों की काली करतूतों के बारें में बताती है, "साले आधी रात में बंद मैटाडोर में हाथ बाँध, मुँह में टेप लगाकर दस-बारह के लॉट में लड़कियाँ इकट्ठे लाते हैं, पर छापामारी के डर से सीधा रेड लाइट एरिया में नहीं लाते हैं, किसी पाश-ट्यूब लाइट एरिया में रखते हैं । फिर वहाँ से एक-एक करके रेड लाइट एरिया में बेचते हैं जिससे ख़तरा मिनिमम रहे । किसी को शक नहीं हो ।"[59] इसमें कोई संदेह नहीं है कि वेश्यावृत्ति का पूरा नियोजित बाज़ार पुलिस और दलालों की मिलीभगत से ही फल-फूल रहा है । यह नियोजित बाज़ार मुनाफ़े के सिद्धांत पर काम करता है । इस बाज़ार में जितना अधिक स्त्री का शोषण होगा उतना ही अधिक मुनाफ़ा होगा है । सलाम आख़िरी की वेश्याएँ शोषण को समझती हैं । उनके भीतर शोषण के प्रति आवाज़ उठाने का स्वाभिमान अभी ज़िंदा हैं । हमें यह स्वाभिमानी स्वर बुलबुल के ग़ुस्से में दिखाई देता है "बात है ही ग़ुस्से की," बुलबुल तमतमाए स्वरों में बता रही थी, "पुलिस कहती है हम रास्ते में खड़ी नहीं

रह सकती हैं, रास्ते में खड़े रहना ग़ैर-क़ानूनी है । अब रास्तों पर नहीं तो क्या हम महलों में बैठी रहें...ग्राहक कैसे आए हमारे पास, खाएँ क्या हम ? फिर भी जाने दो, हम अपना काम करती हैं, पुलिस अपना, हमें जब तब पकड़ कर ले जाती है । पुलिस के आते ही हम ख़ुद ही भागकर अंदर घुस जाती हैं । कितनी बार लाठियाँ खाई हमने...। पर यह तो घोर अन्याय हुआ-बर्दाश्त के बाहर कि बहरी-गूँगी पर भी पुलिस टूट पड़े ।"[60] अगर कोई वेश्या अपनी मर्ज़ी से वेश्यावृत्ति को छोड़कर नये जीवन की नई शुरुआत करना चाहती है तो समाज परम्पराओं और रूढ़ियों का प्रहरी बनकर खड़ा हो जाता है । उसे वापिस उसी स्थिति में पहुँचा देता है जिस स्थिति में वह स्त्री पहले थी ।"कई बार ऐसा भी हुआ कि नौकरी लगी भी पर जैसे ही लोगों को मालूम पड़ा...निकाल दिया गया ।"[61]

एक स्त्री एक बार वेश्या हो जाने के बाद समाज की नज़र में मरते दम तक अपवित्र रहती है । यह समाज उस स्त्री के साथ ताउम्र अछूत की तरह व्यवहार करता है । विडम्बना की बात यह है कि यह अत्याचार उस स्त्री तक ही सीमित नहीं होता है बल्कि जो दुत्कार और प्रताड़ना वह वेश्या झेलती है । उससे अधिक उपेक्षा और अपमान भरा बर्ताव वेश्याओं के बच्चों के साथ किया जाता है । यह तथाकथित सभ्य समाज वेश्याओं के समान ही उनके बच्चों को भी मुख्यधारा का नागरिक नहीं मानता है । यहाँ सवाल यह बनता है कि अगर परिस्थितियों के कारणवश एक स्त्री वेश्या बन भी गई, तो इसमें उसके बच्चों का क्या दोष है ? क्यों समाज द्वारा वेश्याओं

के बच्चों का बहिष्कार किया जाता है ? "एक लाईनवाली ने बड़ी चेष्टा से अपने लड़के को किसी स्कूल में भर्ती तो करवा दिया पर जैसे-जैसे लोगों को पता चलता गया कि वह लालबत्ती की गलियों से आता है...उसका पढ़ना दूश्वार हो गया था...फिर अधबीच में ही उसे पढ़ाई छोड़नी पड़ी ।"[62] हमारा समाज वेश्याओं के बच्चों को शिक्षा का अधिकार भी नहीं देता है । समाज केवल वेश्याओं के बच्चों को शिक्षा से वंचित नहीं करता है अपितु उन्हें शिक्षा से वंचित कर उनके सपनों को भी छीन लेता है । हमारा समाज है एक वेश्या को अपनी संतान के अच्छे भविष्य के निर्माण का मौक़ा भी नहीं देता है । समाज के दूसरे माता-पिताओं की तरह एक वेश्या का भी सपना है कि वह अपने बच्चों को पढ़ा-लिखाकर एक ज़िम्मेवार नागरिक बनाएँ । एक माँ के रूप में वेश्या भी अपने बच्चों को वो सारी सुविधाएँ और अवसर देना चाहती है जो अन्य अभिभावक प्रदान करते हैं । लेकिन दुर्भाग्य से समाज वेश्याओं के लड़के-लड़कियों से वैसी ही अपेक्षा रखता है जैसी वह वेश्याओं से रखता है । उपन्यास की माया देवनार की भाँति पिंकी की यही अंतिम इच्छा थी कि उसकी बेटी और बेटा सोनागाछी की बदनाम गलियों से दूर रहें और पढ़-लिखकर समाज के सभ्य नागरिक बने । किसी वेश्या के बच्चे का पढ़-लिख जाना रूढ़िवादी समाज अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्द मानता है, "जैसे ही लोगों को मालूम पड़ेगा कि यह बच्चा लालबत्ती इलाक़ों से आता है, सारी अंगुलियाँ मेरी तरफ़ उठ जाएँगी कि पादरी अवश्य ही उन लालबत्ती इलाक़ों में जाता होगा । नो आई कैन नॉट डू एनीथिंग

दैटगोज अगेन्स्ट माई इंटीग्रिटी । लुक, सिस्टम निर्भीक हो सकता है, व्यक्ति नहीं, मैं मानवता की बेहतर सेवा कर सकूँ इसके लिए यह ज़रूरी है कि मेरी इंटीग्रिटी बनी रहे ।"[63] समाज अपनी झूठी शान (इंटीग्रिटी) को बचाने के लिए न जाने कितने ही लोगों के जीवन से खिलवाड़ करेगा । जिस समाज अपनी तथाकथित इंटीग्रिटी को बचाने के लिए पिंकी के बेटे को अपराधी और उसकी बेटी (मलिका) को वेश्या बना डाला । उस समाज की प्रगति कैसे सम्भव हो सकती है । समाज ने निर्दोष मलिका को वेश्या बनाकर बता दिया कि आप व्यवस्था के मानदंडों को चुनौती देकर व्यवस्था से जीत नहीं सकते । ऐसे समाज के लिए आपके जीवन के सपनों से अधिक इंटीग्रिटी की रक्षा करना ज़रूरी है । उपन्यास पूरी कहानी में वेश्याजीवन से जुड़ी समस्याओं पर बात करते हुए वेश्याओं के संतानों के प्रति रूढ़िवादी सोच को भी उजागर करता है । एक स्त्री का वेश्या होना ही उसके जीवन की सबसे बड़ी समस्या है । ऐसी स्थिति वेश्या के जीवन पर समस्याओं का पहाड़ टूटना स्वाभाविक बात है । सलाम आख़िरी वेश्याओं के स्वास्थ्य से लेकर जीवन की सुरक्षा का सवाल, वेश्या के रूप में अपने बच्चों के भविष्य की चिंता, समाज से लेकर परिवार तक की दुत्कार, दलालों से लेकर ग्राहकों तक का शोषण और कोठे की मालकिनों से लेकर न्यायव्यवस्था के शोषण को उजागर करता है ।

संदर्भ सूची-

1. मधु कांकरिया, सलाम आखिरी, संस्करण-2007, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि, नई दिल्ली-02, पृ. सं-भूमिका (फ़्लैप)
2. वही पृ. सं-16
3. वही पृ. सं-16
4. वही पृ. सं-185
5. वही पृ. सं-185
6. वही पृ. सं-176
7. वही पृ. सं-191
8. वही पृ. सं-184
9. वही पृ. सं-184
10. वही पृ. सं-157
11. वही पृ. सं-134
12. वही पृ. सं-134
13. वही पृ. सं-22
14. वही पृ. सं-22
15. वही पृ. सं-22-23
16. वही पृ. सं-23
17. वही पृ. सं-23
18. वही पृ. सं-30

19. वही पृ. सं-28

20. वही पृ. सं-29

21. वही पृ. सं-39

22. वही पृ. सं-40

23. वही पृ. सं-38

24. वही पृ. सं-40

25. वही पृ. सं-57

26. वही पृ. सं-58

27. वही पृ. सं-60

28. वही पृ. सं-65

29. वही पृ. सं-69

30. वही पृ. सं-69

31. वही पृ. सं-67

32. वही पृ. सं-67

33. वही पृ. सं-71

34. वही पृ. सं-72

35. वही पृ. सं-71

36. वही पृ. सं-72

37. वही पृ. सं-74

38. वही पृ. सं-75

39. वही पृ. सं-76

40. वही पृ. सं-177

41. वही पृ. सं-177

42. वही पृ. सं-177

43. वही पृ. सं-77

44. वही पृ. सं-80

45. वही पृ. सं-81

46. वही पृ. सं-85

47. वही पृ. सं-92

48. वही पृ. सं-94

49. वही पृ. सं-94

50. वही पृ. सं-102

51. वही पृ. सं-103

52. वही पृ. सं-109

53. वही पृ. सं-189

54. वही पृ. सं-112

55. वही पृ. सं-113

56. वही पृ. सं-113

57. वही पृ. सं-113

58. वही पृ. सं-144

59. वही पृ. सं-145

60. वही पृ. सं-164

61. वही पृ. सं-166

62. वही पृ. सं-166

63. वही पृ. सं-191

अध्याय चार

यौनकर्म के विशेष परिप्रेक्ष्य में मुरदाघर और सलाम आख़िरी का तुलनात्मक अध्ययन

यह अध्याय सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आदि पहलुओं के आधार पर मुरदाघर और सलाम आख़िरी को केंद्र में रखकर नारी की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करता है । मुरदाघर और सलाम आख़िरी दोनों रचनाएँ शोध के आधार ग्रंथ हैं । और दोनों रचनाओं के मूल में एक ही समस्या पर बात की गई है । परंतु दोनों रचनाओं पृष्ठभूमि और रचनाकाल अलग-अलग है । मुरदाघर की बात करें तो उसमें ग़रीबी और भुखमरी से त्रस्त झोपड़पट्टियों में रहने वाली गृहस्थ महिलाओं से वेश्या बनी स्त्रियों की व्यथा कथा को प्रस्तुत किया गया है । वहीं शोध के दूसरे आधार ग्रंथ सलाम आख़िरी में विशुद्ध रूप से देहबाज़ार के अड्डों की नियोजित वेश्यावृति को दर्शाया गया है ।

हम कह सकते हैं कि दोनों ही रचनाएँ वेश्यावृत्ति पर आधारित्त हैं और वेश्याजीवन से जुड़े तमाम पहलुओं के साथ वेश्याओं के साथ समाज के बर्ताव और किसी स्त्री को वेश्या बनाने में समाज की भूमिका पर बात करने के साथ-साथ वेश्याओं के प्रति पुलिस प्रशासन व क़ानून व्यवस्था की

भूमिका को भी केंद्र में रखा गया है । दोनों रचनाएँ वेश्याओं के साथ होने वाले अपराध व शोषण को रोकने के लिए बनाई गई व्यवस्था की पड़ताल भी करती हैं । हम अपने शोध के परिप्रेक्ष्य में दोनों रचनाओं की तुलना करते वक्त के यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि डोनो रचनाओं में अभिव्यक्त समाज में एक सामान्य स्त्री का जीवन कैसा है ? एक सामान्य स्त्री की तुलना में वेश्या का जीवन कैसा? दोनों रचनाओं के समाज में स्त्री के वेश्या बनने और बनाने की प्रक्रिया क्या है ? इसके अलावा हम दोनों रचनाओं के माध्यम से यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि एक सामान्य स्त्री के मुक़ाबले एक वेश्या को जीवन में कौनसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है । और अंत में दोनों रचनाओं में लेखकों द्वारा वेश्यावृत्ति को लेकर सुझाये गए समाधानों का अवलोकन भी करेंगे ।

मुरदाघर आर्थिक विषमताओं से भरे ग़ैर-बराबरी वाले अमानवीय समाज की कहानी कहता है । इस कहानी में आर्थिक विषमताओं के फलस्वरूप उपजा अपराध, भ्रष्टाचार, देहव्यापार तथा आर्थिक विकास की रफ़्तार में पीछे छोड़ दिए गये लोगों की दास्तान शामिल है । मुरदाघर में वेश्याओं की दयनीय स्थिति का वर्णन अवश्य है परंतु उपन्यास में करुणा और संवेदना रचना की कहानी के आधार हैं । जगदम्बा प्रसाद दीक्षित ने वेश्यावृति के फलने और फूलने के लिए औधौगिक विकास की वजह से समाज में तेज़ी से फैली असमानता को उतरदायी माना है, जबकी सलाम आख़िरी की लेखिका का मानना है कि वेश्यावृत्ति सदियों से समाज में किसी ना किसी रूप में बनी

हुई है । वैसे भी वेश्यावृत्ति के बने रहने या फलने-फूलने के पीछे सिर्फ़ आर्थिक असमानता इकलौता कारण नहीं हो सकता है । वेश्यावृत्ति के लिए ज़िम्मेवार कारणों को बड़े फलक पर देखते हुए लेखिका तथाकथित सभ्य समाज को सवालों के कटघरें में खड़ा करती है जो मानता है कि 'गंदगी की निकासी' के लिए गटर की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार समाज को व्यभिचार मुक्त रखने के लिए वेश्यावृत्ति को अनिवार्य मानता है । वेश्यावृत्ति केवल सामाजिक समस्या ही नहीं है बल्कि स्त्री के शारीरिक, मानसिक और रचनात्मक पहलुओं के शोषण की भी जड़ है । स्त्री के सर्वांगीण रूप के शोषण को परिभाषित करते हुए सलाम आख़िरी में लेखिका लिखती है "नारी का अर्थ यदि सर्जन, प्रकृति और संपूर्णता है तो आज इस बाज़ार में तीनों नीलाम हो रहें हैं । और यह नीलामी जीवन की नसतोड़ यंत्रणाओं और भुखमरी की कोख से उपजती है, जाने कैसे आमधारणा लोगों में है कि वेश्याएँ बहुत ठाठ-बाट से रहने के लिए यह आम रास्ता अपनी इच्छा से पकड़ती हैं । यह सत्य उतना ही सत्य है जितना पहाड़ के सामने राई।"[1]

मुरदाघर में लेखक वेश्यावृत्ति की समस्या के लिए समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता को उतरदायी मानते हैं । समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता के लिए अंधाधुँध औधौगिक विकास ज़िम्मेवार है । लेखक का मानना है कि विकास की अंधाधुँध दौड़ ने गाँवों के परंपरागत काम धंधों को समाप्त

कर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को ख़त्म कर दिया । जिसका परिणाम यह हुआ कि गाँवों के अकुशल मज़दूरों ने रोज़ी-रोटी की तलाश में परिवार सहित शहरों में पनाह ली । स्त्रियों ने काम के अभाव में उपज्जी भूख की विवशता के आगे आत्मसमर्पण कर जीवन की मूलभूत ज़रूरतों (रोटी,कपड़ा,मकान) के लिए वेश्यावृति स्वीकार कर ली । परंतु यह तथ्य पूर्ण रूप से सत्य नहीं है कि कोई स्त्री रोटी, कपड़ा और मकान के लिए वेश्या बन जाती है । वेश्यावृत्ति अपनाए जाने के पीछे दिए जाने वाले तर्कों और दलीलों को प्रमाणिकता की कसौटी पर परखते हुए समाज में वेश्याओं की उपस्थिति और उनकी स्थिति के बारें लेखिका ने सलाम आख़िरी के आत्मक़थ्य में लिखा है, "85 प्रतिशत वेश्यावृति जीवन की चरम त्रासदी में भूख के मोर्चे के विरुद्ध अपनाई जाती है । 10 प्रतिशत वेश्यावृत्ति धोखाधड़ी से उपजती है, यह धोखाधड़ी प्रेम के झूठे वादे, नौकरी का प्रलोभन, शहरी चकाचौंध से लेकर एक उच्च और सम्मानित जीवन के सब्ज़बाग़ दिखाने तक होती है ।"[2] समाज में प्रचलित वेश्यावृत्ति की भयाहवता को उजागर करते हुए लेखिका आगे लिखती है, "यह वेश्याओं की रहस्यमय दुनिया है । शताब्दियों का बोझ ढोती हुई । देह मंदिरों और देह के पुजारियों की यह दुनिया है जो वितृष्णा में लिपटी एक अजीब सा सम्मोहन जगाती है । यहाँ ज़िंदगी का शोर-शराबा है, हर गली के हर कमरे का अलग-अलग इतिहास...जहाँ हर रात देह ही नहीं उघड़ती है वरन आत्माओं का भी चीरहरण होता है ।"[3]

मुरदाघर और सलाम आख़िरी उपन्यास का रचनाकाल और पृष्ठभूमि अलग-अलग ज़रूर हैं लेकिन दोनों रचनाओं में स्त्री के जीवन से जुड़ी प्रमुख समस्या को केंद्र में रखा गया है । दोनों रचनाओं में वेश्यावृति को अपनाने की मुख्य वजह ग़रीबी मानी गई है और दोनों उपन्यासों में अधिकतर वेश्याओं ने भूख के विरुद्ध ही वेश्यावृति अपनाई है । सलाम आख़िरी में लेखिका ने विभिन्न उपशीर्षकों द्वारा वेश्याओं के जीवन से जुड़ी समस्याओं को पाठकों के सामने रखा है, वहीं मुरदाघर में वेश्याओं के जीवन से जुड़ी समस्याओं का सिलसिलेवार वर्णन है । सलाम आख़िरी में हम देखते हैं कि वेश्याओं के जीवन में ग़रीबी से ऊपजी भूख की भयावहता ने स्वाभिमान और सम्मान के सवाल को लघु कर दिया है । भूख की भयावहता के आगे स्वाभिमान और सम्मान का सौदा कर रही वेश्याओं की स्थिति को समझने के लिए इससे ज़्यादा प्रामाणिक उदाहरण कोई और नहीं हो सकता था, "तुम्हें डर नहीं लगता, अपनी इज़्ज़त को इस प्रकार पराए मर्द के हवाले करते..."

क्यों नहीं लगता है, बहुत लगता है...एकदम शुरू-शुरू में तो बोटी-बोटी अकड़ गई थी..."

"तो फिर क्यों करती हो तुम ऐसा ?"

"क्योंकि इससे भी ज़्यादा डर एक और चीज़ है, उससे लगता है ।"

"क्या है वह ?"

"भूख...!"[4]

सलाम आख़िरी और मुरदाघर में अभिव्यक्त सामाजिक परिवेश के माध्यम से देख और समझ सकते हैं कि समाज ने स्त्री के जीवन की प्रगति में सहयोग करने की बजाये तरक़्क़ी के सारे रास्ते बंद कर रखे हैं । ऐसी परिस्थितियों में फंसी हुई स्त्री के सामने जीवन और मृत्यु में से किसी एक का चुनाव करने का संकट खड़ा हुआ है । ऐसी स्थिति में एक स्त्री जीवन का चुनाव करती है तो उसे अपने स्वाभिमान से सौदा करना होगा और समाज द्वारा निर्मित विपदाओं से बचने के लिए मृत्यु को चुनती है तो उसे जीवन से समझौता करना होगा । दोनों ही स्थितियों में स्त्री के सपनों और अभिलाषाओं का मर जाना तय है । ऐसी ही परिस्थितियों में फंसी हुई स्त्री वेश्या बनती है । वह लाख जदोजहद के बाद अपने स्वाभिमान को मारकर ही वेश्यावृत्ति चुनाव करती है । एक स्त्री द्वारा वेश्यावृत्ति अपनाने के पीछे आर्थिक के अलावा सामाजिक और सांस्कृतिक कारण भी होते हैं जिनके निर्माण में समाज की महत्ती भूमिका होती है । ऐसा नहीं है कि वेश्याजीवन अपना लेने के बाद स्त्री जीवन की सारी पीड़ाओं से मुक्त हो जाती है । बल्कि पहले के मुक़ाबले वह स्त्री जीवन की नई चुनौतियों से घिर जाती है । सामंती समाज ने स्त्री के जीवन को बेहतर करने की बजाये शोषण की ख़ातिर सदैव नए-नए हथकंडों का निर्माण किया गया । कभी संस्कृति को बचाने की दुहाई दी, कभी परम्पराओं को बचाने का स्वाँग भरा । सामंती समाज द्वारा परम्परा और संस्कृति को बचाने के नाम पर शुरू किया गया स्त्री का शोषण आधुनिक काल तक आ पहुँचा है । आज संस्कृति

और परम्पराओं के मानक बदल गए हैं । आज के समय और समाज की शोषणवादी व्यवस्था के बदले हुए चरित्र को मुरदाघर में प्रस्तुत किया है, "लेकिन उधर...दूसरी तरफ़...किसी झोपड़े में घुस गए हैं हवलदार ।...एक आदमी और एक रंडी । भाग रहा है आदमी । हाथ आ गई रंडी ।...मार ! और मार ! और मार । गिड़गिड़ाती है...नई-नई । मेरे कू मत मारो । ए हवलदार भैया ! मत...मत मारो । ये तो धंधा है मेरे पेट का ।...दो-दो बच्चें हैं मेरे कू ।...नई-नई ! वो आदमीच लेके आया मेरे कू ।...ए भैया ? ए हवलदार भैया ! मत मारो मेरे कू... तुम्हारे पाव पड़ती...।"[5] सामंती समाज जो सज़ा परम्पराओं को तोड़ने के लिए मिलती थी । आज वैसी ही सज़ा आधुनिक समाज के नियम-क़ानूनों को तोड़ने के लिए मिलती है । सामंती समाज जिन वेश्याओं को अछूत मानता था वहीं वेश्याएँ आधुनिक समय में लावारिस हैं । समय और समाज में हुए बदलावों का कोई असर वेश्याओं के जीवन पर दिखाई नहीं देता है । जो वेश्या समाज में प्रताड़ित है वह पुलिस, दलालों और ग्राहकों के शोषण की भी शिकार है । समाज भी वेश्याओं को वेश्यावृत्ति के लिए ज़िम्मेवार मानती है तो पुलिस की नज़र में भी वेश्याएँ ही वेश्यावृति के लिए ज़िम्मेवार हैं । मुरदाघर वेश्याओं के शोषण के साथ वेश्याओं के जीवन की विषमताओं की कहानी कहता है । उपन्यास में विषमताओं पर आधारित कहानी के कई किरदार ज़रूर हैं लेकिन सबकी पीड़ा एक समान है । ऐसी ही विषमताओं से उपज्जी पीड़ा सलाम आख़िरी की पात्र नलिनी के जीवन में व्याप्त है । नलिनी जब-जब अपने बीते जीवन

को याद करती है तो उसकी आँखों के सामने अभावों भरा जीवन छा जाता है । “मेरे माँ-बाँप दोनों खेती में काम करते थे । छह भाई-बहन हैं हम लोग । आज भी देख सकती हूँ अम्मा को रोटियाँ गिनते हुए और हिसाब लगाते हुए । सारा दिन अम्मा का यही सोचते सोचते बीतता की शाम किस प्रकार गुज़रेगी, सुखी या भूखी । कहीं से भी काम मिल जाने की आशा में अम्मा हरेक रास्ते आते-जाते से हँस-हँसकर बतियाती रहती थी, जिस कारण अक्सर पिता उन्हें पीट दिया करते थे ।”[6] वेश्यावृत्ति की गुमनाम दुनिया में पहुँचने का हर स्त्री का रास्ता अलग ज़रूर है लेकिन वेश्यावृत्ति के दल में फँसी हुई लाखों स्त्रियों दास्ताँ लगभग एक जैसी ही है । मनुष्य के सामाजिक और आर्थिक विकास में समाज का अहम योगदान होता है । परंतु यह विकास तभी सम्भव हो सकता है जब समाज व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए समान अवसरों का निर्माण करता है । समान अवसरों और अनुकूल परिस्थितियाँ के अभाव में व्यक्ति का विवेक बाधित होगा । अवसर की समानता व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण के साथ जीवन की बुनियादी ज़रूरतों रोटी, कपड़ा और मकान की चिंता से मुक्त कर सामाजिक सुरक्षा भी प्रदान करती है । अगर व्यक्ति की बुनियादी ज़रूरतें ही पूरी नहीं होंगी तो उसके जीवन के सारे क्रिया-क्लाप प्रभावित होंगे । समाज में जो सक्षम होता है उसके जीवन में बुनियादी ज़रूरतों का सवाल वैसा नहीं होता है जो एक गरीब व्यक्ति के यहाँ पर होता है । सक्षम मनुष्य की तुलना में ग़रीब और लाचार व्यक्ति का जीवन अधिक कष्टों व चुनौतियों से भरा हुआ होता है

। उसके यहाँ भूख और बेबसी से भरी रात काली और अधिक भयावह होती है । उपन्यास में समाज की उपभोक्तावादी नीति और समाज में बढ़ती असमानता की खाई को वेश्याओं की दशा के साथ अभिव्यक्त किया गया है, "रात और भी ज़्यादा काली । न सोना अच्छा न जागना । बैठी हैं सिर पर हाथ रखे बनी ठनी रँडिया । अब कोई नहीं गुजरता इन रास्तों से । आ जाती है दूसरी सुबह... रात के बाद । हर सुबह...हर शाम...एक ही सवाल...कैसे जले चूल्हा ? ऊँची इमारतों की साफ़ सड़के दूसरी तरफ़...सफ़ेद रोशनी की खिड़कियाँ...हवाओं पर तैरते गीत...गूँजते हुए ठहाके...।"[7] समाज में सम्पन्न व्यक्ति के सामने रोज़ी-रोटी की बेबसी का सवाल वैसा नहीं होता है जैसा एक गरीब व्यक्ति के सामने होता है । उसके जीवन में हास-परिहास, गीत- संगीत और मनोरंजन के तमाम साधन होते हैं । जिनसे अभी एक गरीब व्यक्ति कोसों दूर है । आज के सभ्य और सम्पन्न समाज के बीचों बीच समाज का एक ऐसा वर्ग भी है जो जीवन की मूलभूत ज़रूरतों ज़रूरतों को पूरा करने के लिए रोज़ खट मर रहा है । इसके साथ अधिक चिंता करने वाली बात यह है कि सभ्य समाज संवेदनहीनता व स्वार्थपरक्ता के दल-दल में इस कद्र डूबा हुआ है कि उसे अपने आस-पास किसी के मरने-जीने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ रहा है । अपने आस-पास कोई भूखा है प्यासा है, सफ़ेदपोश समाज बेबस दुनिया से अनभिज्ञ है । यह ऐसी दुनिया है जिसकों ना गरीब लोगों के जीवन से कोई सरोकार हैं ना ही वेश्याओं के जीवन की चुनौतियों से कोई मतलब है ।

दोनों रचनाओं में वेश्याओं के जीवन में मूलभूत ज़रूरतों को पूरा करने की जदोजहद एक जैसी ही है । सलाम आख़िरी की वेश्याओं को एक वक्त की रोटी का बंदोबस्त करने के जितनी मशकत करनी पड़ती है, उसके लिए मुरदाघर की वेश्याओं को भी उसी स्तर का संघर्ष करना पड़ता है । ज़रूरी नहीं है कि इतनी जदोजहद के बाद एक वक्त के भोजन का बंदोबस्त हो जाए । "सवेरे खाया था पाव...पी काली चाय । तब कुछ नहीं मिला । गुज़री दो जलती सलाखें सब ख़त्म हो गया । टूट रहा था जिस्म । उबासियों पर उबासियाँ । जोड़ों और घुटनों में दर्द । अब नहीं । नसों में बहने लगी चिनगारियाँ । गाती है ऊँची आवाज़ में । गजरा...कहाँ गया । टूटा-टूटा गजरा...आधी रात के टाइम ।...हाथ में ले लेती है । और हँसती है ।...हो गई आधी राउत अब घर जाने दो...।"[8] जीवन में अभाव के क्षण बहुत लम्बे होते हैं । ऐसा लगता है मनों वक्त ठहर गया हो । सामान्यतय व्यक्ति अपने आने वाले भविष्य के बारे में सोचता है और भविष्य को सुंदर बनाने के लिए प्रसास करता है लेकिन मैनाबाई जैसी हज़ारों महिलाओं (वेश्याओं) का अभावों से भरा वर्तमान अंधकारमय भविष्य की गारंटी है ।

वेश्यावृत्ति को आधार मानते हुए दोनों उपन्यासों में वेश्यावृति की समस्या ज़रूर है लेकिन मुरदाघर के मुक़ाबले सलाम आख़िरी संगठित वेश्यावृति के माध्यम से वेश्याओं के जीवन से जुड़ी समस्याओं को उठाता है । मुरदाघर में मैनाबाई, बशीरन, मरियम आदि वेश्याएँ किसी चकले की वेश्याएँ नहीं हैं बल्कि ये सब सामान्य गृहणियाँ हैं । ये वे गृहणी स्त्रियाँ हैं जो व्यवस्था

द्वारा निर्मित की गई जीवन की विपदाओं से पार पाने के लिए चंद पैसों की ख़ातिर अपने जिस्म का सौदा कर रही हैं । अब यहाँ पर सवाल यह खड़ा होता है कि मैनाबाई और बशीरन जैसी तमाम महिलाओं को अपनी मूलभूत ज़रूरतों के लिए वेश्यावृत्ति ही क्यों अपनानी पड़ी ? क्या मैना और बशीरन के पास जीवन की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए कोई दूसरा विकल्प नहीं था ? क्या मैना और बशीरन की ज़रूरतें पूरा करने के लिए समाज और सरकार ने कोई व्यवस्था का प्रावधान नहीं किया ? क्या समाज और व्यवस्था के वेश्यावृत्ति ही ऐसा काम है जिसके सहारे स्त्री अपने जीवन की ज़रूरतों को पूरा कर सकती है ? समाज में वेश्यावृत्ति को बनाए रखने के लिए परिस्थितियों से अधिक पुरुष ज़िम्मेवार है जो स्वयं परिस्थितियों का निर्माता है । पुरुष ने केवल वेश्यावृत्ति के लिए परिस्थितियों का निर्माण ही नहीं किया बल्कि वेश्यावृत्ति के समर्थन में तर्क भी गढ़े हुए हैं । उन सब तर्कों में पुरुष का सबसे मज़बूत तर्क है कि अगर समाज में वेश्याएँ नहीं होगी तो वह समाज वैसे ही होगा जैसे “सोसाइटी विदाउट एक गटर” ।[9] इस तर्क से लैश समाज में स्त्री की स्थिति को उजागर करते हुए लेखिका लिखती है, “इस देह बाज़ार का इतना यंत्रीकरण हो चुका है कि सभी मानवीय अनुभूतियाँ और मर्यादाएँ स्वाहा हो चुकी हैं ।”[10] देह के बाज़ारों में वेश्याओं की स्थिति भयावह है । केवल स्थिति भयावह ही नहीं हैं बल्कि इस उत्पीड़नवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ समाज में किसी प्रकार का रोष भी दिखाई नहीं देता है । वेश्यावृत्ति की समस्या स्त्रियों में नहीं है बल्कि हमारी

कामुकता से निर्मित सामाजिक व्यवस्था में है । यही वजह है कि समाज स्त्री को केवल उपभोग की वस्तु से ज़्यादा कुछ नहीं समझता है । आज हमारी कामुक सोच के चलते ही वेश्यावृत्ति ने व्यवस्था का रूप धारण कर लिया है । ऐसा नहीं है कि वेश्यावृत्ति से समाज मुक्त नहीं हो सकता है । जब दास प्रथा का ख़ात्मा हो सकता है तो वेश्यावृत्ति उन्मूलन सम्भव क्यों नहीं है ? यह तर्क कभी दास प्रथा को लेकर भी दिए जाते थे कि दास प्रथा कभी ख़त्म नहीं होगी । लेकिन आज विश्व पटल से दास प्रथा विलुप्त हो गई है ।

आजकल वेश्यावृत्ति को उद्योग का दर्जा का दर्जा देने की माँग हो रही है । तो क्या वेश्यावृत्ति को उद्योग का दर्जा मिल जाने से स्त्री के शोषण में कमी आ जायेगी । शायद नहीं, वेश्यावृत्ति एक सामाजिक समस्या है और जब तक सामाजिक रूप स्त्री प्रति मानसिकता में बदलाव नहीं करेंगे तब तब स्त्री के प्रति होने वाले शोषण में कमी आने की सम्भावना दिखाई नहीं देती है । लेखिका भी स्वयं इस बात के पक्ष में नहीं है कि "वेश्याओं को यौनकर्मी एवं श्रमिक का दर्जा दिया जाए और वेश्यावृत्ति को उद्योग का ।"[11]

मुरदाघर के माध्यम से लेखक ने एक स्त्री के वेश्या बनने से लेकर, वेश्याओं के संघर्ष और चुनौतियों के सभी पहलुओं को प्रस्तुत किया है । वहीं सलाम आख़िरी के माध्यम से लेखिका ने लालबती इलाक़ों के वेश्याजीवन की सचाई को परत-दर-परत खोला है । तुलनात्मक रूप से दोनों रचनाओं में

वेश्या जीवन की चुनौतियाँ और संघर्ष एक जैसा ही दिखाई देता है । दोनों रचनाओं में समाज के साथ क़ानून व्यवस्था के शोषण को चित्रित किया गया है । मुरदाघर की वेश्याएँ को उनका गृहस्थ जीवन सलाम आख़िरी की वेश्याओं से अलग श्रेणी में लाता है । हालाँकि सलाम आख़िरी में कुछ ऐसी गृहणियाँ भी हैं जो वेश्यावृत्ति में शामिल हैं । सलाम आख़िरी में नियोजित वेश्यावृत्ति है जहां की वेश्याएँ विशुद्ध रूप से कोठे की मालकिन हैं । यही चकलाघरों की मालकिनें नाबालिग लड़कियों की ख़रीद-फ़रोख़्त कर वेश्यावृत्ति के दलदल में धकेलती हैं । मुरदाघर की वेशाओं में और सलाम आख़िरी की वेश्याओं एक बुनियादी अंतर यही है कि मुरदाघर की वेशाएँ चकलाघरों की मालकिनों के अधीन नहीं है । ये वे गृहणियों से वेश्याएँ बनी स्त्रियाँ हैं जिन्होंने ग़रीबी से उपज्जी दयनीयता को दूर करने के लिए वेश्यावृत्ति स्वीकार कर ली । मैना, पार्बती, नूरी, बशीरन आदि ऐसी ही गृहणियाँ हैं । जैसा संगठित और नियोजित वेश्यावृत्ति का रूप हमें सलाम आख़िरी में दिखाई नहीं देता है, मासूम बच्चियों को वेश्या बनाने वाली जैसी अमानवीय प्रक्रिया सलाम आख़िरी में है वैसी क्रूर और अमानवीय व्यवस्था हमें मुरदाघर में दिखाई नहीं देती । न्यायव्यवस्था की ढुलमुल कार्यशैली के कारण देश के दूर-दराज इलाक़ों से लड़कियों को अपहरण कर पशुओं की भाँति बेचा जाता है । यह सब क़ानून के रक्षकों की आँखों के सामने चल रहा है । क़ानून व्यवस्था की कार्यशैली का ब्यौरा देते हुए लेखिका लिखती हैं, “दो-तीन बार ऐसा भी हुआ था कि जिस समय छापा मारा गया, चकले की

मैडम भाग खड़ी हुई । नाबालिग़ लड़कियों को पुलिस कस्टडी में रिमांड होम भेज दिया गया । बाद में चकले की मालकिन स्वयं ही बच्चियों की आंटी की तरह स्वयं को पेश कर उन्हें छुड़ा लाई । एक-दो नहीं ऐसे कई केस मैं देख चुकी हूँ । सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि कोर्ट यह भी नहीं देखता है कि चकले में पकड़ी गई लड़की उसकी बेटी भी थी तो कोर्ट को कम से कम उसे नाबालिग़ वेश्यावृत्ति के अपराध में दंडित करना चाहिए, भले ही उन पर लड़की बेचने का अपराध साबित न होता हो । कुछ क़ानून का ढुलमुलापन, कुछ क़ानून का तथ्य सापेक्ष न होकर प्रमाण सापेक्ष होना...।"[12] क़ानून भी स्त्री को देहव्यापार के लिए सीधे-तौर पर अपराधी मानती है । जबकि यही क़ानून दलालों और कोठे की मालकिनों को अपराधी नहीं मानता है । वेश्यावृत्ति को बनाए रखने में दलालों और कोठे की मालकिनों की बराबर की हिस्सेदारी हैं । न्यायव्यवस्था की प्रणाली इतनी पेचीदा है कि कोई स्त्री चाहकर भी अपने आप को निर्दोष साबित नहीं कर सकती है । "इस देश में न्याय पाना ब्रह्म को पाने से भी ज़्यादा मुश्किल है । पुलिस, थाना, न्यायालय साले सब के सब बड़े-बड़े मार्केट कॉम्पलेक्स हैं ।"[13] आज के समय में साधारण व्यक्ति के लिए न्याय पाना आसान काम नहीं है । क़ानूनी प्रक्रिया इतनी खर्चीली हो गई है कि ऐसी व्यवस्था में व्यक्ति न्याय मिलता नहीं बल्कि उसको ख़रीदता है ।

सलाम आख़िरी उपन्यास अंधेरी दमघोटू गलियों के परिवेश में होने वाले अमानवीय कृत्यों को पेश करते हुए पैसों की भूख में विवेकहीन हो चुके

समाज के कृत्यों को उद्घाटित करता है । समाज की कामुकता और स्त्री को भोग की वस्तु समझने वाली सोच के परिणामस्वरूप नाबालिग बच्चियों को खेलने-कूदने वाली उम्र में अप्राकृतिक रूप से सैक्स के लिए तैयार किया जाता है । इस अमानवीय और अप्राकृतिक विधि के बारें में लेखिका लिखती हैं, "किसी भी छुकरी के उस अंग में (आँख के इशारे से समझा देती है वह कौन सा अंग) शोला (काग़ज़ का बना पदार्थ जो पानी पड़ने से ही गल जाता है, जिसे बंगाली भाषा में शोला कहा जाता है) घुसा दिया जाता है फिर उन्हें पानी के टब में बैठा दिया जाता है । जैसे-जैसे पानी में शोला फूलता है वैसे-वैसे गुप्तांगों में भी फैलाव आता जाता है ।"[14] माया वेश्या के रूप में सामंती सोच को आगे बढ़ा रही है । माया ने कोठे की मालकिनों के रूप में सैकड़ों स्त्रियों को वेश्या बना डाला हैं । परंतु माया यह सब अपनी मर्ज़ी से नहीं कर रही है बल्कि वह इसलिए नाबालिग लड़कियों को वेश्या बना रही है कि समाज में व्याप्त सैक्स के रोगियों में नाबालिग बच्चियों के प्रति अधिक आकर्षण है । वेश्यावृत्ति के होने से समाज कामुक नहीं है बल्कि समाज की कामुकता के कारण वेश्यावृत्ति बनी हुई है । परंतु अहम बात यह है कि समाज का कामुक वर्ग कभी इस तथ्य को स्वीकार नहीं करेगा है कि उसी ने वेश्यावृत्ति को सदियों से पनाह दी हुई है । मुरदाघर की वेश्याओं के साथ भी समाज, क़ानून और न्यायतंत्र बराबरी का व्यवहार नहीं करता है । मुरदाघर में पुलिस प्रशासन के उत्पीड़न हर जगह व्याप्त है , "हो गई सुबह । नहीं आया भत्तेवाला अभी तक । जो सो रही

हैं...सो रही हैं । जो जाग रही हैं...देख रही हैं सीखचों की तरफ़ । कब आएगा ? अच्छा रहता है इस तरह । भत्तेवाले का रास्ता देखो...टाइम गुज़र जाता है । उधर...बंद हो गई है नाली । भर गया है पानी...टखनों तक । धीरे-धीरे चल रहा है नल । नहाना और पाखाना...सब एक हो गए । जूठन का दालभात...साबुन की सफ़ेदी...पाख़ानों की गंदगी...तैर रहें हैं सब । छप-छप...उसी में बैठी कपड़े धो रही है एक । एक महीने से पड़ी है । तीसरा रिमांड दे दिया मजिस्ट्रेट ने । छप-छप-छप धोती है कपड़ा...गुज़ारती है वक़्त ।"[15] जो समाज स्वयं किसी स्त्री को वेश्या बनाता है । वह समाज वेश्या के साथ बराबरी का व्यवहार कभी नहीं कर सकता है । यह वही समाज है जिसने आज तक एक सामान्य स्त्री को बराबरी के हक़ नहीं दिए है तो फिर वह समाज वेश्या को कभी सम्मान कैसे दे सकता है ? समाज का बर्ताव और व्यवहार एक स्त्री से लेकर वेश्याओं तह हमेशा भेदभावपूर्ण ही रहा है । लेकिन जिस क़ानून की मूलभावना में सभी नागरिकों को समानता की नज़र से देखने का प्रावधान हो है वह क़ानून भी सौतेला व्यवहार करने लग जाए तो नई चुनौतियों खड़ी हो जाती है ।

मुरदाघर और सलाम आख़िरी का रचनाकाल अलग-अलग होते हुए भी दोनों में अभिव्यक्त समस्या एक है । मुरदाघर बीसवीं सदी के समाज में व्याप्त वेश्यावृत्ति की समस्या को प्रस्तुत करता है । वहीं सलाम आख़िरी इक्कीसवीं सदी के वेश्याओं से भरे समाज का चित्रण करता है । दो अलग समयकाल

की रचनाओं को वेश्याओं का शोषण-उत्पीड़न भरा जीवन एक साथ जोड़ता है । दशकों के लम्बे अंतराल के बाद भी मैना, बशीरन, मरियम, रमा, नलिनी, मीना, चम्पा, नूरी, कृष्णा आदि स्त्रियों के जीवन में कोई बदलाव नहीं आया है । वेश्याओं के जीवन में सकारात्मक बदलाव बल्कि बदलने की बजाए और अधिक कष्टकारी हो गया । याँ यूँ कहें कि सदियों पहले शुरू हुई स्त्री के उत्पीड़न की यात्रा आज भी जारी है । हाँ मानव सभ्यता ने विकास की ऊँचाइयों को ज़रूर छू लिया, परंतु रमा, नलिनी, मीना, चम्पा, नूरी जैसी लाखों स्त्रियाँ आज भी शोषण के दल-दल से बाहर नहीं आ पाई हैं । हमारे समाज की विडम्बना देखिए है हम जीवन की तलाश में पृथ्वी से चाँद पर पहुँच गये हैं परंतु समाज में वेश्यावृत्ति के नाम हो रहे उत्पीड़न को रोकने के लिए कोई नीति नहीं बना पाये हैं । विकास की अंधाधुँध के दौड़ ने सामाजिक ग़ैर बराबरी को कम करने की बजाए बढ़ावा ही दिया है । मुरदाघर अमानवीय जीवन जीने को मजबूर पोपट, ज़ब्बार, रमा, नलिनी, मीना, चम्पा, नूरी और कृष्णा आदि का जीवन असंतुलित विकास से उपज्जी ग़रीबी का परिणाम है । मुरदाघर और सलाम आख़िरी में अभिव्यक्त अमानवीय परिस्थितियों में अनगिनत स्त्रियाँ तंगहाल जीवन जीने को विवश की गई हैं । सोनागाछी की अंधेरी गलियों की तंगहाली का यथार्थ चित्रण करते हुए सलाम आख़िरी में लेखिका लिखती है कि, "ईश्वर की मानव को अमूल्य भेंट प्रेम और नारी की सबसे मूल्यवान संपती के ख़रीद-फ़रोख़्त ।"[16] सोनागाछी की अंधेरी गलियों में ऐसी दुनिया है बसी हुई है जिसमें

पुरुष के लिए स्त्री वस्तु भर है । संवेदनहीन सम्बन्धों की दुनिया को बेनक़ाब करते हुए मधु कांकरियाँ लिखती है, "तमाम शालीनताओं, मर्यादाओं और सम्बन्धों के मुर्दाघरों के ये रास्ते जहाँ हर आने इस सत्य से नितांत अनभिज्ञ है कि जीवन की तमाम आधुनिकता के बावजूद सेक्स तभी जीवित रहता है जब भावनाओं से जुड़ा हो वह । वरन वह सिर्फ़ मुर्दा जिस्मों के साथ हमबिस्तर भर होना है।"[17]

मुरदाघर और सलाम आख़िरी दोनों उपन्यासों में वेश्याओं के लिए रोटी की समस्या सबके जीवन एक जैसी में है । जीवन के अन्य क्रिया-कलापों को संचालित करने के लिए व्यक्ति का पेट भरा हुआ होना चाहिए । यदि व्यक्ति का पेट भूखा है तो वह जीवन की बाक़ी सम्भावनाओं के बारें में सोच ही नहीं सकता है । यही कारण है कि वेश्याओं के जीवन में रोटी का संकट वेश्याओं को तमाम तरह की यातनाओं के लिए बाध्य करता है । मुरदाघर में आजीविका की तलाश में दर-बदर की ठोकर खा रहे गरीब मजलूमों की पीड़ा यही बताती है कि ये सब बुनियादी सुविधाओं के लिए जदोजहद कर रहे हैं । "मालूम नहीं कहाँ...किस जगह...तोड़ दिए गए झोंपड़े । मालूम है सिर्फ़ इतना कि एक पीली सुबह...जब सोने वालों ने आँखें खोली...गंदी बस्ती को घेर लिया नीली वर्दी ने चारों तरफ़ से । लम्बे बेंत और डंडे । नीली गाड़ियाँ । ख़ाकी वर्दियाँ और अफ़सर । सुना दिया गया हुक्म । तोड़ दिए गए झोंपड़े । पीली रोशनी में नंगी हो गई एक दुनिया । कालिख लगे बरतन...मैली पतीलियाँ...गुदड़ियाँ...रोते हुए बच्चे...।

झोंपड़ेवाले वहाँ से आ गए यहाँ । आ गई रंडियाँ भी । बन गए झोंपड़े...एक के बाद एक...इस तरह । चौड़ी सड़क । दूसरी तरफ़...ऊँची इमारतों की लंबी क़तार । तैरती है सफ़ेद रोशनी हर वक़्त । उस साफ़ दुनिया के पास पैदा हो गई गंदी दुनिया...।"[18]

आज समाज को आधुनिक बनाने के लिए तमाम प्रकार के वैज्ञानिक आविष्कार कर रहें हैं परंतु वैज्ञानिक विकास ही दौड़ में स्त्री सबसे अधिक सामाजिक रूप से पिछड़ी हुई है । स्त्री के सामाजिक विकास के पिछड़ेपन को रेखांकित करती हुई सलाम आख़िरी में लेखिका लिखती हैं, "सभ्यता और विकास की यात्रा, कलोनिंग और इंटरनेट तक पहुँची है, पर औरत वहीं खड़ी है...अपनी देह को लिए, देह की भाषा के साथ ।"[19] मानव समाज नये-नये- आविष्कारों के माध्यम से आधुनिक बनता जा रहा है परंतु हम देख सकते हैं कि आधुनिक समाज की विकास यात्रा के रथ को कंधा देकर २१ वीं सदी तक खींचकर लाने वाली स्त्री का विकास में कोई हिस्सा नहीं है । वह आज भी अपने अधिकार और अस्मिता को पाने के के लिए संघर्ष कर रही है । सदियों से चल रहे अधिकार और अस्मिता बचाने की लड़ाई में स्त्री का सृजन और सम्पूर्णता दाँव पर लगे हुए हैं । यह अधिकार और अस्मिता का संघर्ष हमें मुरदाघर और सलाम आख़िरी की वेश्याएँ में दिखाई देता है । मीना, रमा, नलिनी, मैना जैसी लाखों स्त्रियाँ अपने जीवन में कुछ रचनात्मक काम करना चाहती हैं लेकिन समाज ने उनके जीवन के

सभी रास्ते बंद कर वेश्यावृत्ति जैसे अमानवीय और घिनौने कार्य के लिए मजबूर कर दिया ।

सब वेश्याओं की अंतिम परिणिति वेश्या के रूप में होती है । रमा की कहानी किसी फ़िल्म की नायिका जैसी है जिसने अपने प्रेमी पर ऐतबार किया उसी ने उसके विश्वास को तोड़ दिया । "आख़िर फ़िलिम की हीरोइन की तरह मैं भी घर से भागने को राज़ी हो गई । वे जोबनवा की दीवानगी के दिन थे ।"[20] उपन्यास की रमा उन सैकड़ों लड़कियों का प्रतीक है जिन्हें प्रेमी रूपी दलाल प्रेम के नाम पर उम्र भर के लिए काल कोठरियों में क़ैद कर देते हैं । "उन बाली उमरिया के दिनों मुझे लगता जैसे इससे ब्याह कर मैंने दुनिया पा ली । ऐसी कुछेक मस्त और रंगीन रातें बीती न बीती कि वह उदास रहने लगा ।"[21] रमा को प्रेम ने बहुबाज़ार के कोठे पर पहुँचा दिया । "बाँहों में भरते हुए कहने लगा, तुम्हारे लिए ही तो कर रहा हूँ, वरना गाँव में मेरे पास क्या नहीं था, ख़ैर, तुझे मैं थोड़े दिन के लिए अपनी मामी के यहाँ छोड़ देता हूँ, बहुत ख़्याल रखेगी वह तेरा...' ठीक यही शब्द थे भौसड़ी के... और वह मुझे बहुबाज़ार के किसी चकले में बेच गया । हरामी । आज भी जब-जब दिन के पहले ग्राहक के पास मैं जाती हूँ तो उसके नाम पर अपने उस मर्द पर एक बार थूक अवश्य देती हूँ ।"[22]

मुरदाघर की नई छोकरी को भी रमा की तरह प्रेम के नाम पर छलपूर्वक वेश्या बना दिया गया । "बड़ा पैसादार है छोकरी का बाप...काठियावाड़ में । ख़ूब जगह-ज़मीन...खेत...गाय...भैंस...सबकुछ । मगर छोकरी को हो गई

मुहब्बत...भागकर आ गई बंबई । मुहब्बत झूठी निकली । किसी से ले लिये कुछ रुपए और छोड़कर चला गया मुहब्बत करने वाला ।"[23] स्त्री को वस्तु समझने वाले समाज के लिए स्त्री का प्रेम, मन की पवित्रता और उसका समर्पण कोई मायने नहीं रखता है । ऐसा समाज के लिए स्त्री के प्रेम से अधिक उसकी देह महत्वपूर्ण होती है । हम देखते हैं कि दोनों कृतियों में स्त्री को वेश्या बनाने की प्रक्रिया और उसको यथास्थिति में रखने की रणनीति एक जैसी ही है । समाज स्त्री को वेश्यावृत्ति के अंतहीन चक्र में फँसाए रखने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ता है । मुरदाघर की नई लड़की शोषण से मुक्ति चाहती है वह वापिस घर लौटकर जाना चाहती है । परंतु समाज का भय उसकी हिम्मत तोड़ को देता है । "मेरा भाई...मेरा बाप...जान से मार डालेगा मेरे कू...।"[24] । सलाम आख़िरी की रमा के लिए शोषण की सबसे बड़ी वजह बनता है । रमा इस शोषण को अपने जीवन की अंतिम साँस तक सहती है, "मैं हर महीने अपने गाँव, अपने माँ-बाप को छोटे भाई-बहनों के लिए हज़ार रूपये के आसपास भेजती हूँ । यह कहकर कि मैं किसी कारख़ाने में काम करती हूँ और अठारह सौ रुपये महीने कमाती हूँ । यदि मालूम पड़ जाए उन्हें कि मैं कैसे कारख़ाने में हूँ तो मेरा मुँह तक न देखें वे....पैसा लेना तो दूर...।"[25]

सलाम आख़िरी उपन्यास वेश्यावृत्ति के साथ-साथ मानव तश्करी जैसी गम्भीर होती समस्या की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करता है । इस गम्भीर होती मानव तश्करी के निशाने पर गाँव देहात की नाबालिग़ लड़कियों होती

हैं जिनको अगवा कर उच्च दामों पर पशुओं की भाती चकलाघरों में बेची जाता है । लेखिका नाबालिग़ लड़कियों की ख़रीद-फ़रोख़्त के बारें में लिखती है "छुकरियों का रेट बहुत 'हाई' होता है । गराहकों में उनकी माँग भी सबसे ज़्यादा होती है । अरे नोट छापती हैं वे...लेकिन उनको रखने में झमेला भी उतना ही है । क़ानून...पुलिस...कचहरी...कोर्ट...सभी का ।"[26]

जब किसी स्त्री को वेश्यावृत्ति के दल-दल में फ़ंसा दिया जाता है वह स्त्री उसी दिन समाज की मुख्यधारा से निष्कासित कर दी जाती है । समाज का अहम केवल स्त्री को सामाजिक निष्कासन करने से शांत नहीं होता है बल्कि उसको शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित करके तन और मन से दूसरे कार्यों के लिए भी अक्षम बना दिया जाता है । ऐसी कम ही भाग्यशाली स्त्रियाँ होती हैं जो वेश्यावृत्ति की उत्पीड़न भरी व्यवस्था से मुक्त हो पाती हैं । ये स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति के उत्पीड़न से तो मुक्त हो जाती हैं लेकिन असुरक्षित यौनसम्बन्धों से मिली बीमारियाँ उपचार के अभाव में उनकी असमय मृत्यु का कारण बन जाती है । "यह कोई विशेष घटना नहीं यहाँ के जीवन की । आधी से ज़्यादा गरीब वेश्याओं का भाग्य ऐसा ही होता है । चालीस-पैंतालीस तक कई मर मुरा जाती हैं या अपंग या सड़-गल जाती हैं । यदि यह नहीं हुआ तो पागल या भिखारिन ही बन जाती हैं । पिंकी थोड़ा जल्दी मर गई । अरे, यदि सेप्टिक और रक्त स्त्राव से नहीं । मरती तो कुछ सालों बाद एडस या सिफ़लिस से संक्रमित होकर मर जाती । जानती है चालीस तक आते-आते बहुत सारी वेश्याएँ सड़-गल कर

तीन चौथाई मर चुकी रहती हैं, शरीर और मन दोनों से । हमारे भाग्य में न खुशनुमा बचपन है, न शांत प्रौढ़ावस्था । हमारे भाग्य में सिर्फ़ सड़क और जाँघ होती है ।"[27] सदियों से कामुक समाज द्वारा स्थापित वेश्यावृत्ति जैसी घिनौनी व्यवस्था की बदौलत न जाने कितनी ही निर्दोष स्त्रियों के सपनों की हत्या की जाती है । यह घिनौनी और अमानवीय व्यवस्था आज भी व्यापक स्तर पर जारी है । वेश्यावृत्ति समाज में बढ़ती वेश्याओं की संख्या उपन्यास की केंद्रीय चिंता है । वेश्याओं की बढ़ती संख्या ने वेश्याओं के बीच एक नई प्रतिस्पर्धा को जन्म दे दिया है । वेश्याओं की बढ़ती संख्या की वजह से पहले की तुलना में कमाई का स्तर घट गया । जिसकी वजह से वेश्याओं के बीच कम-से-कम दामों में अधिक से अधिक ग्राहकों को पाने की होड़ मच गई है । यह होड़ वेश्याओं की शारीरिक, मानसिक और आर्थिक स्थिति को प्रभावित कर रही है, "आजकल धंधा उतना अच्छा नहीं रहा...इस रास्ते में खड़ी रहनेवालियों ने रेट भयंकर रूप से गिरा दिए हैं...और हिंदुस्तानी आदमी रास्ते में पहले मुँह मारेगा । कभी-कभी यह सोचकर परेशान ज़रूर हो जाती हूँ कि मालकिन ने यदि निकाल दिया तो क्या होगा...ग्राहकों के लिए सड़क पर सस्ती रेट पर खड़ा रहना पड़ेगा...या फिर दलालों से निपटना होगा ।"[28]

यह एक आम धारणा है कि वेश्याएँ बड़े ऐशों-आराम से रहती हैं । लेकिन वेश्याओं के जीवन की हक़ीक़त, उनके जीवन की चुनौतियों का अंदाज़ा वेश्याओं के अलावा किसी को नहीं है । कहीं वेश्याओं के जीवन खाने का

संकट है तो कहीं पैसों के अभावों में लाईलाज यौनरोगों से जीवन को बचा पाने की जदोजहद है । जो शरीर युवा अवस्था में वेश्याओं के लिए आमदनी का ज़रिया होता है, एक समय के बाद वही शरीर वेश्याओं के लिए बोझ बन जाता है । वेश्याओं का ढलता हुआ यौवन और बीमारियों से जकड़ा हुआ शरीर जीवन में नई चिंताओं को जन्म देता है । जो रूप, रंग और जवानी के वेश्याओं के जीवन का सहारा होता है वह कोई शाश्वत वस्तु नहीं है । रंग, रूप और ढलते यौवन से पैदा हुई जीवन की असुरक्षा कोठे की मालकिनों को वेश्याओं के शोषण की खुली छूट देती है । बुढ़ापे के साथ रोज़ी-रोटी का संकट केवल किसी एक वेश्या के जीवन का डर नहीं है बल्कि पूरे वेश्या समाज की चिंता का कारण है । यह डर हर उस वेश्या के जीवन में बना हुआ है जो देहकर्म को जीवनयापन के लिए अपनाएँ हुए है ।

जैसा शोषण और उत्पीड़न से भरा जीवन मुरदाघर की वेश्याओं का है । वैसा ही शोषण और उत्पीड़न से भरा जीवन कोलकाता के लालबती इलाक़ों में रहने वाली वेश्याओं का भी है । वेश्याओं के जीवन में जो रोटी की समस्या मुरदाघर की मैनाबाई, मरियम आदि को जिस्म का सौदा करने को मजबूर कर रही है । वही रोटी समस्या तीन दशक के बाद नूरी, पिंकी, चम्पा, कृष्णा, नलिनी को शारीरिक शोषण के लिए बाध्य कर रही है । हम कह सकते हैं कि तीन दशक में समाज ने जैसी तरक़्क़ी की है उस अनुपात में वेश्याओं के जीवन में कोई ख़ास बदलाव नहीं आया है । लेखिका ने समाज में हुए बदलावों के साथ वेश्यावृत्ति के लिए उतरदायी कारकों की

चर्चा करते हुए वेश्यावृत्ति के संस्थागत रूप को लेकर चिंता ज़ाहिर की है । मधुकांकरिया अपनी चिंता के बारें में उपन्यास के आत्मक़थ्य में लिखती है, "पिछले उपन्यास में मुझे आत्मक़थ्य देने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी थी, पर इस उपन्यास के दौरान लेखनी जैसे हाथों से छूट-छूट जाती थी । यहाँ पग-पग पर चुनौतियाँ थीं । प्रश्नों की नुकीली नोकें थीं । श्लीलता-अश्लीलता की चाबुकें थीं । संस्कार और संस्कृति के कठघरे थे । भाषा की अनावृति का सवाल था । एक आत्मसंघर्ष निरंतर चलता रहा-क्या रहे लेखिका की लक्ष्मण रेखा ? वेश्याओं की जो दुनिया परत-दर-परत मेरी आँखों के समक्ष खुलती जा रही थी-उस दुनिया की कुरूपता, कुत्सा और भयानकता का चित्रण करने में लेखिका स्वयं को कितना डी-क्लास करे ?"[29] लेखिका वेश्याओं की दास्ताँ को ब्याँ करने के लिए, वेश्यावृत्ति की दुनिया के सत्य को जानने के लिए दलदल में उतरी है । वेश्याजीवन के सत्य को जानने और समझने के वेश्याओं के प्रति पूर्वाग्रह के मुक्त होना पड़ेगा । तभी आप वेश्याजीवन के सत्य और उनके जीवन के संघर्ष को समझ सकते हैं, "वेश्याएँ स्वयं को 20-20 रुपयों में मिनटों के हिसाब से नीलाम कर रही हैं । क्या कहा जाए इसे सभ्यता का अंत या मनुष्यता का चरम पतन, कि आज देह की सजी दुकानों में देह एक डिपार्टमेंटल स्टोर बन गई है जहाँ नारी अपने अलग-अलग अंगों का घंटों और मिनटों के हिसाब से अलग-अलग सौदा कर रही है ! इस देहबाज़ार का इतना यंत्रीकरण हो चुका है कि सभी मानवीय अनुभूतियाँ और मर्यादाएँ स्वाहा हो चुकी हैं ।"[30]

जिस सोनागाछी और बहुबाज़ार की जी मिचला देने वाली गंदगी और बदबूदार हवा में वेश्याएँ जिस्म का सौदा कर रही हैं । उस परिवेश में साधारण मनुष्य साँस भी नहीं ले सकता है । "इतनी गंदगी और ऐसा माहौल, कैसे सम्भव हो पाती होगी यहाँ प्रेम-क्रीड़ा ।"[31] सलाम आख़िरी में आधुनिकता और अतिप्राचीनता से लबालब 21वीं सदी के भारतीय समाज की ख़बर ली गई है । असमानता से भरे आधुनिक समाज में एक वर्ग विशेष है जिसके पास आधुनिक सुख सुविधाओं की कोई कमी नहीं है । वहीं दूसरी तरफ लाचार और बेबस समाज है वो लोग हैं जो दर-दर की ठोकरें खा रहें हैं । ऐसे असमानता से भरे समाज का ब्यौरा देते हुए लेखिका लिखती हैं, "एक तरफ़ विक्टोरिया मेमोरियल, विशाल राजभवन, नेशनल लाइब्रेरी, बड़े-बड़े चर्च, होटल बंगाल ताज, होटल ग्रांड, बिड़ला मंदिर, फ़ोर्ट विलियम, लाल बाज़ार थाना, कलकता म्यूज़ियम, मेट्रो रेल और गगनचुंबी अट्टालिकाएँ हैं तो दूसरी तरफ़ बजबजाती गंदगी और सड़ान्ध के बीच हज़ारों झुग्गी-झोपड़ियाँ, कीड़ों की तरह सड़क पर बिलबिलाती जिंदगियाँ । सड़क पर ही मुँह अँधेरे छुपकर नित्य कर्म से निवृत्त होते लोग । कूड़ों के ढेर से अन्न बीनते भिखारी । इसी शहर में कई शहर हैं । इसी शहर में अमेरिका है और धँसा हुआ देहात है ।"[32] समाज में व्याप्त असमानता कोई एक दिन की देन नहीं है । यह दशकों की नीतियों और अनदेखी का परिणाम है । सदियों से व्यवस्था अपने ही लोगों के साथ भेदभाव करती आ रही है । इसका प्रतिबिम्ब हमें मुरदाघर व सलाम आख़िरी में दिखाई

देता है । यह बेबसी, भूखमरी और अपराध से भरापूरा समाज आकड़ों की गिनती से बाहर है ।

यौनकर्म के विशेष परिप्रेक्ष्य में मुरदाघर और सलाम आख़िरी का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए दोनों रचनाओं के रचनाकालों को समझे बिना मुद्दे की गहराई और व्यापकता को नहीं समझ सकते । मुरदाघर के रचनाकाल के आस-पास भारतीय समाज में औधौगिकीकरण ज़ोरों पर था । 1974-75 के आसपास के समय को देखें तो पता चलता है कि उस समय ज़मीनों का अधिग्रहण कर औधौगिक विकास में तेज़ी लाने के लिए बड़े पैमाने पर कारख़ानों की स्थापना की जा रही थी । हमें समाज चल रही प्रक्रियाओं की दो प्रतिक्रियाएँ एक साथ देखने को मिल रही थी । बल्कि एक ही काम के दो परिणाम सामने आ रहे थे । विकास के नाम पर ज़मीन अधिग्रहण होने के चलते बड़े स्तर पर गाँवों के किसान मज़दूर बन गये थे । जो किसान पहले खेतबाड़ी कर अपना जीवनयापन करता था अब उसके पास जीवनयापन के लिए मज़दूरी ही एकमात्र विकल्प बच गया था । किसान से मज़दूर बने लोगों को आर्थिक विषमता की मार ने रोज़ी-रोटी की तलाश में शहरों की ओर धकेलने का काम किया । पूरे परिवार के परिवार, गाँव के गाँवों का शहरों की तरफ़ पलायन ने झुग्गी-झोपड़ियों का विकास और विस्तार तेज हुआ । विस्थापन का दंश झेल रहे पोपट, मैना, मरियम लोगों की कहानी मुरदाघर का आधार है । औधौगिक विकास के नाम पर ज़मीन से बेदख़ल

हुए लोगों के पास जीवनगत ज़रूरतों को पूरा करने के सब रास्ते बंद हो गये । अपनी रोज़मर्रा की ज़रूरतों तक को पूरा कर पाने में असमर्थ लोगों ने जीवन की बुनियादी चीजों के लिए अलग-अलग रास्तों का चुनाव किया । मुरदाघर में इसी आर्थिक अभाव से जन्मे अपराधकर्म और वेश्याजीवन का यथार्थ चित्रण है । सलाम आख़िरी में कलकत्ता के रेडलाइट इलाक़ों में उत्पीड़न का शिकार हो रही स्त्रियों की जीवनगाथा है । सदियाँ बीत जाने के बाद भी इक्कीसवी शताब्दी में समाज का एक बड़ा वर्ग जीवन की मूलभूत ज़रूरतों को पूरा नहीं कर पा रहा है । यूँ तो हक़ और अधिकर के लिए रूस से लेकर चीन और क्यूबा से लेकर वियतनाम आदि दुनिया के देशों में शोषण के ख़िलाफ़ क्रांतियाँ हुई लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि क्रांतियों के बाद भी स्त्रियों को उनका हिस्सा और अधिकार नहीं मिले । दुनियाभर में हुई क्रांतियों के बाद हक़ और अधिकर के नाम पर महिलाओं के हिस्से में लालबत्ती इलाकों का अँधेरा ही आया । 'सलाम आख़िरी' उपन्यास परम्परा के नाम पर सदियों से हो रहे स्त्री उत्पीड़न को सामाजिक विकास के केंद्र में वेश्यावृत्ति की समस्या का विश्लेषण करता है । उपन्यास असंतुलित विकास, बेकारी और पारम्परिक शिल्प के साथ घरेलू उद्योगों के विलुप्त होने से शहरों की ओर बढ़ते पलायन के मुद्दे को भी उजागर करता है ।

मुरदाघर में अभिव्यक्त हुए सामाजिक परिवेश में रहने वाले मैना, रोज़ी, मरियम, ज़ब्बार के सामने आर्थिक परेशानियों ने चुनौतियों का पहाड़ खड़ा कर दिया है जिसमें इंसान पशुओं से बदत्तर जीवन जीने को मजबूर हो गया है । समाज में आर्थिक ग़ैर-बराबरी की खाई इतनी व्यापक हो गई है कि एक व्यक्ति आलीशान गगनचुंबी इमारतों में हास-उल्लास के साथ ख़ुशी से रह रहा है । वहीं, दूसरी ओर एक ऐसा समाज है जिसके सामने दो जून की रोटी का संकट है एवं रहने का कोई ठोर-ठिकाना नहीं । ठोर-ठिकाने की आश लिए दो वक़्त की रोटी की उम्मीद में ख़ातिर मैना, मरियम, बशीरन आदि स्त्रियाँ जिस्म का सौदा कर रही हैं । मुरदाघर के सामाजिक, आर्थिक परिवेश में समाज का एक वर्ग बुनियादी सुविधाओं के लिए जी तोड़ मेहनत कर रहा है लेकिन उसके बावजूद भी दो वक़्त की रोटी जुटाने में असमर्थ है । यह मुंबई की झोपड-पट्टियों में गुजर-बसर कर रहा ऐसा वर्ग हैं जिसका क़ानून की किताब में और समाज की नज़र में कोई अस्तित्व नहीं है ।

स्त्री के वेश्या बनने के कारणों के संदर्भ में दोनों उपन्यासों की तुलना करते समय हैं हम पाते हैं कि कुछ बिंदुओं में दोनों रचनाओं में समानता ज़रूर है । दोनों रचनाओं की पृष्ठभूमि अलग होने के बावजूद वेश्या बनने के कारणों में समानता इस बात की ओर इशारा है कि समाज में वेश्या बनाने की परिपाटी एक जैसी ही है । यह इस बात का प्रमाण भी है कि सभी

स्थानों और समुदायों में स्त्री के प्रति सोच एक जैसी ही है । सलाम आख़िरी उपन्यास सीधे तौर पर लालबत्ती इलाक़ों को आधार बनाकर लिखा गया है वहीं मुरदाघर मुंबई में पूँजीवाद की देन बस्तियों के लोगों की कहानी है । दोनों रचनाओं में व्यवस्था का उत्पीड़न लगभग एक जैसा ही है । मैना, मरियम, ज़ब्बार, पोपट जैसे लोगों की न समाज में कोई गिनती है और ना ही राज्य की नज़र में वे नागरिक हैं । समाज की मुख्यधारा में पोपट और मैना जैसे लोगों कोई स्थान नहीं है । ये वे लोग हैं जो रोटी, कपड़ा, मकान की तलाश में दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं । "अँधेरे कोनों से निकल-निकलकर भाग रही हैं रंडियाँ । भाग रही हैं रेलवे-लाइन की तरफ़ । सफ़ेद रोशनी की सड़क से दौड़े आ रहे हैं पुलिसवाले । क्या करे मैना ? क्या करेगी भागकर ? मगर नहीं...जैसे एक मशीन काम करती है । भागना शुरू कर देती है रेलवे-लाइन की तरफ़ । भागी चली आ रही है नूरन भी । भाग गया उसका ग्राहक । बशीरन...दौड़ नहीं पाती...भाग रही है मगर । शांती...पारबती...ज़मीला...सब की सब । साँस फूलती जाती है । पुरानी साड़ियाँ पैरों में अटक-अटककर फटती जाती हैं । मगर भागती जा रही हैं सब । कीचड़...गड्ढे...नालियाँ...गंदगी...कूड़ा । एक बार आ जाए रेल की हद...बस । फिर लौट जाएँगे पुलिसवाले ।...लोग...देख रहें हैं तमाशा बाहर निकल-निकलकर...क्योंकि ख़ुद हैं ख़तरे से बाहर...।"[33]

ये वो लोग हैं जिन्हें समाज दुतकारता है, हिक़ारत भरी नज़रों से देखता है । क़ानूनव्यवस्था जिनका शोषण करती है । ये ऐसी स्थिति में जिनको समाज की दुत्कार और क़ानून की मार दोनों से बचना मुश्किल है । मुरदाघर में मैना और मरियम का जीवन समाज की दुत्कार और न्यायतंत्र की मार का प्रत्यक्ष उदाहरण है, "मार पड़ती है मगर ज़ुबान नहीं रुकती । आँसू बहते चले जाते हैं । चली आ रही है नूरन...चिल्लाती हुई...। साला हवलदार लोक...बदमासी किया मेरे साथ...मैं बोलेंगी बड़ा साब कू । मेरे इधर हाथ लगाया...इधर भी । साला सोने कू बोलता फुकट में ।...सब बोलेंगी साब कू ।"[34]

'सलाम आख़िरी' में मीना की वेश्या से लेकर एक कोठे की मालकीन बनने की कहानी सामाजिक व्यवस्था के कुचक्र को दिखाता है । मीना की आपबीती समाज की ग़ैर-बराबरी और औरत के प्रति समाज के बर्ताव को उजागर करती है, "घर में सदैव चिक-चिक मची रहती । हर चीज़ का टोटा-आए दिन मार-पीट । चौबीस घंटे की हाय ! हाय ! खाने वाले इतने जन और कमानेवाला सिर्फ़ बाप । एक बार बाबा (पिता) के दोस्त ने मुझे पास के ही गाँव में किसी घर में चौका-बर्तन का काम धरा दिया ।"[35] जिस मीना ने अपने परिवार की मदद के लिए चौका-बर्तन का काम चुना था उस मीना को स्त्री को भोग की वस्तु समझने वाले समाज ने वेश्या बनाकर कोठे पर पहुँचा दिया । मीना के जीवन का सफ़र वेश्या बनने के बाद केवल एक कोठे पर ही नहीं रुका बल्कि कई कोठों से होता हुआ कोठे की मालकीन

के रूप में आकर ठहरता है । "मैं चाहती तो भाग सकती थी, पर तब तक मैं भागते भागते बहुत थक गई थी । कोई बढ़िया काम मुझे आता नहीं था, चौकी-बर्तनवाली अपनी ज़िंदगी भी मुझे भूली नहीं थी, मैं सूची भी नहीं रही थी । पूरी तरह निराशा और अंधकार में डूबा मेरा मन समझ चुका था कि इन हरामखोर दुनिया से ही मुझे अब कुछ मिलना नहीं है । यहाँ सभी मर्द हरामी हैं । यहाँ सबकी लंगोटी में दाग है । ऊ मेरी ज़िंदगी का पहला ऐसा बड़ा दुःख था जिसे मैंने मन से क़बूल लिया था और उसके बाद मैं ख़ुद अपने मालकीन बन गई । अपने माँ-बाप को धियान कर उनसे मन ही मन माफ़ी माँगकर मैंने अपनी, नई बनी चकले की मालकीन द्वारा दी गई नई साड़ी पहन ली और वेश्यावृत्ति क़बूल कर ली ।"[36]

सलाम आख़िरी में मीना के माध्यम से तथाकथित संभ्रात, सभ्य और संस्कारी होने का दंभ भरने वाले समाज को बेनक़ाब किया गया है । मीना को परिस्थितियों ने वेश्या नहीं बनाया बल्कि उसे वेश्या बनाने के लिए संभ्रात वर्ग ज़िम्मेवार है । सभ्य और संस्कारी वर्ग मीना के साथ दुष्कर्म कर किसी चकले पर नहीं बेचता तो आज मीना चकले की मालकीन न होती । मीना ने जीवनगत अभावों के समर्पण कर वेश्यावृत्ति क़बूल नहीं की बल्कि पुरुष की कामुकता के कारण बलपूर्वक मीना को वेश्या बनाया गया है । हम कह सकते हैं कि मीना को परिस्थितियों ने नहीं बल्कि व्यवस्था ने वेश्या बनाया है । लेखिका का मानना है कि कोई स्त्री जन्मजात वेश्या

नहीं होती है बल्कि समाज द्वारा उसे वेश्या बनाया जाता है । जैसे कोई व्यक्ति जन्मजात भंगी नहीं होता बल्कि उसे सामाजिक व्यवस्था द्वारा भंगी बनाया जाता है । वैसे ही कोई स्त्री जन्म से वेश्या पैदा नहीं होती बल्कि पुरुषवादी समाज ही उसे वेश्या बनाता है । यह भी सत्य है कि कई स्त्रियों द्वारा अपनाई गई वेश्यावृत्ति के पीछे आर्थिक कारण भी ज़िम्मेवार होते है लेकिन उन आर्थिक कारणों का निर्माता भी हमारा समाज ही होता है ।

मधुकाँकरिया जी ने देहबाज़ार की शेयर बाज़ार से तुलना की है । जैसे शेयर बाज़ार के स्टाक ऐक्सचेंज में भाव ऊपर नीचे होते हैं वैसे ही देहबाज़ार के मार्केट (लालबती) में स्त्री के भाव ऊपर नीचे होते हैं । मुरदाघर की वेश्याओं के ग्राहक झोपड़ों के आस-पास या झोपड़ियों से आने वाले मज़दूर, रईस लोगों के गाड़ियों के ड्राईवर आदि हैं । जबकि सलाम आख़िरी की वेश्याओं के ग्राहकों में समाज के प्रबुद्ध लोग भी शामिल हैं । हालाँकि दोनों उपन्यासों की वेश्याएँ साधारण वेश्याएँ ही हैं । जिनमें मानवता है, सजगता है और संवेदनशीलता भरी हुई है । सलाम आख़िरी में सावित्री जैसी सजग वेश्याएँ भी हैं जिसमें अपने शोषण को लेकर सजगता है । जो जानती हैं कि ज़बरन वेश्यावृत्ति करवाना अपराध है । चेतना के स्तर पर सलाम आख़िरी की वेश्याएँ अधिक सजग हैं । उनकी सजगता का ही परिणाम है कि गायित्री जैसी वेश्याओं के यहाँ कोई ग्राहक मनमानी नहीं कर सकता है । इसी

सजगता के कारण हमें सलाम आख़िरी में देह के शोषण के ख़िलाफ़ एकजुटता भी दिखाई देती है ।

सलाम आख़िरी उपन्यास में प्रस्तुत कलकत्ता के लालबत्ती इलाके वेश्यावृत्ति के बाज़ार के अंश भर हैं । पूरी दुनिया में वेश्यावृत्ति का एक बहुत बड़ा बाज़ार है जिसमें निर्दोष, मासूम लड़कियों के जीवन को स्वाहा कर समाज के तथाकथित प्रतिष्ठित लोगों के जीवन और ऐशो-आराम की ज़रूरतों को पूरा किया जा रहा है । यह बाज़ार केवल सामाजिक कारणों से नहीं फल-फूल रहा बल्कि इसके पीछे राजनीतिक कारण भी हैं । देहव्यापार के अड्डों को राजनीतिक शह मिली हुई है । राजनीतिक शह के चलते फल-फूल रही वेश्यावृत्ति का विवरण सलाम आख़िरी में भी मिलता है । इसी मिलीभगत का परिणाम है कि दलाल और वेश्यावृत्ति के ठेकेदार पुलिस की गिरफ़्त से हमेशा बाहर रहते हैं । "दो-तीन बार ऐसा भी हुआ था कि जिस समय छापा मारा गया, चकले की मैडम भाग खड़ी हुई । नाबालिग़ लड़कियों को पुलिस कस्टडी में रिमांड होम भेज दिया गया । बाद में चकले की मालकीन स्वयं ही बच्चियों की आंटी की तरह स्वयं को पेश कर उन्हें छुड़ा लाई । एक-दो नहीं ऐसे कई केस मैं देख चुकी हूँ । सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि कोर्ट यह भी नहीं देखता है कि चकले में पकड़ी गई लड़की उसकी बेटी भी थी तो कोर्ट को कम से कम उसे नाबालिग़ वेश्यावृत्ति के अपराध में दंडित करना चाहिए, भले ही उन पर लड़की बेचने का अपराध साबित न हो ।"[37]

मनुष्य के सामाजिक विकास में समाज की परम्पराएँ और शासन व्यवस्था के नियम दोनों व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करते हैं । जब समाज में व्यक्ति के अधिकारों को कुचला जाता है तो क़ानून द्वारा व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा की जाती जाती है । कल्याणकारी राज्य का काम होता है कि वह कमजोर और असहाय व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा को सुनिश्चित करने के लिए कड़े क़ानूनों का प्रावधान करें । अगर किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध अनैतिक कार्य के लिए विवश किया जाता है तो क़ानून का दायित्व बनता है कि वह व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करके अपराधी को दंडित करे । लेकिन दुर्भाग्य से कलकत्ता के रेडलाइट इलाक़ों में वेश्याओं के उत्पीड़न से सम्बंधित मामलों में अपराधी बच कर निकल जाते हैं और निर्दोष को सज़ा मिलती है । यही वजह है कि अन्याय और अपराध के विरुद्ध लड़ना और न्याय पाना आसान काम नहीं है ।, "इस देश में न्याय पाना ब्रह्मा को पाने से भी ज़्यादा मुश्किल है । पुलिस थाना, न्यायलय साले सब-सब बड़े-बड़े मार्किट कॉम्प्लेक्स हैं ।"[38] हमारे समाज में व्याप्त वेश्यावृत्ति के लिए हमारा सामाजिक परिवेश उतना ही उत्तरदायी है जितनी हमारी सामाजिक परम्पराएँ और सामाजिक मान्यताएँ । यह आर्थिक और सामाजिक ग़ैर-बराबरी के विरोधाभासों से भरा हुआ परिवेश हमें दोनों रचनाओं में दिखाई देता है । ग़ैर-बराबरी के विरोधाभासों से भरे हुए परिवेश में एक ओर बजबजाती गंदगी व सड़ान्ध के बीच रहने को लोग मजबूर हैं

। वहीं दूसरी ओर कलकत्ता का सुविधा सम्पन्न सभ्य समाज है जिसके पास आलीशान घर और बड़ी-बड़ी इमारतें हैं । बड़े-बड़े चर्च और होटल हैं, वहीं सम्पन्न लोगों के लिए लाइब्रेरी है, आने-जाने के लिए मेट्रो की सुविधा है । समाज में विद्यमान सामाजिक आर्थिक ग़ैर-बराबरी ने मनुष्य के विकास की सम्भावनाओं को सीमित कर दिया है । शायद यही कारण है कि संसाधनों के अभाव में व्यक्ति अपराधी बन जाता है । सलाम आख़िरी और मुरदाघर के पोपट, मैना, जब्बार, नलिनी और ना जाने कितने गुमनाम बेबस, बेघर लोग आज की व्यवस्था में अपना अक्ष ढूँढ रहे हैं । ऐसे गुमनाम लोगों से दुनिया का हर शहर, हर कोना भरा पड़ा है ।

वेश्याओं की आर्थिक व सामाजिक स्थिति की तुलना में मुरदाघर और सलाम आख़िरी की वेश्याओं के जीवन में कोई मूलभूत अंतर दिखाई नहीं देता है । सामाजिक स्तर की बात करें तो दोनों उपन्यासों की वेश्याओं को अपमान और घृणा का शिकार होना पड़ता है । आर्थिक स्तर पर दोनों रचनाओं की वेश्याएँ शोषण की चुनौतियों से घिरी हुई हैं । सलाम आख़िरी की पिंकी और मुरदाघर की मैना के जीवनगत समस्याओं को देखने पर पता चलता है कि मैना जिन परिस्थितियों से 70 के दशक में जूझ रही थी उन्ही चुनौतियों से पिंकी आज 21वीं सदी में लड़ रही है । 70 के दशक में मैना का चुनौती भरा झोपड़पट्टियों का जीवन जिन मूलभूत ज़रूरतों को पूरा करने के लिए संघर्ष कर रहा था, 21वीं सदी में पिंकी की सीलनभरी अंधेरी कोठरी और बिखरी पड़ी गृहस्थी उसी यथास्थिति का प्रमाण है ।

ऐसी स्थितियों से यही ज़ाहिर होता है कि वेश्याओं के जीवन में कोई बुनियादी बदलाव नहीं आया है, "स्टील और अल्युमिनियम के मिले-जुले बर्तन । कोने में प्लास्टिक की पानी से भरी बाल्टी । स्टोव । कुछ डिब्बे । सिल-बट्टा । कुछ शीशियाँ । कमरे के बीच लटकती एक प्लास्टिक की डोरी, उस पर झूलती कुछ पोशाकें, कुछ सस्ते सिल्क की चमकीली, कुछ सूती । दीवार पर टँगा एक आईना । एक कोने में रात की बुझी कछुआ छाप अगरबत्ती । एक हाथ की पंखी । आईने के नीचे एक रैक । उस पर श्रृंगार के कुछ प्रसाधन । सनसिल्क शैम्पू की शीशी । सस्ते ब्रांड की लिपस्टिक, पाउडर । पलंग के दाईं ओर लकड़ी की एक अति प्राचीन अलमारी जिसका शीशा इतना दाग़दार हो चुका था कि उसमें कुछ भी देखा नहीं जा सकता था ।"[39]

जीवन की चुनौतियों के बादल सलाम आख़िरी की पिंकी और मुरदाघर की मैना के सामने एक जैसे ही हैं । "चिल्लाती है...कब होंगा तेरा वो एकच धंदा ? मेरी मैयत का पीछू ? सुबू से चूल्हा नई जला । साम से कुतिया का माफ़क रौंड मारती । एक घराक नई मिलता । मर गए सब-के-सब । रोज़ ऐसाइच । मैं क्या जिनावर हूँ बोल ना ! क्या बोला था तू...चाली में खोली लेके देऊँगा...दो बखत का रोटी...लुगड़ा...बिलाउज़...सनीमा लेके जाऊँगा...ये करूँगा...वो करूँगा । किधर गया वो सब ? गधी की गाँड में घुस गया । साला झूटा ! क्या हाल कर दिया मेरा ! आज इसके नीचू तो

कल उसके । फिर भी भूकी मरती । इधर छोकरा होटेल का सड़ेला-पड़ेला खाता । कायकू सब झूटा बात किया तू ?"[40]

मुरदाघर की गृहणियों के जीवन का संघर्ष और गृहस्थ जीवन को चलाने की चुनौतियाँ सलाम आख़िरी से कुछ कम नहीं हैं । सामाजिक अन्याय की मार, नारकीय ज़िंदगी और बच्चों के भविष्य की सुरक्षा को लेकर जो चिंता मुरदाघर में दिखाई देती हैं वैसी ही चिंता व सुरक्षा सलाम आख़िरी की वेश्याओं में भी व्याप्त है । मुरदाघर की मैना और सलाम आख़िरी की पिंकी दोनों को अच्छे से मालूम है कि वे इस वेश्यावृत्ति के दल-दल से बाहर नहीं निकल सकती है । लेकिन मैना और पिंकी अपने बच्चों को इस दलदल से बाहर निकालना चाहती है । एक माँ के रूप में मैना को राजू के भविष्य की चिंता है । मैना ने कभी नहीं चाहा कि राजू कोढ़ी लोगों के साथ रहे और समाज की फेंकी हुई झूठन खाए । यही चिंता सलाम आख़िरी की पिंकी को अपने संतान के भविष्य को लेकर है । अपने बच्चों के भविष्य को सुरक्षित करने के लिए पिंकी बिना हारे-थके घण्टों लाईन में खड़ी रहती है । विडम्बना देखिए मुरदाघर की मरियम और सलाम आख़िरी की पिंकी जिस औलाद के भविष्य को लेकर चिंतित हैं । उन्हें उन संतानों के असली बाप का नाम तक मालूम नहीं है । हालाँकि पिंकी को तो ख़ुद के पिता का भी नाम मालूम नहीं है । "मेरा पता नहीं किसकी औलाद हूँ । औलाद का पता नहीं किस बाप से है ?"[41] पिंकी का जीवन संघर्षों से भरा हुआ ज़रूर

है लेकिन पिंकी के जीवन को जीने का दर्शन बाक़ी वेश्याओं से अनोखा है । पिंकी जीवन को कल में जीने की जगह आज में ही जीने में विश्वास रखती है । "मैं जो कमाती हूँ ख़र्च कर डालती हूँ । बचाना-बचूनी मुझसे नहीं होता...अरे कल किसने देखा है ?"[42] लेकिन पिंकी का जैसा जीवन है वैसा जीवन सैकड़ों अन्य वेश्याओं का नहीं है । उन्हें आज के साथ कल भी अपने ख़र्च के साथ कोठे की मालकीन, दलाल, पुलिस आदि का भरण-पोषण करना है । मुरदाघर और सलाम आख़िरी में व्यवस्था की कालाबाज़ारी के क़िस्से उपन्यासों में भरे पड़े हैं, "फिर ई रूजगार में ख़र्च भी तो कम नहीं...कई बार दलालों एवं पुलिस के लफड़े में भी बड़ा ख़र्च होता है ।"[43]

समाज और सत्ता दोनों मिलकर वेश्याओं का शारीरिक और आर्थिक शोषण कर रहें हैं । जिस समाज और व्यवस्था की ज़िम्मेवारी कमजोर के अधिकारों की रक्षा करने की है वही व्यवस्था अन्याय में सबसे अधिक भागीदार बनी हुई है । पिंकी और मुरदाघर की रोज़ी का जीवन समाज और व्यवस्था के अन्याय और शोषण का प्रमाण है । मुरदाघर और सलाम आख़िरी में वेश्याओं शोषण और उत्पीड़न पीढ़ी-दर-पीढ़ी चल रहा है । पिंकी का जीवन वेश्याओं के पीढ़ी-दर-पीढ़ी होने वाले शोषण का साक्षात उदाहरण है, "मैं वेश्या, मेरी माँ वेश्या, बहन वेश्या, और अब यह पुत्री भी इसी दुनिया में...ईश्वर अगले जन्म में कुछ भी बना दे...चील, कौआ, साँप, गाय...पर वेश्या...नहीं ।"[44] । पिंकी वेश्यावृत्ति के सत्य को भलीभाँति समझ चुकी है और वह जानती है कि यह समाज उसकी बेटी को भी वेश्या बना डालेगा ।

परंतु वेश्या के भीतर माँ का मातृत्व बेटी से घिनौना काम करवाने की इजाज़त नहीं देता । पिंकी की यही अंतिम इच्छा है कि मेरी बेटी दल-दल से निकल जाये, "रेशमी ध्यान रखना मेरी बेटी का।"[45] पिंकी जैसी वेश्याएँ चाहकर भी अपनी अगली पीढ़ी के भविष्य को बचा नहीं सकती है । रोज़ी, मैना, मरियम, पिंकी, रेशमी, माया, गुलाबो और न जाने कितनी ही स्त्रियों का जीवन अंधेरी गलियों में बर्बाद हो रहा है । हमारे कामुक समाज ने स्त्री के भीतर के सौंदर्य को मार दिया है ।

मुरदाघर और सलाम आख़िरी दोनों रचनाओं में वेश्याओं के उत्पीड़न में समानता दिखाई देती है । साथ ही दोनों रचनाओं में वेश्याओं के जीवन की चुनौतियाँ भी एक जैसी ही हैं । समाज से लेकर न्यायव्यवस्था तक वेश्याओं के शोषण और उत्पीड़न में एक जैसी भूमिका में दिखाई देते हैं । मुरदाघर और सलाम आख़िरी में एक स्त्री को वेश्या बनाने की प्रक्रिया में समानता ज़रूर है लेकिन समय का अंतराल भी है । मुरदाघर और सलाम आख़िरी दोनों रचनाओं की सामाजिक परिस्थितियों कहीं-कहीं समानता भी दिखाई देती । अंत में हम कह सकते हैं कि दोनों उपन्यास वेश्याओं के जीवनगत अभावों और उनसे उत्पन्न परेशानियों और चुनौतियों प्रमाणिक दस्तावेज हैं ।

संदर्भ सूची-

1. मधु कांकरिया, सलाम आखिरी, संस्करण-2007, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि, नई दिल्ली-02, पृ. सं- आत्मकथ्य
2. वही पृ. सं- आत्मकथ्य
3. वही पृ. सं-13
4. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, संस्करण-2000, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली 110032, पृ. सं- 112
5. मधु कांकरिया, सलाम आखिरी, संस्करण-2007, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि, नई दिल्ली-02,पृ.सं-19
6. वही पृ.सं-38
7. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, संस्करण-2000, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली 110032, पृष्ठ सं-8
8. वही पृ. सं-9
9. मधु कांकरिया, सलाम आखिरी, संस्करण-2007, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि, नई दिल्ली-02, पृ. सं- आत्मकथ्य
10. वही पृ. सं- आत्मकथ्य
11. वही पृ. सं- आत्मकथ्य
12. वही पृ. सं-93
13. वही पृ. सं-93

14. वही पृ. सं-113

15. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, संस्करण-2000, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली 110032, पृष्ठ सं-52

16. मधु कांकरिया, सलाम आखिरी, संस्करण-2007, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि, नई दिल्ली-02, पृ. सं-14

17. वही पृ. सं-15

18. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, संस्करण-2000, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली 110032, पृष्ठ सं-7

19. मधु कांकरिया, सलाम आखिरी, संस्करण-2007, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि, नई दिल्ली-02, पृ. सं-17

20. वही पृ. सं-39

21. वही पृ. सं-39

22. वही पृ. सं-40

23. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, संस्करण-2000, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली 110032, पृष्ठ सं-53

24. वही पृ. सं-53

25. मधु कांकरिया, सलाम आखिरी, संस्करण-2007, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि, नई दिल्ली-02, पृ. सं-27

26. वही पृ. सं-29

27. वही पृ. सं-185

28. वही पृ. सं-30

29. वही पृ. सं- आत्मकथ्य

30. वही पृ. सं- आत्मकथ्य

31. वही पृ. सं-110

32. वही पृ. सं-94

33. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, संस्करण-2000, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली 110032, पृष्ठ सं-30

34. वही पृ. सं-31

35. मधु कांकरिया, सलाम आखिरी, संस्करण-2007, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि, नई दिल्ली-02, पृ. सं-35

36. वही पृ. सं-36

37. वही पृ. सं-93

38. वही पृ. सं-93

39. मधु कांकरिया, सलाम आखिरी, संस्करण-2007, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि, नई दिल्ली-02, पृ. सं-102

40. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, संस्करण-2000, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली 110032, पृष्ठ सं-16

41. वही पृ. सं-103

42. वही पृ. सं-104

43. वही पृ. सं-104

44. वही पृ. सं-184

45. वही पृ. सं-184

अध्याय- पाँच

मुरदाघर और सलाम आख़िरी की भाषा और शिल्प

शिल्प के माध्यम से उपन्यासकार अपने चिंतन-दर्शन और विषयवस्तु को अभिव्यक्ति प्रदान करता है तथा भाषा के माध्यम से रचनाकार पाठक को पात्रों की संवेदना से सहज रूप से जोड़ पाता है । या यूँ कहें की भाषा ही वह माध्यम है जिसके तहत पाठक रचना से जुड़ता है । भाषा द्वारा रचनाकार रचना के परिवेश को प्रस्तुत करता है । इसके लिए रचनाकार के ज़हन में रचना को मूर्त रूप देने के लिए शिल्प के अंतर्गत आने वाली कथावस्तु, चरित्र चित्रण, देशकाल. संवाद, भाषा शैली और उद्देश्य होता है । रचना में वह जिस समस्या को लेकर बात कर रहा है उसको निश्चित रूप से रचनाकार निम्न बिंदुओं के पैमाने पर फ़ीट करके एक साँचे में से गुज़ारकर रचना को पूर्णता प्रदान करता है । हम रचना को पूर्णता प्रदान करने वाली कसौटी के आधार पर मुरदाघर और सलाम आख़िरी की भाषा और शिल्प पर बात करेंगे ।

मुरदाघर और सलाम आख़िरी दोनों ही रचाओं के केंद्र में वेश्यावृत्ति की समस्या है लेकिन दोनों रचनाओं का रचनाकाल और पृष्ठभूमि अलग अलग है । इंद्रनाथ मदान जी के अनुसार फ़ुटपाथ पर लेटे इन लोगों की ज़िंदगी उठ नहीं सकती, खड़ी नहीं हो सकती है और इसे भोगनेवाला और देखने वाला सह रहा है । इन दोनों में इतनी जड़ता आ चुकी है कि इस जड़ता

को रोशन करना लाज़मी हो गया है । “जगदम्बाप्रसाद दीक्षित” जी ने मुरदाघर में इसी जड़ता को अपनी तराशी हुई लयात्मक बम्बईया हिंदी के माध्यम से रोशन सभ्य समाज की सभ्यता पर से पर्दा उठाया है । “जगदम्बा प्रसाद दीक्षित” ने मुंबई महानगर की झोपड़पट्टियों के जीवन को आधार बनाकर मुरदाघर की रचना की है । लेखक ने सफ़ेदपोश दुनिया के समानांतर मुंबई महानगर की सड़ान्ध भरी घिनौनी दुनिया के जीवन को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है जो पाठक की चेतना व संवेदना को झकझोरता है । लेखक ने मुरदाघर के माध्यम से विकास की हक़ीक़त को उजागर करते हुए औधौगिक क्रांति की खबर भी ली है जिसने शुरुआत से ही समाज में विषमता का बीज बोकर महानगरों में झोपड़पट्टियाँ का निर्माण किया है । यही नहीं लेखक ने रचना के माध्यम से उस पहलू पर भी प्रकाश डाला जहां औधौगिक कारख़ानों के चलते गाँव के गाँवों को विकास के नाम पर उजाड़ा गया और खेतिहर वर्ग को मज़दूर बना डाला । परम्परागत व्यवसाय और पुश्तैनी ज़मीन छीन जाने से हज़ारों की तादाद में लोग बेरोज़गार और बेघर हो गये । मुरदाघर इस विस्थापन से उपजी दयनीयता का शक्तिशाली चित्रण है । लेखक ने दयनीयता का चित्रण अनेक पात्रों के माध्यम से पाठक के सम्मुख अभिव्यक्त किया है । हाँ, रचना का कोई मुख्य नायक नहीं है बल्कि यूँ कहें की, अपनी-अपनी परिस्थितियों से टकराते हुए अपनी बेबसी को अभिव्यक्त करने के लिए उपन्यास के सभी पात्र नायक हैं ।

“जगदम्बा प्रसाद दीक्षित” ने ‘मुरदाघर’ में समाज के निचले स्तर पर जीवन बसर कर रहे कोड़ियों, भिखारियों, गृहणी वेश्याओं का सजीव और रोंगटे खड़े कर देने वाला चित्रण किया है । मुरदाघर में वेश्यावृत्ति की समस्या को यथार्थवादी ढंग से अभिव्यक्त करते हुए यौनकर्म के लिए ज़िम्मेवार सभी पहलुओं को रचना में जगह देते हुए मुख्य रूप से आर्थिक विषमता को ही यौनकर्म के लिए ज़िम्मेदार माना है । समाज में व्याप्त अपराध, भ्रष्टाचार ग़रीबी आदि आर्थिक शोषण के लिए ज़िम्मेदार हैं । जिसके कारण समाज का एक बड़ा वर्ग फेंकी हुई झूठन को खाकर ज़िंदा रहने को मजबूर है । लेखक का स्पष्ट मानना है कि आर्थिक ग़ैर-बराबरी का समाधान व्यवस्था के मूलभूत ढाँचे में परिवर्तन करके ही किया जा सकता है ।

‘मुरदाघर’ में “जगदम्बा प्रसाद दीक्षित” ने झोपड़पट्टी में रहने वाले लोगों की विवशता भरे नारकीय जीवन का जैसा चित्रण किया है, वैसा चित्रण हिंदी उपन्यास परम्परा में बहुत कम ही देखने को मिलता है । नारकीय जीवन जीने को अभीशप्त पात्रों की परिस्थितियों को उपन्यास के क़थ्य में भाषा के नये तेवर के साथ प्रस्तुत किया है । समाज की गंदी बस्तियों की सड़ान्ध और बेबसी को अभिव्यक्त करने के लिए इससे अद्‌भुत और उपयुक्त दूसरा शिल्प नहीं हो सकता था । लेखक ने उपन्यास में चित्रात्मक शैली द्‌वारा मानवीय संवेदनाओं के जिन पक्षों को उद्‌घाटित किया है वे उपन्यास को जीवंत और कालजयी बना देते हैं ।

भाषा और शिल्प पर बात करने के क्रम में दूसरी रचना मधु कांकरियाँ द्वारा लिखित सलाम आख़िरी उपन्यास है । यह रचना भी वेश्यावृत्ति समस्या पर आधारित है । सदियों बाद भी वेश्यावृत्ति की जड़े कमज़ोर होने की बजाए और गहरी होती जा रही हैं । समाज में वेश्याओं की बढ़ती संख्या लेखिका की मुख्य चिंता है । इस चिंता को ज़ाहिर करते हुए उपन्यास के आत्मक़थ्य में लेखिका लिखती हैं कि, "इन लालबत्ती इलाकों की संख्या खतरनाक गति से बढ़ रही है । पहले इने-गिने इलाके थे और वेश्याएं भी शाम ढले निकलना शुरू होती थीं । आज इलाके बहुत बढ़ गए हैं, और सुबह से लेकर गहराती रात तक गलियों के मुहाने तक ग्राहकों के इंतजार में प्रतीक्षा करतीं और कमर दुखाती जीवन से थकी-ऊबी, लिपी-पुती किशोरियां मिल जाएंगी । राष्ट्रीय महिला आयोग, 95-96 के अनुसार भारत के महानगरों में दस लाख से भी अधिक वेश्याएं हैं और पिछले साल से इसमें 20 प्रतिशत इजाफा हुआ है । इस समाचार पर गंभीर विचार करना तो दूर, संभ्रांत वर्ग यह मान बैठा है कि वेश्यावृत्ति बंद नहीं हो सकती । एक बौद्धिक से पूछा गया, 'क्या वेश्या उन्मूलन संभव है?' उसने जवाब दिया, 'हां, संभव है, पर वह उसी प्रकार का होगा जिस प्रकार कि 'सोसाइटी विदाउट ए गटर ।' इस भावशून्यता एवं भावनात्मक क्षरण के जवाब में यही कहा जा सकता है कि जनाब कभी यही तर्क दास प्रथा के लिए भी दिए जाते थे ।"[1]

लेखिका ने “सलाम आख़िरी” समाज में समानांतर चल रहे दो मार्केट एक ‘सट्टा बाजार और दूसरा कोठेवालियों का देह बाजार, के माध्यम से समाज में मनुष्यता के नैतिक पतन को उजागर किया है । लेखिका ने सलाम आख़िरी उपन्यास में 28 उप-कथाओं के माध्यम से बताया है कि सट्टा बाज़ार की मार्केट की तरह भारतीय समाज में सदियों से पोषित देह-व्यापार की मार्केट में कोई कमी नहीं आई है । “यह दुनिया कलकत्ता महानगर के विभिन्न दरवाजों - सोनागाछी, बहू बाजार, कालीघाट, बैरकपुर, खिदिरपुर आदि में खुलती है ।”[2]

भाषा तथा शिल्प के लिए कथावस्तु, चरित्र चित्रण, संवाद, देशकाल, भाषा शैली और उद्देश्य के आधार पर मुरदाघर और सलाम आख़िरी दोनों कृतियों का मूल्याँकन ज़रूरी है । इसके रचना का सहज होना भी ज़रूरी है । जब वह रचना सहज होगी तभी वह पाठक के लिए ग्रहणीय होगी । यह सहजता ही रचना का प्राण होती है जिसके लिए सहजता का उतना ही भाषा और शिल्प में अभिव्यक्त होना ज़रूरी है । यह सहजता ही रचना को विशिष्ट बनाती है । इन सबके लिए आवश्यक है कि भाषा और शिल्प का पात्रों और परिवेश के अनुकूल होना । मुरदाघर और सलाम आख़िरी भाषा के परिप्रेक्ष्य में यथार्थवादी रचनाएँ हैं । दोनों ही रचनाओं के रचनाकारों ने वातावरण, चरित्र और उद्देश्य को लेकर भाषा का निर्माण किया है जिसमें रचना का परिवेश भाषा के अनुरूप नहीं बल्कि भाषा परिवेश के अनुरूप है

। जब परिवेश भाषा के अनुरूप नहीं बल्कि भाषा परिवेश के अनुरूप होगी तभी वह रचना भाषा के माध्यम से यथार्थवादी सामाजिक परिवेश को अभिव्यक्त कर पाती है । इसके लिए चरित्र के संवाद, चरित्र के मनोभावों और परिस्थितियों के अनुरूप हो, वही रचना यथार्थवादी मानी जाती है । मुरदाघर और सलाम आख़िरी दोनों रचनाएँ निम्नवर्गीय लोगों की पीड़ा, अभाव, जीवन की दयनीयता की सच्चाई को मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त कर रही हैं ।

कथावस्तु:- रचना की कथावस्तु में घटनाओं, वर्णनों, और चरित्रों की अहम भूमिका होती है । रचना की सार्थकता के लिए रचनाकार उसी परिवेश की घटनाओं और चरित्रों का चयन करता है जिस परिवेश से रचना सम्बंधित होती है । इसी कड़ी में देखें तो मुरदाघर की कथावस्तु का आधार अनियोजित औधौगिक विकास के कारण समाज में आई विषमता और विपन्नता है । अनियोजित औधौगिक विकास के दुष्परिणामों के कारण गाँवों के उजड़ जाने से सामान्य लोगों के जीवन में जो अस्थिरता आई है और शहरों की ओर पलायन बढ़ा तथा गंदी बस्तियों और झोपड़पट्टियों का तेज़ी से निर्माण हुआ । मुरदाघर में इन गंदी बस्तियों में रहने वाली महिलाओं, मज़दूरों की दयनीयता के साथ ऊँची-ऊँची इमारतों में रहने वाले मध्यम वर्ग की समाज के प्रति उदासीनता और विलासिता की कहानी है । उपन्यास की पूरी कहानी ऐसे पात्रों के आस-पास घूमती है जो व्यवस्था के उत्पीड़न का शिकार हैं ।

वेश्यावृत्ति की समस्या ने समय के साथ विकराल रूप धारण कर लिया है । उपन्यास में वर्णित सभी घटनाओं को देखें तो सारी घटनाएँ एक दूसरे की पूरक हैं जिसमें एक ओर समाज का विद्रूप यथार्थ है तो दूसरी ओर राज्य की संस्थाओं का अमानवीय रूप है । लेखक ने पूरी ईमानदारी के साथ वेश्याओं के शोषण को उजागर करते हुए पुलिस से लेकर कचहरी तक की अमानवीय और क्रूर व्यवस्था के ऊपर प्रश्न चिन्ह लगाया है । सलाम आख़िरी की कथावस्तु का आधार वेश्यावृत्ति रूपी सड़न है जो युगों-युगों से हमारे समाज में व्याप्त है । हम उस सड़न में साँस ज़रूर लेते हैं लेकिन अपनी संवेदनहीनता और कठोरता के चलते उसको महसूस नहीं करते हैं । समाज में व्याप्त वेश्यावृत्ति की सड़ान्ध के बारें में मधु काँकरिया उपन्यास के आत्मक़थ्य में लिखती है, "नारी का अर्थ सृजन, प्रकृति और संपूर्णता है तो आज इस बाज़ार में तीनों ही नीलाम हो रहें हैं और यह नीलामी जीवन की नसतोड़ यंत्रणाओं और भूखमरी की कोख से उपजती है । जाने कैसे एक आम धारणा लोगों में है कि वेश्याएँ ठाट-बाट से रहने के लिए यह रास्ता अपनी इच्छा से पकड़ती हैं । यह सत्य उतना ही है जितना पहाड़ के सामने राई ।"[3] वे आगे लिखती हैं, "मैं यह बात ज़ोर देकर कहना चाहती हूँ कि भारत में लालबत्ती इलाक़ों की स्थितियाँ कुप्रिन के चित्रण से न केवल भिन्न वरन कहीं ज़्यादा यांत्रिक, भयावह, कुत्सित एवं कुरूप हैं ।"[4] मधु काँकरियाँ ने समाज में व्याप्त वेश्यावृत्ति की समस्या की ओर समाज का

ध्यान खींचा है जिसका मानना है कि वेश्यावृत्ति की समस्या केवल हमारे यहाँ की समस्या नहीं है ।

वेश्यावृत्ति का सवाल हमारे समाज में युगों-युगों से बना हुआ है । ये ज़रूर कहा जा सकता है की समाज में वेश्यावृत्ति की समस्या को लेकर उतनी गम्भीरता से कभी बात नहीं हुई है जितनी गम्भीर वेश्यावृत्ति समस्या है । हाँ हिंदी साहित्य में जगदम्बा प्रसाद दीक्षित व मधु काँकरिया ने मुरदाघर और सलाम आख़िरी में वेश्यावृत्ति को गम्भीरता और व्यापकता के साथ अभिव्यक्त किया है । दोनों ही रचनाओं में घटनाओं, चरित्रों और वर्णनों के माध्यम से नारी के जीवन से जुड़ी समस्या के साथ उस समाज निष्ठुरता पर भी सवाल खड़ा किया गया है । उपन्यास की घटनाओं और वर्णनों में केवल वेश्याजीवन का दर्द भोग रही महिलाओं की कहानी भर ही नहीं है बल्कि उस जीवन का अनुभूत सत्य है जिसमें मनुष्य जानवर से भी बदतर जीवन जीने को मजबूर है । वेश्यावृत्ति के सभी पहलूओं को रेखांकित करते हुए वेश्याओं परिवेश का यथार्थवादी चित्रण करते हुए लेखिका लिखती है, “ऐन गली के बीचोंबीच कई अधेड़ वेश्याएँ सिर्फ़ पेटीकोट और ब्लाउज पर गमछा डाले अपने-अपने मित्रों के साथ इत्मीनान से ताश के पत्ते फेंट रही थीं । किसी पुरुष मित्र ने सस्ती भाव-भंगिमाओं के साथ फ़िल्मी गाने की एक पैराडी सुनाई थी, सावन का महीना पवन करे शोर, बाहर कैसे निकलूँ चड्डी ले गया चोर” जिसे सुनकर सब ख़ुशी से चहक पड़ी थी ।”[5] वेश्याओं के परिवेश का यथार्थ वर्णन करते हुए लेखिका लिखती है, “कुछ दूरी पर

एक अधमरे से नल के नीचे कोयले का मंजन करती एक तरुणी वेश्या, किसी दूसरी गृहस्थिन सी लगती, बर्तन धोती स्त्री से बतिया रही थी । नुक्कड़ पर बगल की चाय की दुकान से चाय का कुल्हड़ लेकर चाय सुड़कती एक रूपजीवा । कई लगातार खड़ी-खड़ी थककर बेदम हुई वहीं फ़र्श पर ही उकड़ूँ बैठी हुई । पास में ही मूँज की खटिया पर सिर्फ़ छापेदार लुंगी को हाफ़ पैंट जितनी ऊँची कर पसरा हुआ कोई फ़ुरसतिया । पीछे एक हैंडिल टूटा ट्रांज़िस्टर बजता हुआ । एक पूरी चिक-चिक, खटर-पटर, चहल-पहल और शोर-शराबे से भरपूर जीवंत गली जिसके मुहाने पर ऊबी हुई, प्रतीक्षारत, भविष्यहीनता की मारी आठ-नौ रूपजीवाएँ । देह की भाषा बोलती हुई, भोगो, भोगो, मुझे भोगो ।"[6] मधु कांकरियाँ ने वेश्याओं के रोज़मर्रा के जीवन का जैसा मंजर प्रस्तुत किया है, वह पाठक को झकझोर देता है । जैसे परिवेश और परिस्थितियों में वेश्याएँ हर रोज़ जीवन का एक-एक पल काट रही हैं उस परिवेश और परिस्थितियों में सामान्य व्यक्ति एक पल भी नहीं ठहर सकता है ।

मुरदाघर उपन्यास समाज की तलछट में रहने को मजबूर किये गये लोगों की पीड़ा व दर्द की हक़ीक़त को ब्या करता है । वेश्यावृत्ति के साथ-साथ पूँजीवाद के घिनौने चरित्र को उजागर करते हुए समाज की तलछट में रहने को मजबूर किये हुए लोगों स्थिति को जगदम्बा प्रसाद जी अपनी लेखनी

से कुछ यूँ ब्या किया है, "कचरे का पुराना ढेर और एक पागल आदमी...घूम-घूमकर ढूँढता रहता है कुछ...कभी नहीं मिलता ।

डूबती हुई शाम निकल गई दूर । क़तार...बरतनों की...बहुत लंबी । नल...भीड़ में खोए बच्चे की तरह रोता हुआ...।

तेज़ हवा का झोंका...तेज़ बदबू । कोढ़ी...गली उँगलियोंवाला...दोनों हथेलियों में दबाकर कुछ खाने की कोशिश करता है । एक लँगड़ी कुतिया चाटती जाती है खुजली की चमड़ी को । निकल जाते हैं सामने से सूअरों के पिल्ले । कचरे के ढेर पर जली हुई सिगरेटें...जूठन...आवारा लड़के । ढूँढता जाता है पागल आदमी...कुछ नहीं मिलता ।"[7] जिस समाज में व्यक्ति झूठन खाकर जीवित हो वह सभ्य और समृद्ध समाज तो क़तई नहीं हो सकता है । समाज की विषमताओं के बारें में "जगदंबा प्रसाद" आगे लिखते हैं, "दुखता है ज़ख़्म और रिश्ता जाता है । फिर कट गया कोई रेल की पटरियों पर । आदमी या जानवर...कोई फ़र्क़ नहीं । मँडरा रहें हैं कौवे...कुत्ते । गटर के पास...एक पागल औरत और एक पागल दुनिया...चीख़ रहे हैं दोनों । मैनाबाई...खाँसी के बाद सड़क पर फेंका गया बलगम । बीमार औरत...रंड़ी । देती जाती है गालियाँ...मर्द को...बच्चे को...सारी दुनिया को । फैलता जाता है अँधेरा ।"[8] समाज में विषमताओं की खाई इतनी गहरी हो गई है जिसकों पार कर पाना पोपट और मैना जैसे हज़ारों-लाखों लोगों के लिए मुश्किल ही नहीं बल्कि असंभव है ।

वेश्यावृत्ति की समस्या समाज में सदियों पुरानी है और यह समस्या समय के प्रवाह के साथ-साथ कम होने की बजाय और अधिक बढ़ी है । 1899 में "किशोरी लाल गोस्वामी" का 'कुसुम कुमारी' उपन्यास वेश्यावृत्ति पर लिखित पहला उपन्यास है । 1918 में प्रेमचंद 'सेवासदन' में सुमन के माध्यम से वेश्यावृत्ति की समस्या को उठाते हैं । 'दिव्या' में यशपाल, 'त्यागपत्र' में जैनेन्द्र, 'सुहाग के नुपूर' में अमृतलाल नागर तथा 'आज बाज़ार बंद' है से लेकर 2005 तक आते-आते "मोहनदास नैमिश्राय" समाज में ज्यों-की-त्यों बनी हुई "वेश्यावृत्ति की समस्या"

के बारें में लिख रहे हैं । विकास की सदी कही जाने वाली इक्कीसवीं सदी में भी वेश्यावृत्ति की समस्या का दिन रात विस्तार हो रहा है । मानव समाज जैसे-जैसे विकास की सीढ़ियाँ चढ़ता रहा है, उसकी चेतना का उतना ही पतन होता गया है । पहले के मुक़ाबले पूँजीवाद के दौर में स्त्री की स्थिति और अधिक दयनीय हो गई है । मानव समाज जितना सभ्य होने का दंभ भर रहा है समाज में वेश्यावृत्ति का जाल उतना ही फैलता जा है । औधौगिक विकास से उत्पन्न हुई असमानता और विषमताओं की खाई ने इक्कीसवीं सदी की गृहणियों के लिए परिस्थितियाँ और भी अधिक भयावह बना दी है । मधु काँकरिया जिस दौर में लिख रही हैं वह दुनिया की इक्कीसवीं सदी है, जिसमें एक ओर मानव समाज चाँद आदि दूसरे गृहों पर जीवन की तलाश में जुटा हुआ है । उसी दौर में धरती पर सलाम आख़िरी की पिंकी और नूरा जैसी हज़ारों स्त्रियाँ जीवन की बुनियादी ज़रूरतों

को पूरा करने के लिए जिस्म का मोलभाव कर रही हैं । यह कैसा आधुनिक समाज है ? यह कैसा विकास है ? और किसका विकास है ?

बीसवीं सदी में "जगदम्बा प्रसाद दीक्षित" जिस की समस्या के बारें में समाज को आगाह कर रहे थे । उस समस्या ने इक्कीसवीं सदी में और अधिक विकराल रूप धारण कर लिया है । बीसवीं सदी के औधौगिक विकास ने समाज में समानता की जगह असमानता का बोलबाला बढ़ा है और इस असमानता का सबसे अधिक असर समाज की उन स्त्रियों पर हुआ जिनके कंधों पर परिवार के पालन पोषण की ज़िम्मेदारी थी । यह बीसवीं सदी का वह औधौगिक काल है जिसने किसान को मज़दूर बना दिया और गृहस्थ स्त्री को वेश्या बना दिया । अनियोजित औधौगिक विकास ने स्त्रियों के सामने भूख, बेबसी और विवशताओं से भरी हुई ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित कर दी जहां एक स्त्री देह बेचकर भी दो जून की रोटी नहीं जुटा सकती है । "सुबू से चुल्हा नई जला । साम से कुतिया का माफक रौंड मारती । एक घराक नई मिलता । मर गए सब-सबके-सब । रोज़ ऐसाइच ।"[9]

जो पहले स्त्री सामंती प्रताड़ना की शिकार थी आज के आधुनिक समाज में वह वह भूख के आगे बेबस हो गई है । स्त्री के जीवन में विपदाओं का चक्र थमने का नाम ही नहीं ले रहा है । सदियों की यात्रा कर मानव समाज ने विकास के नाम पर अनेकों कीर्तिमान स्थापित किये, किंतु विकास यात्रा में स्त्रियों के जीवन में कोई मूलभूत बदलाव नहीं आया है । आधुनिक सदी में हुए बदलावों और स्त्रियों की स्थिति के बारे में मधु कॉंकरिया लिखती

हैं “यह बेरूह दुनिया हयूमैन क्लोनिंग और इंटरनेट तक पहुँच जानेवाली...यह दुनिया क्या महिलाओं से इंसान की तरह पेश आना कभी सीख पाएगी ?”[10]

शिल्प की दृष्टि से बात करें तो एक रचना में पात्रों के क्रिया-क्लाप, हाव-भाव, वेशभूषा आदि मिलकर ही विषय से सम्बंधित कथावस्तु का निर्माण करते हैं । इसलिए पात्रों का कथावस्तु के अनुरूप होना विषय की विश्वसनीयता के लिए आवश्यक होता है । मुरदाघर और सलाम आख़िरी के सामाजिक परिवेश में पात्र अपनी-अपनी परिस्थितियों से जूझ रहें हैं तथा उसे अपने-अपने क्रिया-कलापों के माध्यम से भलीभाँति प्रस्तुत कर रहे हैं । मैना, पोपट, ज़ब्बार, मरियम, बशीरन, रोज़ी, हसीना, पिंकी, नूरी, कृष्णा, नलिनी, जूली, चम्पा, आदि सभी पात्र विवशता भरे जीवन से मुक्ति के लिए संघर्षरत हैं । आर्थिक अभावों और अमानवीय स्थितियों में कहीं-कहीं सम्बंधों में चिड़चिड़ाहट भी दिखाई देती है लेकिन मुरदाघर और सलाम आख़िरी के पात्र नितांत अभावों और दमघोटू जीवन के बावजूद भी करुणा से परिपूर्ण आचरण करते दिखाई देते हैं । मुरदाघर में पोपट और मैना का संवाद आर्थिक बेबसी से उपज्जी हताशा और निराशा को अभिव्यक्त कर रहा है । “चिल्लाती है ।...मेरे कू नई मँगता तेरा हज़ार रूपिया । अपनी माँ के भोक में डाल...।

-तेरा येच बात तो मेरे कू पसंद नई...।

-पसंद नई तो जो करने का है वो कर...।

-मेरे कू कुछ करने का नई । ख़ाली दस रूपिया मँगता ।

-दस रूपिया मँगता तो जाके मरा । मेरे कने नई । मेरे से बात मत कर ।

-तेरे कू ख़ुद कू ज़रूरत लगेंगा तो सब निकल आएँगा । मेरे वास्ते हमेसा नई बोलेंगी । मैं कुछ भी करेंगा तो पेलाच नाट लगा देंगी । मेरे कू रूपिया मँगताच...।

-रूपिया इधर तेरा बावा कमाके नई लाया...।"[11]

मुरदाघर में लेखक ने पात्रों के माध्यम से हताशा और निराशा भरे परिवेश का चित्र खींचा है । यह ऐसा परिवेश है जिसमें जीवन की चुनौतियाँ हर पल बढ़ रही हैं । जीवन के अभावों ने अभिलाषा और सपनों को सोख लिया है । "कायकू आया इधर ?

चुपचाप खड़ा है पोपट । सिर्फ़ राजू बोलता है...तेरे कू ले जाने कू आया माँ !

बहुत धीरे-धीरे बोलती है मैना ।...कायके वास्ते ले जाएँगा उधर ? भूका मारने का वास्ते ? मेरा जान मारने का वास्ते ?"[12] पोपट के माध्यम से लेखक ने एक साधारण व्यक्ति के सपनों को व्यक्त किया है । एक आम व्यक्ति की भाँति पोपट के भी सपने हैं । मैना को पुलिस पकड़कर थाने में ले जाकर बंद कर देती है तब पोपट का एक पति के नाते अपनी पत्नी को छुड़वाना सामान्य मानवीय व्यवहार को दर्शाता है । लेकिन हवालात में

पति-पत्नी का झगड़ा जीवन की विवशताओं को दर्शा रहा है । "नई ! मैं तेरे कू इधर नई रहने दूँगा ।

-तू नई रहने देंगा ? तू होता कौन है ? नई जाना मेरे कू । इधरिच रहने का है ।

-नई ! में बोल दिया साब लोक कू कि हम ग़रीब है...पन सरीफ लोक है । मेरा ओरत रंड़ी नई...सरीफ ओरत है । हाजी सेठ के कारकून का आदमी भी येच बात बोला...कि तुम उसको ग़लती से पकड़ा...।

-तेरे बोलने से क्या होता ! मैं रंड़ी हूँ...सब लोक कू मालम । मैं ख़ुद बोलती...मैं रंड़ी हू ।...और तू...मेरा मरद होके मेरे से अइसा काम करवाता...मेरी कमाई खाता...।"[13]

उपन्यास में पात्रों के जीवन का चरित्र का चित्रण सार्थकता के साथ हुआ है जिसने उपन्यास में सजीवता का संचार कर दिया । जो उपन्यासकार के रचनाकर्म की सफलता का परिचायक है । उपन्यास के पात्र विशेष परिस्थितियों में भी मानव जैसा आचरण कर रहे है तथा उपन्यासों में जिस विषय और समाज को आधार बनाया गया है, दोनों उपन्यासों (मुरदाघर और सलाम आख़िरी) के पात्र विषयवस्तु के अनुरूप व्यवहार करते दिखाई देते हैं । उपन्यासों के पात्र अमानवीय परिस्थितियों से जूझते हुए भी संवेदनशील और सजग हैं । कृति अपने उद्देश्य को पूरा कर रही है जो रचना व रचनाकार को साहित्यिक दृष्टि से अमरता प्रदान करता है ।

"जगदम्बा प्रसाद दीक्षित" जी ने मुरदाघर के माध्यम से सफ़ेदपोश दुनिया, कोढ़ियों, भ्रष्टतंत्र का अमानवीय चेहरा, हवालात, कचहरी और महानगरों की झुग्गी-झोपड़ियों से निर्मित गंदी बस्तियों के जीवन को अभिव्यक्त कर पूरी व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है । इस भ्रष्टतंत्र ने समाज के एक वर्ग को दमघोटू जीवन जीने के लिए हाशिये पर धकेल रखा है । लेखक ने मुरदाघर के पात्रों की कथावस्तु से साम्यता बिठा कर विषय को और अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है । "दो हमाल । नीली और लाल क़मीज़ें । बता रहे हैं...कैसे मरा पोपट ।...कुछ सामान था उसका पास । चोरी से लाया । पेला सामान फेंका...फिर ख़ुद कूदा...चलती गाड़ी से । उधर से आ गया दूसरा गाड़ी...लोकल ।...इधर उठाके लाया...तभी जान था उसमें । पानी मँगता था बार-बार । कोई नई दिया । कोन देंगा ! मर गया तो अपना ऊपर आएँगा । आधा कलाक* पड़ा होता इधर । पीछू मर गया । कोई पिछानता नई था उसकू इधर । पीछू वो हिजड़ा लोक देखा उसकू...।"[14] लेखक ने पोपट की मृत्यु पर हमीलो के माध्यम से समाज की असंवेदनशीलता और इंसानियत के पतन की चरम सीमा को चित्रित किया है । हमारा समाज कितना असंवेदनशील हो गया है कि एक व्यक्ति मृत्युशय्या पर लेटा हुआ पानी के लिए तड़प रहा है लेकिन कोई उसे पानी देने वाला नहीं है । क्या हमने इसी सभ्य समाज का सपना देखा था ? समाज की संवेदना और हिम्मत कहा चली गई है ?

सलाम आख़िरी की कथावस्तु कलकत्ता के लालबत्ती इलाक़े पर आधारित है । यह वो इलाक़े हैं जो वेश्यावृत्ति के केंद्र हैं । उपन्यास की पूरी कहानी इन्हीं इलाक़ों के इर्द-गिर्द घूमती है । यह वो इलाक़े हैं जहाँ वेश्याओं को सभ्यता की ज़रूरत बताकर पितृसत्तात्मक समाज अपनी कामवासनाओं के लिए स्त्रियों की क़िलेबंदी कर उनका शारीरिक और मानसिक शोषण कर रहा है । सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के नाम पर जूली, चम्पा आदि स्त्रियों को दमघोटू दल-दल में क़ैद किया हुआ है । "इन गलियों के लगभग हर कमरे बदबूदार, अंधेरे, चूना झड़ती दीवारों वाले, जंग खाए जंगलों वाले एवं टूटे फ़र्शवाले हैं । हर कमरे में ऊँचा-सा कही-कहीं ईंटों के सहारे ऊँचा कर दिया गया एक सिंगल बेडनुमा तख्ता है जिस पर पतला-सा बिस्तर है, जिस पर पतली-सी मैली एवं किसी पूर्व ग्राहक के पसीने से अटी पड़ी फुलालेन या कोई छीटेदार चद्दर है ।"[15] संस्कृति की रक्षा के लिए सामंती समाज द्वारा बनाई गई परंपराओं के रक्षकों को बेनक़ाब करते हुए लेखिका लिखती हैं, "नाकवाले, बिनानाकवाले । टायर्ड-रिटायर्ड । पत्नीवाले, बिना पत्नीवाले । लुक-छिपकर आनेवाले । खुलेआम आनेवाले । ट्रक ड्राइवर, झाक़ावाले, मुटिया, मज़दूर एवं रिक्शा चालक-जो अपनी हड़कम्पवाली ज़िंदगी में कुछ क्षणों के लिए हवा भरने चले आते ।"[16]

रचना के शिल्प की बनावट में संवाद की अहम भूमिका होती है । रचनाकर संवाद के माध्यम से विषय को सार्थकता की परिणिति तक पहुँचाता है । संवाद ही वह माध्यम है जिसके सहारे लेखक कथावस्तु और पात्रों की

स्थिति को प्रस्तुत करता है । संवाद के माध्यम से पात्रों द्वारा विषय को व्यापकता और गम्भीरता से प्रस्तुत किया जाता है । परंतु इसके लिए पात्रों का संवाद स्वाभाविक व प्रसंगानुकुल होना अनिवार्य है तभी रचना अपने रचनाकर्म में सफल होगी । रचना के संवाद ही पात्रों के भावों, प्रवृत्तियों, मनोभावों तथा घटनाओं पर उनकी प्रतिक्रिया को व्यक्त करने का माध्यम बनकर विषय की कहानी के प्रवाह को आगे बढ़ाता है । इसलिए वही संवाद उच्च कोटि का होगा जिसमें विषय ही नहीं भाषा भी पात्रों के सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश के अनुरूप हो । अगर कोई पात्र ग्रामीण परिवेश से है और अनपढ़ है तो वह अपने संवाद में उसी ग्रामीण पृष्टभूमि के अनुरूप भाषा का व्यवहार करेगा । उस पात्र के मुख से अंग्रेज़ी का व्यवहार विषय और कृति की प्रकृति के विपरीत माना जायेगा । मुरदाघर और सलाम आख़िरी में संवादों के माध्यम से जिस परिवेश को अभिव्यक्त किया गया है उसी परिवेश का नेतृत्व मुरदाघर और सलाम आख़िरी के पात्र कर रहे हैं । पात्रों के संवाद में उस परिवेश, समाज की झलक, उनके जीवन का दर्द झलकता है । मुरदाघर की भाँति सलाम आख़िरी की वेश्याओं के संवादों में भी उनके सामाजिक परिवेश, दिनचर्या की चुनौतियाँ, उत्पीड़न की पीड़ा दिखाई देती है । मुरदाघर और सलाम आख़िरी के पात्रों के संवाद वेश्याओं के जीवन की भयावहता, ग़रीबी, भूखमरी, बेबसी और उत्पीड़न को दर्शा रहें हैं । सलाम आख़िरी की गायत्री का सुकीर्ति से संवाद वेश्याओं की बेबस स्थिति और उत्पीड़न के साथ ग्राहकों के चरित्र का जीता-जागता उदाहरण

है । "हाँ, शुरू-शुरू में तो खड़े-खड़े कमर टूट जाती थी, गोड़ पिराने लगता था । अंदर घाव हो जाते थे, खुजली होने लगती थी । लेकिन बाक़ी वेश्याओं की तरह थकान मिटाने को मैं दारू नहीं लेती...हाँ, मेरे ग्राहक दारू पीते हैं, कई यहाँ आकर ख़रीदते हैं । कई-कई ग्राहक, विशेषकर शॉर्ट रेटवाले तो ऐसी दुर्गन्ध मारते हैं कि माथा भन्ना जाता है । उबकाई आने लगती है । नहीं शराब की नहीं, पसीने की दुर्गन्ध, साले, सप्ताह में एक बार तो साबुन से नहाते हैं । शराब की गंध भी शुरू में तो एकदम नहीं सह पाती थी । मितली आने लगती थी ।"[17] हम ग्राहकों के स्तर से ही अनुमान लगा सकते हैं कि चकलाघरों में रहने वाली वेश्याओं को किन परिस्थितियों से जूझना पड़ता है । सलाम आख़िरी में गायत्री जिन ग्राहकों का विवरण दे रही है । ऐसे सामाजिक परिवेश से आने वाले शराबी ग्राहक वेश्याओं का शारीरिक शोषण के साथ-साथ मानसिक उत्पीड़न भी करते हैं । सलाम आख़िरी में प्रस्तुत देह की ख़रीद-फ़रोख़्त के बाज़ार में साम्प्रदायिकता के ज़हर भी घुला हुआ है । सांप्रदायिकता के ज़हर से भरा हुआ कामुक समाज लाचार, बेबस स्त्री से अपनी काम-कुंठाओं के साथ धर्म की सर्वश्रेष्ठता का लोहा मनवाना चाहता है । ऐसा करके सामंती समाज बेबस, लाचार स्त्रियों का दैहिक शोषण कर अपने ब्राह्मणत्व की जीत का ध्वज फहराना चाहता है । गली के दलाल और ग्राहक के संवाद में सांप्रदायिकता से भरी हुई कामुकता का उदाहरण देखिए, "सर, सुनिए तो, अबक़ी-बहुत वैराइटी है । आगरावाली,

नेपाली, बंगाली और सर...मोहम्डन भी है, तब तो हम ज़रूर जाएँगे...उसे पवित्र करने । यही तो जीत होगी हमारे ब्राहमणत्व की ।"[18]

सलाम आख़िरी के संवादों में वेश्याओं की दिनचर्या, उनका सामाजिक परिवेश व आर्थिक चुनौतियों को प्रस्तुत किया गया है । "कमरे का कितना भाड़ा देती हो तुम ?

"यूँ रेट तो दिन-भर के लिए 35 रुपये से 60 रुपये तक का है । मतलब यदि सीज़न का टैम है तो दिन-भर के लिए 60 रुपये और मंदा सीज़न है तो दिन-भर का 35 रुपये । यहाँ तो रेट फिर भी बहुत कम है । दूसरे इलाक़ों में तो एक-एक दिन का 200 रुपयों से तीन सौ रुपये तक है वे धनी इलाकें हैं ।"[19] गायत्री जिस सामाजिक परिवेश से आती है उसमें लज्जा और घृणा की कोई जगह नहीं है । इस परिवेश में वेश्या को अपने जीवन की गाड़ी को खुद ही खींचनी पड़ती है । मर्ज़ी ना होते हुए भी बदबूदार और शराबी ग्राहकों के समक्ष बिस्तर की भाँति बिछना पड़ता है । यह अमानवीय परिवेश गायत्री जैसी तमाम वेश्याओं को ग्राहक चुनाव से लेकर व्यक्तिगत जीवन में किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं देता है, "मैडम, कुत्ता जाति ग्राहकों की-कई बार साफ़ मना कर देते हैं, इसका उपयोग करना नहीं चाहते, मजे में ख़लल पड़ जाता है इनके । हम भी जब पूरे दिन खड़े-खड़े कमर अकड़ जाती है, शरीर का जोड़-जोड़ जब दुखने लगता है और कोई ग्राहक नहीं पटता है तो इस पर भी राजी हो जाती हैं कि कम से कम दिन पूरा तो फाँका नहीं जाए, आने-जाने का ख़र्चा तो निकले...।"[20] वेश्याओं

की विवशता का आलम यह है कि वेश्याओं को ग्राहक की मर्ज़ी के आगे मदारी की बंदरियाँ की भाँति नाचना पड़ता है तब कहीं जाकर वेश्याओं का शाम का चूल्हा जलता है ।

मुरदाघर का परिवेश झोपड़पट्टियों और गंदी बस्तियों में पनपने वाली वेश्यावृत्ति और अपराध का दस्तावेज प्रस्तुत करता है । मुरदाघर में पोपट, मैना, ज़ब्बार, मरियम, रोज़ी, हसीना बाई आदि पात्रों के संवाद सामाजिक यंत्रणा तथा शोषण आधारित व्यवस्था की पूरी कहानी कह रहें हैं । जिस परिवेश से मुरदाघर के पात्र आते हैं उनके संवादों में उस मानसिक स्थिति व सामाजिक परिवेश की अभिव्यक्ति है । उदाहरण के लिए जेल में बंद वेश्याओं के वार्तालाप की भाषा से उनकी मानसिक स्थिति को समझा जा सकता है । "ए तू हट इधर से । इधर मेरा नम्बर है ।

-काय कू ! मैं आगे है तेरे से...पूछ ले कोई कू भी ।

-गरज नई पूछने का । तू हट ! मेरा लैन है इधर ।

-नई हटेंगी मैं । लैन का बीच में घुसती क्या ? जा पीछू लैन लगा ।

-तू हट जा...।

-नई हटती मैं...।

-तेरी माँ की चूत । हट बोलती मैं...।

-मूँ समालके बात कर । नई तो तोड़ देंगी तेरा मूँ...भेनचोद !"[21] मैना और पोपट का संवाद ग़रीबी से उपज्जे अभावों को दिखाता है और यह पूंजीवाद

का क्रूर रूप है जिसमें मनुष्य पशुओं से भी बदतर जीवन जी रहा है, "बोल ना ! क्या बोलने का है ?

-कुछ नई ।

-तो कायकू बुलाया मेरे कू ?

-फकत ये बोलने का वास्ते कि...एक चानस और मँगता मेरे कू । इसका बाद तू जो बोलेंगी...में वोच करेंगा ।

आँखों से जैसे निकलने लगती है आग कहना चाहती है कुछ...नहीं कह पाती । देखती रहती है सिर्फ़ ।...साला गाँडू ! मादरचोद ! मेरे कू रस्ते से लगा दिया ! छोकरे कू भिखारी और कोढ़ी बना देंगा । और अभी भी तेरे कू चानस मँगताच है ! तेरी माँ की में डाल तेरा चानस । भड़वी का...!"[22]

जेल में बंद मैना और पोपट का संवाद प्रगतिशील सभ्य समाज को कठघरे में खड़ा करता है । अगर समाज का एक व्यक्ति भी हाशिए का जीवन जी रहा है तो वह समाज सभ्य कहलवाने का हक़दार नहीं है । पात्रों के कथोपकथन उपन्यास के विकास के साथ-साथ उपन्यास में प्राणतत्व डाल दिए हैं । लेखक ने विषय और परिवेश के साथ संवाद का सटीक तालमेल बिठाया है । हम कह सकते हैं कि मुरदाघर और सलाम आख़िरी में पात्रों के मनोव्यापार को संवाद के द्वारा भलीभाँति अभिव्यक्त किया गया है जिससे दोनों उपन्यासों में सजीवता आ गई है ।

देशकाल या वातावरण- देशकाल दो शब्दों देश (स्थान) और काल (समय) के योग से बना है । जिसमें समय और स्थान के विषय में बताया जाता

है लेकिन जब उपन्यास के संदर्भ में देशकाल की बात होती है तो उसमें उपन्यासकार पात्रों और घटनाओं के साथ जिस विषय को लेकर लिख रहा है उसमें पात्रों के चारों और व्याप्त वातावरण का भी ध्यान रखा जाता है । यह वही वातावरण या परिवेश होता है जिसमें उपन्यास के पात्र रहते हैं ।

अगर इतिहास में नज़र दालें तो हम पाते हैं कि पहले के समय में वेश्यावृत्ति विशुद्ध रूप में देहव्यापार के रूप में स्थापित नहीं हुई थी । उस समय की वेश्याएँ नृत्य, गायन आदि में पारंगत होती थी तथा उनके वेश्यालयों में कलाओं के शौक़ीन लोग आते थे । परंतु इक्कीसवीं सदी आते-आते समाज कई परिवर्तनों से गुज़रा और समाज में हुए परिवर्तनों का असर वेश्याओं के जीवन पर देखा जा सकता है । मुरदाघर व सलाम आख़िरी एक रूप में समाज में हुए उन्ही परिवर्तनों के दस्तावेज हैं । विज्ञान के चलते मानव समाज आधुनिक होता गया तथा समय की ज़रूरतों ने नित नये-नये आविष्कारों को जन्म दिया और फिर विकास की एक कभी ना ख़त्म होने वाली अंधाधुँध दौड़ शुरू हो गई जिसमें समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग पीछे छूट गया । विकास की दौड़ में पिछड़ा हुआ मुरदाघर और सलाम आख़िरी का समुदाय जीवन और मृत्यु के बीच संघर्ष कर रहा है ।

मुरदाघर 19 वीं सदी के समाज में औधौगिक विकास के समाज में फैली आर्थिक विषमता की गहराई के साथ पड़ताल करता है । पोपट, ज़ब्बार, राजू, मैना, मरियम, नूरी, पार्वती, रोज़ी आदि पात्रों के माध्यम से

झोपड़पट्टियों की काली रातों के बीच अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे लोगों की व्यथा को अभिव्यक्त करते हुए लेखक लिखता है, "कचरे का पुराना ढेर और एक पागल आदमी...घूम-घूमकर ढूँढता रहता है कुछ...कभी नहीं मिलता ।"[23] मुरदाघर रोगी, कोढ़ी, लाचार लोगों की व्यथा कथा है । ये वे लोग हैं जो तथाकथित सभ्य समाज की मुख्यधारा में शामिल नहीं हैं और समाज व राज्य की नज़र में इनका कोई अस्तित्व नहीं है । "तेज़ हवा का झोंका...तेज़ बदबू । कोढ़ी...गली उँगलियोंवाला...दोनों हथेलियों में दबाकर कुछ खाने की कोशिश करता है । एक लँगड़ी कुतिया चाटती जाती है खुजली की चमड़ी को । निकल जाते हैं सामने से सूअरों के पिल्ले । कचरे के ढेर पर जली हुई सिगरेटें...जूठन...आवारा लड़के । ढूँढता जाता है पागल आदमी...कुछ नहीं मिलता ।"[24]

मुरदाघर का देशकाल पाठक की चेतना को झकझोर देता है । "दुखता है एक ज़ख़्म और रिसता जाता है । फिर कट गया कोई रेल की पटरियों पर । आदमी या जानवर...कोई फ़र्क़ नहीं । मँडरा रहे हैं कौवे...कुत्ते । गटर के पास...एक पागल औरत और एक पागल दुनिया...चीख़ रहे हैं दोनों । मैनाबाई...खाँसी के बाद सड़क पर फेंका गया बलगम । बीमार औरत...रंड़ी । देती जाती है गालियाँ...मर्द को...बच्चे को...सारी दुनिया को । फैलता जाता है अँधेरा ।"[25] लेखक ने वेश्यावृत्ति जैसी संवेदनशील समस्या को उठाते हुए समाज और पाठक को आगाह करने के लिए झोपड़पट्टियों और गंदी

बस्तियों में सड़ गल रहे लोगों के जीवन को जिस परिवेश के माध्यम से प्रस्तुत किया है उस परिवेश को देखकर लगता है कि लेखक स्वयं पात्रों और वातावरण में रहा है । यह लेखन उनका अनुभूत सत्य जान पड़ता है । इस अनुभूत सत्य को मुरदाघर के लेखक ने कुछ इस प्रकार कलमबध किया है, "मालूम नहीं कहाँ...किस जगह...तोड़ दिए गए झोपड़े । मालूम है सिर्फ़ इतना कि एक पीली सुबह...जब सोने वालों ने आँखें खोलीं...गंदी बस्ती को घेर लिया नीली वर्दी ने चारों तरफ़ से । लंबे बेंत और डंडे । नीली गाड़ियाँ । ख़ाकी वर्दियाँ और अफ़सर । सुना दिया गया हुक्म । तोड़ दिए गए झोपड़े । पीली रोशनी में नंगी हो गई एक दुनिया । कालिख लगे बरतन...मैली पतीलियाँ...गुदड़ियाँ...रोते हुए...।"[26] उपन्यास का देशकाल पात्रों के रहन-सहन, आचरण के ढंग, रीति-रिवाज, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों और मनस्थितियों के अनुरूप है । यही नहीं उपन्यासकार ने कथावस्तु और संवाद योजना की निर्मिती भी देशकाल के अनुरूप की है जिसने रचना में विषय की विश्वसनीयता और प्रभावात्मकता पैदा कर दी है ।

देशकाल का विश्लेषण करने की कड़ी में दूसरा प्रमुख आधार ग्रंथ सलाम आख़िरी है । जिसमें मधु काँकरियाँ ने समाज की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए दमन, उत्पीड़न की शिकार वेश्याओं के पीड़ित जीवन को पाठकों के सम्मुख पेश किया गया है । लेखिका ने वेश्यावृत्ति की समस्या को वर्तमान

के परिप्रेक्ष्य के साथ इतिहास की जड़ों तक खोजा है । इससे भी आगे वेश्यावृत्ति की गहराई से पड़ताल करते हुए बताया है कि सदियों से कामुक समाज ने स्त्री को असहाय बनाकर नारकीय दलदल में फंसाया हुआ है । इक्कीसवीं सदी की रचना के माध्यम से लेखिका ने पुरुषवादी समाज की ऐतिहासिक ग़लतियों को इंगित किया है । "यह सोनागाछी है । मध्य कलकत्ते का ऐतिहासिक लालबत्ती इलाक़ा जहाँ सत्रहवीं शताब्दी के ढलते वर्षों से सामंती ज़मींदार, सेठ, रईस, कला प्रेमी, रसिक और बौद्धिक वर्ग कई-कई आकर्षणों में बँधे यहाँ की कामिनियों, नगर-वधुओं, सर्वभोग्या बाईजियों और वेश्याओं की महफ़िलों को रोशन करते रहे हैं ।"[27] लेखिका ने उपन्यास में वेश्यावृत्ति को बनाये रखने वाले आधारों के साथ समय और काल में हुए परिवर्तनों का अध्ययन भी किया है । दुनिया में समय के साथ हुए बदलावों ने मनुष्य के जीवन में आमूलचूल परिवर्तन किया, परंतु नृतकियों और वेश्याओं का जीवन सामाजिक-राजनीतिक बदलावों के साथ और अधिक कष्ट साध्य होता गया । "किसी समय रूप के बाज़ार के साथ ही कला के बाज़ार के रूप में विख्यात सोनागाछी की अधिकांश गलियों, दुर्गा चरण मित्रा स्ट्रीट, अविनाश कविराज स्ट्रीट, नीलमणि मित्र स्ट्रीट, इमाम बक्स लेन, मस्जिदबाड़ी स्ट्रीट आदि से कला डायनासोर की तरह धीरे-धीरे विलुप्त हो गई है और जो बचा रह गया है वह है सिर्फ़ जिस्म की ख़रीद-फ़रोख़्त ।"[28] पात्र और उनके संवाद स्त्रियों के प्रति समाज की सोच को बेनक़ाब कर रहे हैं । ऐसा ही सवाल रमा का है जिसका जवाब

ना तो वर्तमान के पास है और ना ही इतिहास उसका उत्तर दे सकता है । "लोग कहते हैं भंगी पैदा नहीं होते, बना दिए जाते हैं कोड़े मार-मार कर...पर क्या यही वेश्या जीवन का भी सच नहीं ? इनमें से कौन थी जिसने चाहा था ऐसा जीवन ?"[29]

उपन्यास के पात्रों का जीवन और वातावरण नितांत ही अमानवीय स्थितियों से परिपूर्ण है । एक साधारण मनुष्य के लिए वेश्याओं को समझ पाना मुमकिन नहीं है । उपन्यास को पढ़ते वक्त व्यक्ति स्वयं अपने आप को एक अंधकार से घिरा हुआ पता है । वेश्याओं के सामने जीवन में चुनौती है कि वे स्थिति में जीवन की तलाश कहाँ करें । "सुकीर्ति समझ नहीं पाई...। कान को उसके मुँह के पास ले गई...पिंकी बुदबुदाई...कहाँ खोजूँ इस समुंदर में इन दोनों के बापों को ? आँखों की ओर से फिर कुछ बूँदें लुढ़कीं । पुत्री ने अंतर्वस्त्रों को बदल देना चाहा, उसने मना कर दिया । ओठों पर जीभ फेरी । सिर के ऊपर की खिड़की पर मैले काले पर्दे को हटा देने को कहा, जिससे थोड़ी हवा मिले...।"[30] इस दमघोटूँ जीवन ने पिंकी को कभी खुली साँस नहीं लेने दी । यह केवल पिंकी के जीवन की कहानी नहीं हैं । पिंकी उन्हीं असंख्य वेश्याओं का प्रतिनिधित्व कर रही है जिनको क्रूर व्यवस्था असमय मृत्यु के मुँह में धकेल दिया ।

भाषा शैली:- लेखक भाषा के माध्यम से ही किसी कृति के विषय की व्यापकता और परिवेश को पाठक के समक्ष पेश करता है । या यूँ कहें की

भाषा ही वह सशक्त माध्यम है जिसके माध्यम से पाठक विषय की गहराई में उतरकर पात्रों के साथ तादात्मय स्थापित करता है । अत: भाषा का विषय और पात्रों की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश के अनुरूप होना अति आवश्यक हो जाता है । मुरदाघर और सलाम आख़िरी में वेश्यावृत्ति जैसे समकालीन विषय को व्यापकता और गहराई के साथ समझने के लिए पात्रों के संवादों के लिए उसी परिवेश की भाषा का चुनाव किया गया है । दोनों रचनाओं की भाषा पात्रों की स्थितियों को भलीभाँति अभिव्यक्त कर रही है । मुरदाघर में "जगदम्बा प्रसाद दीक्षित" जी ने मुंबईया भाषा के माध्यम से बस्तियों के लोगों की व्यथा कथा को कहता है । वहीं सलाम आख़िरी में सोनागाछी आदि रेडलाइट इलाक़ों का वर्णन है जिसमें अधिकतर वेश्याएँ बांग्ला हैं और उनकी भाषा भी बंगाली है ।

मुरदाघर की बात करें तो वेश्याओं की भाषा मुख्यतः बम्बईया हिंदी है जिसमें हिंदी, मराठी, गुजराती, पंजाबी, मद्रासी आदि भाषाओं के शब्दों का भी समावेश है । मुरदाघर में वेश्याओं के परिवेश, उनके जीवन की चुनौतियों तथा उनकी मनस्थितियों को भाषा के माध्यम से महसूस किया जा सकता है । लेखक ने वेश्याओं के परिवेश, उनकी गाली-गलौच और कुटनीपन को जैसे-का-तैसे रखकर रचना को यथार्थवादी रूप प्रदान किया है । उपन्यास के पात्र भाषा के माध्यम से अपने भोगे हुए यथार्थ को अभिव्यक्त कर रहे हैं । यहीं कारण है कि भाषा के स्तर पर दोनों उपन्यास पाठक को आदि

से अंत तक बाँधकर रखते हैं तथा पाठक भी भाषा के माध्यम से अपना तादातम्य परिवेश और वेश्याओं से जोड़ लेता है ।

दीक्षित जी ने बम्बई महानगर की बस्तियों के लोगों के वीभत्स, कुरूप व मार्मिक जीवन को स्वाभाविक रूप में मुंबईया भाषा शैली द्वारा सहजता के साथ प्रस्तुत किया है । अगर और अधिक सरल व स्पष्ट शब्दों में कहूँ तो लेखक ने समाज के वंचित तबके की व्यथा कथा को मराठी मिश्रित मुम्बईया हिंदी के माध्यम से बिना किसी शर्म हया, झिझक, लाग लपेट, साहित्यिक शिष्टता के खुलेआम प्रस्तुत किया है । अपनी ज़मीनी भाषिक के चलते ही मुरदाघर उपन्यास औपन्यासिक विशिष्टता को प्राप्त कर पाया ।

रचना की भाषा में पात्रों की पीड़ा साफ़ झलकती है । हम कह सकते हैं कि समाज में वेश्याओं की दयनीय स्थिति को ब्याँ करने के लिए अन्य कोई दूसरी भाषा नहीं हो सकती थी । उपन्यास की भाषा पात्रों की मनोभावों को बड़ी बारीकी से अभिव्यक्त करती है । गंदी बस्तियों में रहने वाली गृहिणियों के आर्थिक अभाव से ग्रस्त गृहस्थ जीवन का वर्णन पाठक को भाषा के माध्यम से जीवन की उन गहराइयों में ले जाता है जहाँ पर एक वक़्त की रोटी नसीब हो जाना ही जीवन है । उपन्यास में वर्णित गृहणियों के अभाव और शोषण से भरे जीवन में जो भूख का सवाल शाश्वत रूप में दीवार बनकर खड़ा रहता है उसको लेखक किसी दूसरी भाषा में अभिव्यक्त नहीं कर सकता था । “मैना...नहीं उठी अब तक । सिली हुई ज़मीन और सीला

हुआ जिस्म । राजू आया...चला गया । फिर आया फिर चला गया । दर्द और आँसुओं की लकीरें । भूख और कमज़ोरी । उठना पड़ता है बेमन । झोपड़े के छेदों के बाहर की रोशनी । क्या रख गया राजू ? पाव के टुकड़े ।...पोपट ! साला हरामी ! कभी भला नई होएँगा तेरा...।

मटके में पानी नहीं । झोपड़े में...खाना नहीं कोई रास्ता नहीं...कोई ठिकाना नहीं । मैले-थके जिस्म को सजाना होगा । हो रही है रात कचरे के ढेर पर । पागल आदमी...ढूँढ रहा है अब भी...उसे जो नहीं मिलता ।"[31]

मुरदाघर की भाषा ही वेश्याओं के परिवेश और उत्पीड़न की गवाह है । "मत छोड़ना ! कोन बोलता तेरे से कि छोड़ । साला रंड़ी लोक को कू बुरा बोलता । पोलिस का लोक तो रंडी लोक से भी ख़राब है । पइसा के वास्ते कुछ भी करेगा...।

घूमकर देखता है हवलदार ।...कौन है ये राँड ?

मैना है...घिरी हुई...बोलती चली जाती है ।...अपने डंडे का डर बताता क्या ? साला गाँडू ! बड़ा सरीफ़ बनता । क्या है तू और तेरा साब लोक...सब मालम है । पइसा का वास्ते मराने में भी सरम है क्या तुम लोक कू ?"[32]

यह भाषा की देन है कि एक आम आदमी की वेश्याओं के प्रति सोच को परिवर्तित करके वेश्याओं की विवशता से जोड़कर कर उसकी चेतना को झकझोरते हुए सोचने को मजबूर करती है । मुरदाघर में लेखक ने भाषा के परंपरागत ढाँचे को तोड़कर बम्बईया हिंदी का सृजनात्मक प्रयोग कर औधौगिक विकास की विषमता की मार झेल रहे गंदी बस्तियों में रहने को

मजबूर लोगों के वीभत्स और भयावह जीवन के यथार्थ को नई बुनावट और भाषायी सृजना के साथ पाठक के समक्ष पेश किया है । झोपड़पट्टियों के लोगों की पीड़ा को शिष्ट भाषा के द्वारा अभिव्यक्त करना उतना प्रभावशाली नहीं होता जितना बम्बईया हिंदी के सर्जनात्मक प्रयोग द्वारा सम्भव हुआ है । साहित्यिक भाषा की शिष्टता में बेबस जीवन की गहराइयों को अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है । जगदम्बा प्रसाद दीक्षित भली-भाँति समझते थे कि झोपड़पाटियों के समाज को आवरणों से मुक्त भाषा में ही अभिव्यक्त किया जा सकता है । जगदम्बा प्रसाद दीक्षित की विषय व समाज की समझ और उस पर पकड़ को हम इस उदाहरण के माध्यम से समझ सकते हैं, "छह महीने का पेट...भटक रही है मैना । पोपट आगे-आगे । नहीं मिलती छाया...भागती जाती है । मुँह पीले...होंठ सूखे । एक पाव रोटी...दो टुकड़े । खाते हैं दोनों...पीते हैं पानी । एक चालू चाय...फिर दो हिस्से...कप में और बसी में । कहाँ से आए हैं दो आदमी...मालूम नहीं । एक बहुत बड़ा शहर...भीड़-भरी फ़ुटपाथ...फिर आए बादल । अब नहीं लौटेंगे...बरसेंगे बार-बार । एक छाया की तलाश । एक बड़ा पेट लिये ला-लाकर देती है टुकड़े...लकड़ियों के । बन रहा है छप्पर रेल की पटरियों के पास । घर...दो आदमियों का । रिमझिम-रिमझिम पानी ! कीचड़ । दो ठिठुरे हुए आदमी । रात । फिर रात । फिर वही पानी... रिमझिम-रिमझिम । तेज़ दर्द...छटपटाती जाती है मैना । बरसता जाता है पानी । टपकता जाता है छप्पर...हर कहीं...हर जगह...! बरसात ख़त्म हो गई... या नहीं हुई

। आ गए नीली वर्दीवाले । हाथों में लाठियाँ...सिर पर टोपियाँ...लोहे की । तोड़ दिए गए छप्पर...बिखर गए टुकड़े । सामान की गठरी...दो महीने का बच्चा । फिर वही तलाश...यहाँ से वहाँ...वहाँ से हर जगह ।"[33]

मुरदाघर की भाषा का सहज गुण है कि वह पाठक को समाज की विषमताओं और अमानवीय परिस्थितियों में रह रहें पात्रों के प्रति संवेदनशील बनाती है और शोषण के पिरामिडों पर खड़ी व्यवस्था के प्रति पाठक के मन में आक्रोश पैदा करती है । साथ ही उपन्यास के पात्रों की शोषणवादी व्यवस्था के विरुद्ध अंतर्मन से आक्रोशित होकर समाज व न्याय तंत्र को गालियाँ देना जीवन की ऊब, घुटन व निराशा को दर्शाता है । "हाँफ गई मैना...फिर भी मारती चली जाती है । मारती जाती है...रोती जाती है । आँखों से आँसुओं के तार...और मारती जाती है घूँसे ।...कमीनचोट ! डुक्कर की अउलाद ! मादरचोद ! भेनचोद ! तेरा भला नई होंगा । तू भोत तकलीफ दिया मेरे कू...भोत रुलाया ।...तेरा मुरदा...तेरी मैयत...।"[34] मुरदाघर का सामाजिक परिवेश गली-सड़ी, घिनौनी सड़ान्ध भरी ज़िन्दगी के यथार्थ का आईना है । मुरदाघर में पड़ी हुई लाशों और गंदी बस्तियों में रहने वाले लोगों के जीवन में फ़र्क़ मिट गया है । इन मलीन बस्तियों में रहने वाले पोपट रोज़ी ज़ब्बार और मैना जैसे सैकड़ों हज़ारों लोग जीते जी भी मुर्दों की तरह लावारिस हैं जिनकी कोई पहचान नहीं है । वे बिना किसी पहचान के तिलतिल कर मर रहें हैं । कोई इन लोगों की सुध लेने वाला नहीं है ।

दुखद यह है कि पोपट जैसे लोगों के जीने और मरने से तथाकथित सभ्य समाज को कोई फ़र्क नहीं पड़ता है ।

मधु काँकरियाँ ने सोनागाछी आदि रेड लाइट इलाक़ों के वीभत्स जीवन का चित्रण करने के लिए सलाम आख़िरी में बिम्ब और मुहावरों की प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया है । वेश्याओं के घुटन भरे जीवन और बदबूदार परिवेश को बिंबों और प्रतीकात्मक भाषा के माध्यम से ही प्रस्तुत जा सकता था । वेश्याओं की सामाजिक स्थिति को प्रस्तुत करने के लिए लेखिका ने साधारण भाषा का उपयोग किया है । "स्टील और अल्युमिनियम के मिले-जुले बर्तन । कोने में प्लास्टिक की पानी भरी बाल्टी । स्टोव । कुछ डिब्बे ।"[35] वेश्याओं की गृहस्थी और उनके परिवेश को बिना किसी काट-छाँट के लेखिका ने ज्यों-का-त्यों रख दिया है । उपन्यास में पात्रों और उनके परिवेश के अनुरूप भाषा का व्यवहार कर वेश्याओं की दीनहीनता को उजागर किया है । सलाम आख़िरी के पात्र जिस सामाजिक परिवेश से आते हैं वे वैसी ही भाषा भी बोलते हैं । उनकी भाषा में उनका परिवेश स्पष्ट झलकता है । पात्रों के संवादों के माध्यम से उनकी मनस्थिति को समझा जा सकता है । जब सुकीर्ति पिंकी से उसके पिता के बारें में पूछती है तो पिंकी का जवाब एकदम स्पष्ट और सभ्य असभ्य की परिधि से दूर था । "मेरा पता नहीं किसकी औलाद हूँ । औलाद का पता नहीं किस बाप से है, साला बाप नहीं हुआ, बस सुना ही सुना, देखा तो आज तक नहीं...।"[36]

लेखिका ने वेश्याओं की भाषा को लेकर सलाम आख़िरी के आत्मक़थ्य में लिखा है, "दूसरी समस्या जो सामने आई वह थी इनकी भाषा को लेकर, कलकत्ता में प्रायः सभी वेश्याएँ, कुछेक नेपाली एवं आगरा वालियों को छोड़कर बंगाली भाषी हैं । अब इसे बंगला भाषा की समृद्धि कहा जाए, इस भूमि की तासीर कहा जाए या कि यहाँ के बंग साहित्य की अंतर्शक्ति का कमाल कि अशिक्षित होते हुए भी यहाँ के सब्ज़ीवाले, घरों में काम करनेवाली बाई, श्रमिक वग़ैरह भी आम हिंदी भाषा से उच्च स्तर की भाषा बोलते हैं । वेश्याओं के लिए भी यही सत्य था । मुझे इनकी उच्च बंगाली को निम्न हिंदी में रूपांतरित करने की क़वायद करनी पड़ी, पर अंततः मुझसे यह क़वायद सधी नहीं ।"[37] सलाम आख़िरी में सोनागाछी, बहुबाज़ार, कालीघाट, बैरकपुर, खिरिदपुर आदि लालबत्ती इलाक़ों का वर्णन हुआ है । इन लालबत्ती इलाक़ों में रहने वाली अधिकतर वेश्याएँ बंगाली ही हैं । गायत्री को ग्राहक द्वारा काम होने के बाद उसका मेहनताना देने के लिए मना कर आग बबूला कर देता है । ग़ुस्से से भरी हुई गायत्री मातृभाषा बंगाली में ही गालियाँ देना शुरू कर देती है । "खानकीरे छेले माएर खसम ।"[38] सुकीर्ति को गायत्री द्वारा अपनी पीड़ा बताते हुए भी भाषा और उसके मर्म को समझा जा सकता है । मूलतः भाषा का काम होता है कि रचना में जिस विषय और परिवेश को अभिव्यक्त किया जा रहा है वह उस विषय और परिवेश को यथार्थ रूप में चित्रित करे । सलाम आख़िरी की भाषा इस

आधार पर एकदम खरा उतरती है । भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण कुछ उदाहरणों के माध्यम से परिवेशगत भाषा की विशिष्टता को समझा जा सकता है । माथाफिरी, सुच्ची अम, नेई-नेई आदि हिंदी की प्रकृति से अलग शब्द होते हुए भी परिवेश को व्यक्त कर रहें हैं । बंगला शब्दों ख़ूब भालो, छेले, अल्पो-अल्पो आदि के साथ साधारण जनजीवन की गालियाँ भी वेश्याओं की भाषा में हैं । जैसे कुतिया, छिनाल, उसकी माँ का, भोसड़ी के, हरामी आदि । ठंडी ठस सूरत, सिसकारी मारना, पाँच मिनट का रेट, सिर्फ़ उस काम के लिए आदि के माध्यम से वेश्याओं परिवेश को चित्रित किया है । लेखिका ने (मार-मार के भंगी बनाना, जणा जणा ता तत राखती वेश्या हो गई बाँझ, हमाम में सभी नंगे होते हैं) सामाजिक कहावतों के माध्यम से भी वेश्याओं के परिवेश को यथार्थपूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान की है । झोपड़पट्टियों और गंदी बस्तियों में बेबसी की सिसकियाँ भरते लोगों के जीवन को अभिव्यक्त करने के लिए इससे बेहतर देशकाल, भाषा, परिवेश नहीं हो सकता है ।

संदर्भ सूची-

1. मधु कांकरिया, सलाम आखिरी, संस्करण-2007, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि, नई दिल्ली-02, पृ. सं- आत्मकथ्य
2. वही पृ. सं-13
3. वही पृ. सं- आत्मकथ्य
4. वही पृ. सं- आत्मकथ्य
5. वही पृ.सं-108
6. वही पृ.सं-108
7. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, संस्करण-2000, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली 110032, पृष्ठ सं-7
8. वही पृ. सं-7
9. वही पृ. सं-16
10. मधु कांकरिया, सलाम आखिरी, संस्करण-2007, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि, नई दिल्ली-02, पृ. सं-128
11. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, संस्करण-2000, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली 110032, पृ. सं-22
12. वही पृ. सं-64
13. वही पृ. सं-64
14. वही पृ. सं-142

15. मधु कांकरिया, सलाम आखिरी, संस्करण-2007, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि, नई दिल्ली-02, पृ. सं-16

16. वही पृ. सं-16

17. वही पृ. सं 73

18. वही पृ. सं-14

19. वही पृ. सं-72

20. वही पृ. सं-72

21. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, संस्करण-2000, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली 110032 पृ. सं-54

22. वही पृ. सं-66

23. वही पृ. सं-7

24. वही पृ. सं-7

25. वही पृ. सं-7

26. वही पृ. सं-7

27. मधु कांकरिया, सलाम आखिरी, संस्करण-2007, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि, नई दिल्ली-02, पृ. सं-20

28. वही पृ. सं-20

29. वही पृ. सं-37

30. वही पृ. सं-183-184

31. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, संस्करण-2000, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली 110032 पृ. सं-27-28

32. वही पृ. सं-32

33. वही पृ. सं-13

34. वही पृ. सं-15

35. मधु कांकरिया, सलाम आखिरी, संस्करण-2007, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि, नई दिल्ली-02, पृ. सं-102

36. वही पृ. सं-103

37. वही पृ. सं- आत्मकथ्य

38. वही पृ. सं-67

उपसंहार

वेश्याजीवन के संदर्भ में मुरदाघर और सलाम आख़िरी का अवलोकन करते हुए शोध के दौरन जो बातें निकलकर आई है । उनमें सबसे अहम् बात यह है कि भारतीय समाज में वेश्यावृत्ति की एक लम्बी परंपरा है । यह समाज में समय-समय पर अलग-अलग नाम से बनी रही है । समाज में हुए सामाजिक बदलावों प्रभाव हमें वेश्यावृत्ति के स्वरूप में भी दिखाई देता है । समय के साथ वेश्यावृति का स्वरूप परिवर्तित ज़रूर हुआ लेकिन आकार कम होने की बजाए समय के साथ बढ़ता ही गया । एक ओर बात जो वेश्यावृत्ति के संदर्भ में समझने वाली है । वह यह है कि वेश्यावृत्ति को लेकर समाज में बाल-विवाह और विधवा विवाह के विरुद्ध हुए सामाजिक आदोलनों की भाँति कोई बड़ा आंदोलन नहीं हुआ । या हम कह सकते हैं बाल-विवाह और विधवा विवाह जैसी प्रथाएँ तथाकथित उच्च वर्ग के जीवन से जुड़ी समस्याएँ थी जिसकी तुलना में वेश्यावृत्ति कभी तथाकथित उच्च वर्ग की समस्या नहीं रही । परंतु इन सब तथ्यों के बावजूद दुखद यह है कि आज भी समाज वेश्यावृत्ति को रोक पाने में असमर्थ ही दिखाई देता है । ऐसा नहीं है कि समाज से वेश्यावृत्ति की समस्या ख़त्म नहीं हो सकती है । उसके लिए पहले वेश्यावृत्ति सामाजिक समस्या के रूप स्वीकार करना

होगा दूसरा समाज को व्यभिचार से बचाने के लिए वेश्यावृत्ति को अनिवार्य मानने वाली सोच को मिटाना होगा ।

भारतीय समाज में वर्षों से चली आ रही देवदासी प्रथा सीधे तौर पर स्त्री के जीवन से जुड़ी हुई अहम समस्या है । इस देवदासी प्रथा की उत्पत्ति और इसके समाज में बने रहने के पीछे धार्मिक और सामाजिक कारण हैं । मुख्यतय धर्म के नाम पर आर्थिक और सामाजिक रूप से कमजोर वर्ग की स्त्रियों को ही देवदासी बनाने के लिए बाध्य किया जाता है । ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिसने पता चलता है सामाजिक रूप कमजोर तबकों की लड़कियों को देवताओं के नाम पर धन कमाने और काम-वासना को शांत करने की ख़ातिर मंदिरों के पुजारियों की रखेल बनाया गया है । देवदासी प्रथा की जटिलताओं को समझने पर मालूम होता है कि यह वेश्यावृत्ति का एक आदिम रूप है । यह भी सत्य है कि देवदासी प्रथा व वेश्यावृत्ति जैसी सामाजिक बुराई ने स्त्री के रचनात्मक और सृजनात्मक पक्ष की अवहेलना ही नहीं की बल्कि उसे दासी बनाकर सामंती समाज की भोग की वस्तु दिया ।

भारतीय समाज में वर्षों से व्याप्त वेश्यावृत्ति का लिखित रूप में विवरण कौटिल्य द्वारा 322 ईसा पूर्व लिखी गई पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में मिलता है जिसमें उन्होंने वेश्याओं के लिए वैधानिक नियमों का निर्माण कर वेश्याओं

के शोषण के विरुद्ध नियम-क़ानून भी बनाए थे । हाँ यह भी सत्य है कि समय के प्रवाह के साथ वेश्याओं के लिए कौटिल्य द्वारा बनाये गये नियम निष्क्रिय होते गये और शोषण के मानदंड कड़े होते गये । सामंती समाज से लेकर अनेकों राजाओं-महाराजाओं की सल्तनतों में वेश्यावृत्ति कम होने की बजाए ओर अधिक बढ़ी थी । भारत में मुस्लिम राजाओं से लेकर औपनिवेशिक शक्तियों के शासन में भी वेश्याओं की संख्या में कोई कमी नहीं आई । हाँ, अंग्रेजों ने देवदासी प्रथा के विरुद्ध कानून जरुर बनाए थे परंतु अपने हितों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने वर्षों से चली आ रही वेश्यावृत्ति जैसी स्त्री विरोधी व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप नहीं किया ।

वेश्यावृत्ति को लेकर रचनाओं के अध्ययन से जो बातें निकलकर आई हैं वो चौकाने वाली हैं । समाज में वेश्यावृत्ति की समस्या जितनी विकराल व गम्भीर है, उसकी तुलना में वेश्याजीवन को लेकर हिंदी साहित्य में कम ही लिखा गया है । हालाँकि हिंदी साहित्य के कुछ रचनाकारों ने वेश्यावृत्ति की समस्या और उसके कारणों को जानने और समस्या की गहराई को समझने का प्रयास कर वेश्याओं की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है ।

शोध के आधार ग्रंथों मुरदाघर और सलाम आख़िरी में वेश्यावृत्ति की समस्या को व्यापकता के साथ अभिव्यक्त किया गया है । उपन्यास समस्या की जड़ों को पहचानने के साथ समाज और न्याय व्यवस्था का वेश्याओं के प्रति नजरिये का अवलोकन करते हुए वेश्याओं की दयनीयता के लिए

ज़िम्मेवार संस्थाओं की खबर लेते हैं । जैसे दोनों रचनाओं में वेश्याओं के जीवन की चुनौतियाँ अलग-अलग हैं । वैसे ही दोनों रचनाओं में वेश्यावृत्ति अपनाने के कारण भी अलग-अलग हैं । परंतु सब स्थितियों और कारणों को एक साथ रखकर देखने पर एक ही बात सामने निकलकर आती है कि ग़रीबी वेश्यावृत्ति के पीछे एक कारण ज़रूर हैं लेकिन उससे भी ज़्यादा स्त्री के वेश्या बनने के पीछे पुरुष की भोगवादी दृष्टी ही दिखाई देती है । मुरदाघर के लेखक ने वेश्यावृत्ति के लिए गरीबी को ही मुख्य वजह माना है । जीवन की ग़रीबी के आगे बेबस होकर मुरदाघर गृहणियों ने वेश्यावृत्ति को स्वीकार कर लिया । इस ग़रीबी को जन्म देने वाला पूँजीवादी समाज है जिसका बागडोर पुरुष के हाथ में है । महानगरों में फैली हुई गरीब बस्तियों में आजीविका की ख़ातिर देह-व्यापार में संलिप्त औरतों के माध्यम से 'मुरदाघर' के लेखक ने औधोगिक विकास के कारण उपजी गरीबी को वेश्यावृत्ति के लिए ज़िम्मेवार ठहराते हुए भारतीय समाज की प्राचीन समस्या को उठाया है । सामन्ती समाज से अनवरत जारी वेश्यावृत्ति की समस्या आधुनिक समय में विकराल हो गई है । मुरदाघर उपन्यास न्यायतंत्र के भ्रष्ट चरित्र को उजागर करते हुए देश का भविष्य कहे जाने वाले वेश्याओं के बच्चों के दिशाहीन जीवन को प्रस्तुत करता है तथा सभ्य और समृद्ध लोगों की समाज के प्रति जबाबदेही की खबर लेता है । यह वह तबका है जो ऐसों-आराम से परिपूर्ण जीवन में अपने सामाजिक दायित्व को भूल गया है ।

वेश्यावृत्ति को एक व्यवस्था का रूप देने में पुरुष समाज की छलकपटपूर्ण नीतियों की मुख्य भूमिका है । मानव समाज का अतीत स्त्री के साथ पुरुषवादी व्यवस्था द्वारा स्त्री के साथ किये गए छलकपट की कहानियों से भरा पड़ा है । यह छलकपट नीति का ही नतीजा है कि पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री के अधिकारों पर सबसे अधिक वार हुआ है । जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज में स्त्री की स्वाधीनता धीरे-धीरे कम होती गई और स्थिति यहाँ तक आ पहुँची कि स्त्री पुरुष द्वारा बनाए गए नियम कानूनों की अनुपालनकर्ता भर हो गई । स्त्री को गुमराह करने के लिए पितृसतात्मक समाज ने स्त्री को देवी बनाकर सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया । इससे भी एक कदम आगे बढ़कर सामान्य स्त्री का औहदा छिनकर उसे वेश्या बना दिया ।

'सलाम आखिरी' उपन्यास समाज में स्त्री के उत्पीड़न की वर्तमान स्थिति को उजागर करता है । समाज में सदियों से चली आ रही वेश्यावृत्ति के लिए कभी देवदासी प्रथा को ज़िम्मेवार बताया गया, कभी गरीबी को उत्तरदायी माना गया है । भारत के संदर्भ दोनों तर्कों को ठीक मान भी लिया जाए तो फिर पूरी दुनिया में फैली हुई वेश्यावृत्ति के लिए कौनसे कारण ज़िम्मेवार हैं ? दुनिया में शायद ही कोई ऐसा देश होगा जिसमें वेश्यावृत्ति जैसी अमानवीय बुराई नहीं है । वेश्यावृत्ति तो ऐसे देशों और समाजों में भी व्याप्त है जिसमें देवदासी जैसी कोई प्रथा भी कभी नहीं रही

है । लेकिन पूरी दुनिया में ग़रीबी और अशिक्षा के साथ पितृसत्ता की स्त्री को वस्तु समझने वाली सोच सारी दुनिया में दिखाई देती है ।

जैसे-जैसे समाज आधुनिक होता जा रहा है वेश्यावृत्ति के प्रचलित स्वरूप में परिवर्तन हो रहा है । आज के समय में कालगर्ल वेश्यावृत्ति का आधुनिक नाम है । वेश्यावृत्ति के स्वरूप में बदलाव होने से वेश्याओं की स्थिति में किसी प्रकार का बदलाव नहीं हुआ है । अपवाद रूप में कुछ विकसित देशों में वेश्याओं को सैक्स वर्कर का नाम देकर वेश्यावृत्ति को वैधानिक दर्जा दिया गया है । यह एक प्रकार से शोषण के विरुद्ध क़ानूनी गारंटी है लेकिन बावजूद इसके उत्पीड़न जारी है । भारत में बाक़ी देशों से स्थिति एकदम उल्ट है । यहाँ दिल्ली के जी. बी रोड़ से लेकर मुंबई, कलकत्ता के रेडलाइट इलाक़ों में वेश्याओं के लिए क़ानूनी तौर पर कोई गारंटी नहीं मिली हुई । हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने एक आदेश में कहा है कि बालिग़ और सहमति से यौन सम्बंध बनाने वाली यौनकर्मियों के काम पेशा माने और पुलिस वेश्याओं के ख़िलाफ कोई कार्यवाही ना करे । कोर्ट ने कहा कि आर्टिकल 21 के अनुसार संविधान सबको सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार देता है फिर चाहे पेशा कोई भी हो ।

समाज में वेश्यावृत्ति को बनाए रखने के पीछे धार्मिक अंधविश्वास और ग़रीबी मुख्य रूप से ज़िम्मेवार हैं । हम देखते हैं कि जिस समाज में ग़रीबी और अशिक्षा अधिक वहाँ पर धार्मिक अंधविश्वास भी उतने ही हैं । ऐसे समाज में स्त्रियों की स्थिति अधिक दयनीय है । वेश्याओं के रूप में स्त्रियों

की अमानवीय स्थिति के लिए ग़रीबी के साथ सामाजिक कुरीतियाँ भी उतनी ही उतरदायी हैं । वेश्यावृत्ति के नारकीय जीवन में कोई नारी अपनी मर्ज़ी से नहीं आती है । बल्कि स्त्री को भोग की वस्तु समझने वाली सामाजिक सोच ही उसे वेश्यावृत्ति के दल-दल में धकेलती है । यूँ तो किसी भी स्त्री के लिए वेश्यावृत्ति के दल-दल से निकल पाना असम्भव होता है लेकिन फिर भी कोई स्त्री वेश्यावृत्ति को छोड़ देती है तो उसे समाज स्वीकार नहीं करता है । जो समाज उसे वेश्या बनाता है वहीं समाज ही उसे अपवित्र मानता है । पितृसतात्मक समाज की नियमावली में एक बार जो स्त्री वेश्या बन गई वह स्त्री दुबारा समाज की नज़र में सामान्य स्त्री की भाँति सम्मान की हक़दार नहीं हो सकती । समाज अपने विधान के अनुसार स्त्री पर "वंस ए प्रोस्टीच्यूट आलवेज ए प्रोस्टीच्यूट" का टैग लगा देता है । आज वेश्यावृत्ति पूरी दुनिया के सामने एक चुनौती बन गई है । बाल-विवाह और विधवा विवाह को लेकर जैसे प्रयास हुए वैसा सामूहिक प्रयास वेश्यावृत्ति को समाप्त करने को लेकर भारतीय समाज में कम ही देखने को मिलता है । वेश्यावृत्ति कोई दैवीय समस्या नहीं है बल्कि इसको बढ़ावा देने वाली सामाजिक संरचना ही है और जब तक उस संरचना को तोड़ा नहीं जाता, तब तक स्त्री का भविष्य अंधकार में ही दिखाई देता है । वेश्यावृत्ति की समस्या का जड़-मूल से विनाश तभी सम्भव होगा जब इसे सामाजिक बुराई या प्रथा मानकर समाज और राज्य एक साथ मिलकर काम करेंगे । किसी एक के प्रयास से मुक़ाम तक पहुँचना मुश्किल है । इससे पहले वेश्यावृत्ति का जहर पूरे समाज

में फैलकर पूरे समाज के विनाश का कारण बन जाए । वेश्यावृत्ति संस्थागत का रूप धारण कर ले । हमें आवश्यक सामाजिक क़दम उठाते हुए स्त्री और समाज को विनाश की गर्त में जाने से बचाना चाहिए |

आधार ग्रंथ

जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली,

संस्करण-1974

मधु काँकरिया, सलाम आखिरी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, संस्करण- 2007

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अमृतलाल नागर, सुहाग के नूपुर, राजकमल पेपरबैक्स प्रा. ली., नयी दिल्ली, पहली आवृत्ति- 2013

2. अमृतलाल नागर, ये कोठेवालियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, संस्करण2011

3. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली, संस्करण1999,

4. डा. अमरनाथ, नारी का मुक्ति संघर्ष, रेमाधव पब्लिकेशन्स प्रा. लि., गाजियाबाद, संस्करण-2007

बुक्स, दिल्ली, 2008 3 5. अपूर्वानंद (सं.), प्रस्तुत प्रश्न, दानिश पुनश्च

6. डा. कुसुम मेघवाल, भारतीय नारी के उद्धारक: बाबासाहेब डा. बी. आर. आंबेडकर, सम्यक प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण- 2010

7. कृष्णा सोबती, बादलों के घेरे, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि,नई दिल्ली संस्करण2007

8. डॉ. गोपी जोशी, भारत में स्त्री असमानता: एक विमर्श, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, संस्करण-2006

9. जॉन स्टुअर्ट मिल, स्त्रीयों की पराधीनता, प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, आवृति- 2009

10. जैनेन्द्र कुमार, त्यागपत्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, संस्करण- 2012

11.मोहनदास नैमिशराय, आज बाजार बंद है, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2006

12.जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली, संस्करण-1974

13.मधु काँकरिया, सलाम आखिरी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, संस्करण- 2007

3 14.महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, आवृति,1999

15.राधा कुमार, स्त्री संघर्ष का इतिहास: 1800- 1990, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली,संस्करण- 2005

16.रमेश कुमारी, संस्कृति, साहित्य और स्त्री (एक आलोचनात्मक विमर्श), दिल्ली, संस्करण- 2008

17.रेल्फ फाक्स उपन्यास और लोकजीवन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, प्रा.लि.नई दिल्ली, संस्करण-2008

18.रविन्द्र कालिया, मंटो ही सदी, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, संस्करण2014

19.वीर भारत तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली , संस्करण2006

20.डॉ विभा नायक, कैद आवाजें, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015

21.श्यामाचरण दुबे, भारतीय समाज, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, संस्करण2001

172

22.सेवासदन, प्रेमचंद, राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि जयपुर, संस्करण-1996

23.साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनिता (संपादक) नारीवादी राजनीति: संघर्ष एवं मुद्दे, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, संस्करण-2001

24.यशपाल, दिव्या, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, संस्करण-2012 ,

पत्र-पत्रिकाएँ:

25.तेजसिंह , अपेक्षा (अम्बेडकर साहित्य का मुख्यपत्र) जनवरी-जून 2010

26.प्रेम भारद्वाज, पाखी (सृजन की उड़ान) जुलाई-2014

27.प्रेमचंद, हंस (हिंदी उपन्यास: एक सदी) जनवरी-1999

28.स्त्रीकाल (स्त्री का समय और सच) अंक: 2-3

29.सुधीर सुमन, जनमत, वर्ष 25 अंक 2 / मई-2006

30.रतन कुमार पाण्डेय, अनभै, (स्त्री विशेषांक) अंक-5 16-17 अक्टूबर 07-08 मार्च लेख- स्त्री-विमर्श

31.रतन कुमार पाण्डेय, अनभै, (स्त्री विशेषांक) अंक-7: 27-28 जुलाई-दिसंबर 2010

32.हृदयेश मयंक, चिंतन दिशा अंक -17 अक्टूबर-दिसम्बर 2014

33.हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, सोमवार 28 फरवरी 2010

****

ii.